ब्रह्माण्ड
और
ज्योतिष
रहस्य
नंदलाल दशोरा
रणधीर प्रकाशन
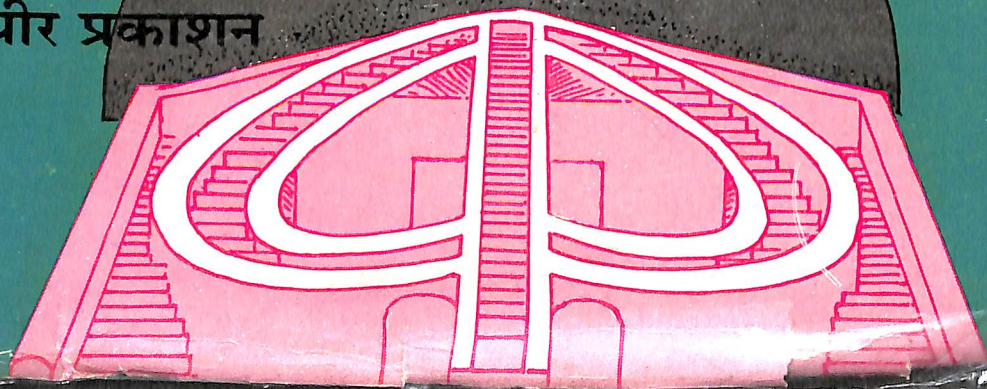
ब्रह्माण्ड और ज्योतिष रहस्य

(Secrets of Astronomy)

(खगोल, भूगोल तथा भारतीय ज्योतिष
का प्रामाणिक ग्रन्थ)

लेखक :

नन्द लाल दशोरा

मूल्य : 60.00

रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार

• प्रकाशक :—

रणधीर प्रकाशन

रेलवे रोड, (आरती होटल के पीछे)

हरिद्वार-249401

फोन : (0133) 426297 : 426195 (निवास)

• वितरक :—

रणधीर बुक सेल्स

रेलवे रोड, समीप मुख्य डाकघर, हरिद्वार-249401

• मुख्य विक्रेता :—

1. पुस्तक संसार, बड़ा बाजार, हरिद्वार
2. पुस्तक संसार, 167, नुमाइश मैदान, जम्मूतवी
3. गगनदीप पुस्तक भण्डार, एस०एन० नगर, हरिद्वार

• लेखक :—**नन्द लाल दशोरा**

• मुद्रक :— **विष्णु आफसेट प्रिंटर्स, 1488 पटौदी हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 फोन 3268103, 3270561**

• मूल्य : 60.00

• संस्करण : प्रथम, 1994

प्रस्तावना

ज्योतिर्विज्ञान का विषय इतना गूढ़ एवं विस्तृत है कि सामान्य कोटि के व्यक्ति के लिए इसका पार पाना कठिन है तथा आज अनेक शाखाओं-प्रशाखाओं में इसका इतना तीव्र गति से विकास हो रहा है कि जो कुछ आज कहा जा रहा है वह कल असत्य सिद्ध हो सकता है फिर भी इसमें नवीनतम जानकारी देने का प्रयास किया गया है जो पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकेगी। जहाँ तक सम्भव हुआ है इस पुस्तक को क्लिष्ट सिद्धान्तों, सूत्रों तथा प्राविधिकता से मुक्त रखा गया है तथा विश्वसनीय आंकड़ों एवं तथ्यों का अधिकतम प्रयोग किया गया है। इसमें जिन प्राविधिक शब्दों का प्रयोग किया गया है वे या तो भारतीय ज्योतिर्विज्ञान के क्षेत्र में पूर्व प्रचलित शब्द ही हैं या शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार द्वारा प्रकाशित पारिभाषिक शब्द-कोश से लिये गये हैं। सामान्य पाठकों के हितार्थ भाषा को सरल एवं बोधगम्य बनाया गया है। विषय को स्पष्ट करने हेतु यथास्थान चित्रों, मानचित्रों एवं रेखाचित्रों का भी प्रयोग किया है, जिससे पाठकों को विषय को समझने में सुगमता हो। साथ ही सम्पूर्ण आकाश के 50 तारामण्डलों के मानचित्र भी दिये गये हैं जिन्हें हर पाठक अपनी स्थिति और समय के अनुसार आकाश में इन्हें स्वयं पहचान सके।

प्रस्तुत पुस्तक में राशियाँ, नक्षत्र, सितारे, हमारा सौर-मण्डल, आकाश-गंगा, निहारिकाएँ आदि के वर्णन के साथ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का परिचय भी दिया गया है तथा साथ ही इनकी मानव जीवन में उपयोगिता का भी वर्णन किया गया है। इस विज्ञान का भारत तथा पाश्चात्य देशों में विकास किस प्रकार हुआ इसका भी पूर्ण समावेश किया गया है साथ ही विभिन्न

प्रकार के पंचांगों के आधार को तथा भारतीय मतों एवं मान्यताओं का भी इसमें समावेश कर इसकी उपयोगिता में वृद्धि की गई है।

इस पुस्तक में वर्णित सभी तथ्यों का दिग्दर्शन भारत व पाश्चात्य देशों के प्राचीन ज्योतिर्विज्ञान विषयक प्राप्त सामग्री की पृष्ठभूमि में किया गया है जिससे पाठकों के समक्ष इस क्षेत्र में प्राचीन काल से अब तक किये गये प्रयासों की झलक मिल सके।

इस पुस्तक को तैयार करने से मुझे अनेक विज्ञान लेखकों, पत्र-पत्रिकाओं, पंचांगों, ज्योतिष-ग्रन्थों आदि से सहायता लेनी पड़ी है जिसके लिये मैं उन सबके प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

यद्यपि इस पुस्तक में आँकड़ों तथा तथ्यों का पूर्ण सावधानी एवं सतर्कता से समावेश किया गया है जिससे इसकी प्रामाणिकता में सन्देह न रहे, फिर भी विद्वान् पाठकगण यदि इसमें किसी प्रकार के संशोधनादि का सुझाव देंगे तो उनका अवश्य स्वागत किया जायेगा।

4 अप्रैल 1992 ई०

लेखक

नन्दलाल दशोरा

विषय सूची

◆:◆:◆

1

ज्योतिर्विज्ञान का विकास—एक परिचय

ज्योतिर्विज्ञान का उदय

ज्योतिर्विज्ञान का उदय कब हुआ तथा किसने किया यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता किन्तु इसकी प्राचीनता में किसी को सन्देह नहीं है। आदिम मानव ने जब अन्धकारमय रात्रि में मेघ रहित स्वच्छ नीलाकाश में टिमटिमाते हुए इन असंख्य ज्योतिर्पिण्डों को आश्चर्यचकित होकर देखा होगा तो उसके मन में स्वाभाविक जिज्ञासा उत्पन्न हुई होगी कि ये सूर्य और चन्द्रमा क्या हैं? ये नित्य प्रति क्यों उदय और अस्त होते हैं? ये सितारे क्या हैं? सूर्य व चन्द्र ग्रहण क्यों होते हैं, आदि अनेक जटिल प्रश्न उसके मस्तिष्क में उत्पन्न हुए होंगे तभी मनुष्य ने सोचना आरम्भ किया होगा कि ऐसा क्यों होता है? इनका कोई नियम भी है या नहीं? उसने सूर्य की उष्णता तथा चन्द्रमा की शीतल ज्योत्सना का भी अनुभव किया होगा, सूर्य को उत्तरायण और दक्षिणायन होते देखकर ग्रीष्म तथा बसन्तादि ऋतुओं का भी अनुभव किया होगा, आकाश में धूमकेतुओं का उदय, उल्का वृष्टि आदि को देखकर भय ग्रस्त भी हुआ होगा, तथा इनके कारणों के विषय में जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न भी किया होगा तभी इस विज्ञान का आरम्भ हुआ होगा। मनुष्य ने यह भी अनुभव किया होगा कि ये सभी आकाशीय पिंड एक समान नहीं हैं, कुछ अधिक तेजस्वी हैं तथा कुछ कम, कुछ स्थिर रहते हैं तथा कुछ गतिशील हैं, कई पिंड समूह में दिखाई देते हैं जिनकी विशेष प्रकार की आकृति बनती है आदि के आधार पर उन्होंने इनका वर्गीकरण भी किया होगा जिससे इनको समझने में सुविधा मिले।

प्राचीन काल में पूजा, पाठ, कृषि, यात्रा आदि के लिए ज्योतिष की बड़ी-बड़ी बातों का जानना आवश्यक हो गया था अत: इसकी आवश्यकता पूर्ति हेतु मानव ने इस विज्ञान का आरम्भ किया होगा। आरम्भ में मनुष्य ने इन सब बातों की जानकारी प्राप्त करने के लिए अपने सीमित साधनों का ही प्रयोग किया जिससे उसके वर्णन आज बड़े विचित्र जान पड़ते हैं। आरम्भ में मनुष्य ने सोचा था कि यह पृथ्वी चपटी है क्योंकि यह चपटी ही दिखाई देती है। वे क्षितिज को पृथ्वी की अन्तिम सीमा मानते थे तथा आकाश को संसार की गुम्बदाकार छत। वे यह भी मानते थे कि ये सितारे आकाश में टँगे हुए दीपक हैं जिनके परे प्रकाश से भरा स्वर्ग है जिसका प्रकाश आकाश के छिद्रों से पृथ्वी पर आता है। कहीं धूमकेतुओं और उल्काओं को

देवताओं का संदेश-वाहक मानकर वर्णन किया गया है। ग्रहण आदि घटनाओं को दैवी प्रकोप माना जाता था। आकाश के तारामण्डलों की विशेष प्रकार की आकृति देखकर उनके सम्बन्ध में अनेक कथाएँ गढ़ डाली। इन सब कथा-कहानियों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि उस समय भी मनुष्य ने इन्हें समझने की चेष्टा की तथा कई महत्वपूर्ण तथ्य प्रकट किये जिससे मनुष्य को अपने दैनिक जीवन के कार्यों में काफी सहायता मिली।

उपयोगिता

अन्य विज्ञान शास्त्रों की भाँति ज्योतिर्विज्ञान का भी मानव जीवन में सर्वाधिक महत्व है। इस विज्ञान की सहायता से ही पृथ्वी तथा अन्य ग्रह, उपग्रह आदि की गतियों का ज्ञान होता है। इन्हीं गतियों के आधार पर दिन, सप्ताह, मास, पक्ष, ऋतु, वर्ष, उत्सव, तिथि आदि का भी ज्ञान होता है। इतिहास की काल गणना का यह मुख्य आधार है, जहाजों के कप्तान इसी की सहायता से विस्तृत महासागरों में अपनी स्थिति एवं मार्ग निश्चित करते हैं, भूगोल तथा अन्य अन्वेषण कार्यों में इससे काफी सहायता मिलती है, मरुस्थलों में यात्रा करने वाले सितारों की गतियों के आधार पर ही दिशा एवं समय का ज्ञान प्राप्त करते हैं, सृष्टि के रहस्यों का पता इसी के द्वारा लगाया जाता है। ज्योतिर्विज्ञान के रहस्यों की खोज के लिए ही गणित का विकास हुआ तथा भौतिक और रसायन विज्ञान में प्रगति हुई। इसी के ज्ञान के आधार पर चन्द्रमा, मंगल व शुक्र ग्रह की ओर अन्तरिक्ष-यान भेजे जा सके। इन सब विशेषताओं के कारण ही इसे अन्य विज्ञानों का पिता माना जाता है। **भारतीय वेदांगों** में इसकी श्रेष्ठता का वर्णन मिलता है कि, *"जिस प्रकार मयूर की शिखा तथा सूर्य की मणि श्रेष्ठ है उसी प्रकार वेदांग शास्त्रों में ज्योतिष सबसे श्रेष्ठ है।"* **'सूर्य सिद्धान्त'** में ज्योतिष को सब वेदांगों में श्रेष्ठ, परम पवित्र एवं रहस्यमय बतलाया है। भारत के प्रसिद्ध ज्योतिर्विद **भास्कराचार्य** ने भी लिखा है कि, *"जैसे सब अंगों में आँख श्रेष्ठ है वैसे ही सब वेदांगों में ज्योतिष श्रेष्ठ है।"*

आजकल प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति को ज्योतिष सम्बन्धी थोड़ा बहुत ज्ञान अवश्य होना चाहिए। सूर्य क्या है? यह गर्म क्यों है? क्या यह ठंडा भी हो जाएगा? चन्द्रमा क्या है? यह क्यों घूमता है? इसमें कलाएँ क्यों दिखाई देती हैं? ये उपग्रह क्या हैं? ये ग्रह, नक्षत्र, राशियाँ क्या हैं? हमारे दिनमान, मास, वर्ष आदि का आधार क्या है? पंचांग कैसे बनता है? दिशाएँ कैसे निश्चित होती हैं? पुच्छल तारे या धूमकेतु क्या हैं? आकाश में उल्का वृष्टि क्यों होती है? आकाश-गंगा क्या है? अन्य ग्रह एवं नक्षत्रों में जीवन है अथवा नहीं? ये सभी आकाशीय पिंड हमसे कितनी

दूर हैं ? इनके भ्रमण का क्या कारण है ? इनका तापमान, घनत्व, बनावट आदि कैसी है ? इनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? इस ज्ञान से हमको क्या लाभ हो सकता है ? आदि अनेक रोचक प्रश्न उत्पन्न होते हैं जिनका ज्ञान हर व्यक्ति को होना आवश्यक है । इन सभी प्रश्नों का उत्तर ज्योतिर्विज्ञान देता है जिससे मानव जीवन की अनेक जटिल समस्याओं का समाधान हो जाता है। यद्यपि इस विज्ञान का विकास आदिकाल से हुआ है किन्तु विगत पचास वर्षों में इसके कार्य में विशेष गति आई है । गणित, भौतिक शास्त्र तथा रसायन शास्त्र के विकास के कारण इसमें सर्वाधिक उन्नति हुई जिससे अंतरिक्ष के कई ऐसे रहस्यों का पता चला है जिसकी पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी । इसी विज्ञान के विकास के कारण आज पृथ्वी का मानव चन्द्रमा के धरातल पर अपने पैर रख सका, तथा शुक्र एवं मंगल ग्रह की ओर अपने यान भेज सका ।

भारत में ज्योतिर्विज्ञान का विकास

(i) वेदांग काल—भारत में ज्योतिर्विज्ञान विषयक अब तक प्राप्त ग्रन्थों में **'वेदांग ज्योतिष'** सबसे प्राचीन है जिसमें कई बातों की चर्चा मिलती है जिससे ज्ञात होता है कि उस समय दिन-रात, मास, ऋतुओं आदि का ज्ञान था । उस काल में वर्ष में 12 महीने व 360 दिन माने जाते थे । मास पूर्णिमान्त व अमान्त दोनों के माने जाने का उल्लेख मिलता है । उस समय भी चन्द्रमा की गतियों का पूर्ण ज्ञान था तथा उसके 'आरोही' व 'अवरोही' संपातों का भी ज्ञान था । चन्द्रमा की कलाएँ, उसका प्रकाश, नक्षत्र, ग्रह, ग्रहण आदि का भी वर्णन **'तैत्तिरीय संहिता'** में मिलता है । उस समय पृथ्वी के गोलत्व का, तथा सूर्य राशियों के सात रंगों का भी ज्ञान था । चन्द्रमा की गतियों के आधार पर ही उस समय चन्द्रमास का उपयोग किया जाता था । वेदों में अधिमास, क्षय मास तथा दिनमान, कृष्ण व शुक्ल पक्ष, तिथि आदि का भी वर्णन मिलता है । नक्षत्रों में पुष्य, चित्रा, रेवती, मघा, फाल्गुनी आदि तथा तारामंडलों में सप्तर्षि, श्वान मंडल, शनि मंडल, आकाश गंगा, नौका पुंज आदि का उल्लेख मिलता है । उस समय ग्रहण, उल्काएँ व धूमकेतु का भी ज्ञान था जिसका वर्णन **'अथर्व संहिता'** में मिलता है । यह सब वर्णन प्रसंगवश ही आया है । इस विषय पर कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है । वेदांग काल में इसका अधिक विकास हुआ । इसमें सूर्य व चन्द्रमा की गतियों का उल्लेख मिलता है किन्तु ग्रहों तथा राशियों का वर्णन नहीं मिलता । वेदांग काल 1200 ई० पू० माना जाता है ।

(ii) मनुस्मृति—मनुस्मृति में काल गणना मिलती है जिसमें समय की बड़ी इकाइयों का वर्णन है । इस गणना के अनुसार कल्पारंभ से ही सृष्टि का आरम्भ माना

जाता है। प्रत्येक कल्प के अन्त में महाप्रलय होता है। इसके बाद फिर नई सृष्टि आरम्भ होती है। इस गणना का आधार पृथ्वी का सूर्य की परिक्रमा करना तथा सूर्य का सपरिवार अपने केन्द्रीय पिंड की परिक्रमा करना है। इसका विशेष विवरण **'काल गणना'** अध्याय में किया गया है।

(iii) महाभारत काल—महाभारत काल में भी यत्र-तत्र ज्योतिष सम्बन्धी बातों का उल्लेख मिलता है। कई स्थानों पर उल्काओं और धूमकेतुओं का वर्णन भी मिलता है, कहीं ज्वारभाटे का सम्बन्ध चन्द्रमा से स्थापित किया गया है। पृथ्वी के गोल होने के भी प्रमाण मिलते हैं। महाभारत के शान्ति पर्व में बताया गया है कि, *"मनुष्य को चन्द्रमा का पृष्ठ भाग कभी भी दिखाई नहीं देता है।" इसमें राहु-केतु समेत सात ग्रहों का भी वर्णन मिलता है। ग्रहणों का भी उल्लेख है। किन्तु राशियों की चर्चा नहीं है।"*

(iv) आर्यभट्ट—वेदांग काल से लेकर सन् 499 ई० तक ज्योतिष शास्त्र का कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। 499 ई० का **आर्यभट्ट** लिखित **'आर्य भटीय'** ग्रन्थ मिलता है। आर्यभट्ट का जन्म 476 ई० में कुसुमपुर (पटना) में हुआ था। इन्होंने लिखा है कि, *"सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा एक महायुग में 43,20,000 बार करता है।"*

एक महायुग की अवधि 4 युगों (सत्युग, त्रेता, द्वापर, कलियुग) के बराबर है जिसका मान 43,20,000 वर्ष है अर्थात् आज की मान्यता के अनुसार पृथ्वी एक वर्ष में सूर्य की एक परिक्रमा करती है जिससे 43,20,000 वर्ष में यह सूर्य की इतनी ही परिक्रमा कर लेती है जिसे महायुग कहते हैं।

चन्द्रमा इस अवधि में 5,7753,336 बार और पृथ्वी 1,58,22,37,500 बार घूमती हुई मानी गई है (इस प्रकार एक वर्ष में चन्द्रमा पृथ्वी के 133 चक्कर लगाता है तथा पृथ्वी अपनी धुरी पर 366 बार घूम जाती है जो सर्वथा शुद्ध है)। भारतीय ज्योतिष में सर्वप्रथम इन्होंने ही पृथ्वी की दैनिक गति को स्वीकार किया है, किन्तु इन्होंने वार्षिक गति को नहीं माना। इन्होंने अन्य कई गणितीय एवं ज्योतिषीय नियम भी बनाये जैसे—परिधि के छठें भाग की 'ज्याँ' उसकी 'त्रिज्याँ' के बराबर होती है तथा वृत्त का व्यास 20,000 हो तो उसकी परिधि 62832 होती है अर्थात् व्यास और परिधि का अनुपात 1:3.1416 होता है जो सर्वथा शुद्ध है। इन्होंने उत्तरी तथा दक्षिण ध्रुव की स्थिति और अक्षांश रेखाओं का भी वर्णन किया है। सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण की गणना का भी वर्णन मिलता है। इनके अनुसार वर्षमान 365 दिन, 15 घटी, 31 पल और 15 विपल (365 दिन, 6 घंटे, 21 मिनिट, 2.5 सेकण्ड) होता है। यह अवधि **'नाक्षत्र सौर वर्ष'** की अवधि है जो सर्वथा शुद्ध है। **'सायन वर्ष'** का मान

365 दिन, 5 घंटे, 48 मिनिट, 46 सेकण्ड है ।

(v) वराहमिहिर—आर्य भट्ट के बाद वराह मिहिर प्रसिद्ध ज्योतिषी हुए हैं। इनका जन्म 505 ई० तथा मृत्यु 587 ई० में हुई थी । ज्योतिष शास्त्र पर लिखा गया इनका **'पंच सिद्धान्तिका'** ग्रन्थ प्रसिद्ध है । इन्होंने ग्रहणों की गणना के नियम भी बनाये तथा राशियों का वर्णन भी किया है । इन्होंने एक स्थान पर लिखा है, *"पृथ्वी किसी पर टिकी नहीं है बल्कि अंतरिक्ष में बेलाग इस प्रकार टिकी है जैसे चुम्बक के बीच गोला ।"* इन्होंने पृथ्वी के गुरुत्व का भी वर्णन किया है किन्तु पृथ्वी के आवर्तन (दैनिक गति) को स्वीकार नहीं किया । चन्द्रमा की कलाओं के कारण का भी इन्होंने वर्णन किया है तथा भूकेन्द्र और पृथ्वी को नापने की विधि व यन्त्रों का भी वर्णन किया है । सूर्य के 'उन्नतांश' (Altitude) को नापने के यन्त्र व विधि का भी वर्णन मिलता है । समय के ज्ञान के लिए जल घड़ी का प्रयोग बताया है । **अलबरूनी** ने इनकी प्रशंसा करते हुए लिखा है, *वराह के कथन सत्य पर आधारित हैं । परमेश्वर करे सभी लोग उनके आदर्श का पालन करें ।"* इन्होंने चन्द्रग्रहणाधिकार में सूर्य का व्यास 6500 योजन, चन्द्रमा का 480 योजन तथा पृथ्वी का 1600 योजन बतलाया है । इस हिसाब से यदि एक योजन को 5 मील मान लिया जाय तो (1 योजन = 8 मील माना जाता है) तो सूर्य का व्यास 32,500 मील, चन्द्रमा का व्यास 2400 मील तथा पृथ्वी का व्यास 8000 मील आता है । इसमें सूर्य के व्यास में अधिक त्रुटि है जो वर्तमान में 8,66,300 मील माना जाता है । ग्रहण के लिए छाया का पड़ना इन्हें ज्ञात था । इन्होंने धूमकेतुओं का भी वर्णन किया है ।

(vi) भास्कराचार्य द्वितीय—वराहमिहिर के बाद 12वीं शताब्दी में **भास्कराचार्य द्वितीय** प्रसिद्ध ज्योतिषी हुए। इनका जन्म 1114 ई० में हुआ था। इनका मुख्य ग्रन्थ **'सिद्धान्त शिरोमणि'** है जो इन्होंने 1150 ई० में लिखा था । इन्होंने भी पृथ्वी को अंतरिक्ष में निराधार स्थित माना है । इन्होंने पृथ्वी की गुरुत्व शक्ति का भी वर्णन किया है । इन्होंने पृथ्वी की गोलाई को स्वीकार करते हुए लिखा है कि, *"उसके चपटी दिखाई देने का कारण भूमि की तुलना में मनुष्य अत्यन्त क्षुद्र है अतः जहाँ तक उसकी दृष्टि जाती है सब उसे सपाट ही दिखाई देती है ।"* इन्होंने पृथ्वी की परिधि के विषय में लिखा है कि, *"उज्जयिनी का अक्षांश 22.5 अंश है । अतः यदि भूमध्य रेखा से उज्जयिनी की दूरी नाप कर उसे 16 से गुणा करें तो पृथ्वी की परिधि ज्ञात होगी ।"* (22.5 अंश x 16 = 360 अंश) (उज्जयिनी का अक्षांश 22.5 माना है जबकि यह 23 अंश 9 अंश है । इतनी भूल स्थूल यन्त्रों के कारण हो सकती है ।) इसके अतिरिक्त इन्होंने ध्रुवों की स्थिति, पृथ्वी का व्यास तथा क्षेत्रफल का भी वर्णन

किया है । इन्होंने परिधि और व्यास का अनुपात 3.1416 बताया है जो बहुत शुद्ध है (आधुनिक मान के अनुसार यह 3.1428 आता है) इन्होंने अक्षांश ज्ञात करने की विधियों तथा ज्योतिष वेध यन्त्रों का भी वर्णन किया है, जैसे—गोल यन्त्र, चक्र यन्त्र, यष्टि यन्त्र, शंकु, फलक यन्त्र, नाड़ी पलाय, घटक, चाप, तुर्य गोल आदि तथा इनके प्रयोग की विधि भी बताई है ।

(vii) कमलाकार—भास्कराचार्य द्वितीय के बाद **कमलाकार** भी प्रसिद्ध ज्योतिषी हुए हैं । इनका जन्म 1530 के लगभग माना जाता है । इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ **'सिद्धान्त तत्त्व विवेक'** है जो इन्होंने काशी में तैयार किया था । इन्होंने कई नई बातें लिखी हैं । इन्होंने बताया कि 'सम्पात' में गति है जिससे 'ध्रुवतारा' भी चलता रहता है । वर्तमान ध्रुवतारा .ठीक ध्रुव पर नहीं है । संध्या समय व प्रातः काल यह भिन्न-भिन्न स्थानों पर दिखाई देता है । (आधुनिक ज्योतिष भी यह मानता है ध्रुवतारा ध्रुव से 1 अंश हटकर है जिससे उसमें भी गति दिखाई देती है तथा सम्पात की गति के कारण यह सदा उत्तर में नहीं रहता) इन्होंने कई स्थानों के अक्षांश व देशान्तर का भी वर्णन किया है तथा ग्रहण, मेघ, ओला, भूकम्प, उल्कापात आदि के वैज्ञानिक कारण भी बताये हैं ।

(viii) योग वाशिष्ठ में उल्लेख—महर्षि बाल्मीकि कृत **'योग वाशिष्ठ'** में पृथ्वी के गोल होने तथा ब्रह्माण्ड विस्तार का उल्लेख है । इसमें लिखा है, *"जैसे गेंद होता है वैसे भूगोल है । इसके सब ओर आकाश है ।" "यह ब्रह्माण्ड सौ कोटि योजन पर्यन्त विस्तृत है ।" "भूगोल ऐसे है जैसे गेंद होता है. . . आकाश सब ओर है ।" "जैसे आकाश में गेंद हो, वैसे ही यह पृथ्वी आकाश में है । इसके नीचे ऊपर कोई नहीं ।"*

(ix) जयसिंह—ज्योतिर्विज्ञान के क्षेत्र में भारत में **जयसिंह** का नाम भी अमर रहेगा । ये सन् 1693 में आमेर (जयपुर) में गद्दी पर बैठे थे । इन्होंने ही बाद में जयपुर बसाया । ये उद्योगी व बुद्धिमान व्यक्ति थे । इन्होंने ज्योतिर्विज्ञान के वेघ कार्य के लिए कई नवीन यन्त्र बनवाकर वेघ किये तथा ग्रन्थ लिखे । इन्होंने वेघ कार्य के लिए दिल्ली, उज्जैन, काशी, मथुरा तथा जयपुर में वेघशालाएँ (जन्तरमन्तर) बनाई तथा इस विज्ञान को नया मोड़ देने का प्रयत्न किया किन्तु इस कार्य को किसी ने आगे नहीं बढ़ाया । ये वेघशालाएँ आज जीर्णावस्था में पड़ी हैं । 1700 ई० के बाद भारत में इस विज्ञान के क्षेत्र में इतनी अधिक प्रगति नहीं हुई जितनी पाश्चात्य देशों में । पाश्चात्य देशों में विज्ञान की प्रगति के कारण कई सूक्ष्म यन्त्रों का आविष्कार हुआ जिससे इस क्षेत्र में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन आया तथा नवीन सूक्ष्म मानों के आधार

पर कई प्राचीन मानों का असत्य सिद्ध कर दिया। नई-नई खोजों के द्वारा इस ब्रह्माण्ड की सूक्ष्मतम हलचलों का ज्ञान प्राप्त कर इस क्षेत्र में आशातीत प्रगति की है। इस दृष्टि से भारत बहुत पिछड़ गया जिससे इसका मुकाबला करने में अभी वर्षों लग जायेंगे।

(x) **शान्तिकुंज हरिद्वार**—वर्तमान में हरिद्वार के पास शान्तिकुंज में ज्योतिर्विज्ञान के वेध के लिए भास्कराचार्य द्वितीय द्वारा बताये गये विभिन्न यन्त्रों के समान अनेक यन्त्र बनाये गये हैं जिनसे नियमित वेध कार्य होता है। यहाँ से एक पंचांग भी निकाला जाता है जो इन यन्त्रों की सहायता से दृष्य गणित के आधार पर तैयार किया जाता है। शान्तिकुंज का **'ब्रह्म वर्चस् शोध संस्थान'** महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है जो **श्रीराम शर्मा आचार्य** के दिशानिर्देशन में है।

पश्चिम में ज्योतिर्विज्ञान का विकास

भारत की ही भाँति पाश्चात्य देशों में भी ज्योतिर्विज्ञान का विकास प्राचीन काल से हुआ है। आरम्भ में बेबीलोनिया, चीन और मिश्र में इसका काफी विकास हुआ। इसके बाद यूनानियों ने इसमें अधिक उन्नति की। भारत और यूनान में इसका काफी आदान-प्रदान भी हुआ। इस समय अमेरिका एवं रूस इस क्षेत्र में अग्रणी हैं।

पाश्चात्य देशों में **पाइथेगोरेस** (730 ई० पू०) ने सर्वप्रथम कहा कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है तथा यह अन्तरिक्ष में बेलाग टिकी है। ये यूनान के प्रसिद्ध ज्योतिषी थे जिन्होंने भारत की भी यात्रा की थी।

एक अन्य ज्योतिषी **एरिस्टार्कस** (240-264 ई० पू०) का मत था कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी तथा अन्य ग्रह उसकी परिक्रमा करते रहे हैं किन्तु **आर्कीमिडी** ने इसे भ्रमपूर्ण बताया व इसको मान्यता नहीं दी।

ईसा के 200 वर्ष पूर्व **इरेटॉस्थनीज** ने पृथ्वी का व्यास व परिधि ज्ञात की।

मिश्र में ज्योतिष का सबसे अधिक कार्य **हिपार्कस** और **टॉलमी** ने किया हिपार्कस का कार्य काल 146-127 ई० पू० का माना जाता है। ये सिकन्दरिया में ज्योतिष वेध करते थे। इन्होंने ही **एरिस्टार्कस** की इस बात को मान्यता नहीं दी कि सूर्य स्थिर है तथा पृथ्वी और अन्य ग्रह उसकी परिक्रमा करते हैं। वे पृथ्वी को सौर-मण्डल का ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का केन्द्र समझते थे। इन्होंने वेध कार्य करके 850 तारों की सूची भी तैयार की तथा उनकी स्थिति, 'भोग' (Longitudes) तथा 'शर' (Latitudes) के आधार पर बताई गई थी। इस सूची को बाद में **टॉलमी** ने प्रकाशित किया।

टॉलमी हिपार्कस से 300 वर्ष पश्चात् हुए। इनका कार्यकाल 127 ई० तक था। ये भी सिकन्दरिया में वेध करते थे। इन्होंने भी पृथ्वी को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का केन्द्र माना था। इनके विचार इतने दृढ़ हो गये कि 1500 वर्षों तक इसे चुनौती नहीं दी जा सकी। इन 1500 वर्षों में सच्चे अर्थों में कोई ज्योतिषी नहीं हुआ। केवल भाष्यकार हुए। टॉलमी ने 1022 तारों की सूची भी तैयार की। इन्होंने पृथ्वी का रूप, इसका बेलाग टिका होना, आकाशीय पिण्डों का वृत्तों में घूमना, दिनमान की गणना एवं चन्द्रमा की गति आदि का वर्णन किया। इन्होंने ग्रहणों पर भी विचार किया, सूर्य एवं चन्द्रमा के व्यास का वर्णन किया तथा पृथ्वी से सूर्य की दूरी का पता लगाया। इस प्रकार पाश्चात्य देशों में सर्वाधिक कार्य टॉलमी द्वारा किया गया जिसके ग्रन्थ **कोपरनिकस** के काल तक वेद-पुराणों की तरह अकाट्य माने जाते रहे।

ज्योतिष कार्य में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने का श्रेय पोलेण्ड के संत पादरी व ज्योतिषी **निकोलस कोपरनिकस** को है जिनका काल 1473 ई० से 1543 ई० था। इन्होंने पुरानी विचार-धाराओं को चुनौती दी तथा धार्मिक अन्धविश्वास की आड़ में चल रहे ज्योतिष को सत्य के आधार पर नया रूप दिया। इन्होंने ही सर्वप्रथम घोषित किया कि सौर-मण्डल का केन्द्र पृथ्वी नहीं बल्कि सूर्य है तथा पृथ्वी सहित अन्य ग्रह उसकी परिक्रमा करते हैं। इसका समर्थन **गेलीलियो** तथा **केपलर** ने भी किया। केपलर ने गणित द्वारा ग्रह गतियों के नियम बनाये तथा यह बताया कि सभी ग्रह अण्डाकार कक्षा में सूर्य की परिक्रमा करते हैं। **न्यूटन** ने अपने गुरुत्वाकर्षण नियम में ग्रहों के घूमने के कारण में 'गुरुत्वाकर्षण' (Gravitation) 'केन्द्र प्रसारी बल' (Centrifugal force) तथा 'भ्रमण शक्ति' (Inertia) का वर्णन किया। ज्योतिर्विज्ञान के क्षेत्र में विज्ञान के विकास ने सर्वाधिक सहायता की। सन् 1610 में गेलीलियो ने अपना प्रथम दूरदर्शी यन्त्र तैयार किया जिससे उन्होंने चन्द्रमा एवं सूर्य के धब्बे, बृहस्पति के उपग्रह शनि के वलय आदि देखे तथा अन्य अन्वेषण कार्य में सहायता दी।

इसके बाद कई विशालकाय दूरदर्शी यन्त्र बने जिनसे आकाशीय पिंडों को समझना और आसान हो गया। अमेरिका में **माउण्ट विल्सन** की वेधशाला में 100 इंच व्यास वाली दूरबीन रखी हुई है जिससे सन् 1934 में 8 करोड़ प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित **'निहारिका'** का चित्र लिया गया था। इसकी सहायता से 45 करोड़ प्रकाश वर्ष की दूरी के 1.5 अरब सितारों के चित्र लिये जा चुके हैं। इससे भी बड़ी दूरबीन जिसका व्यास 200 इंच है अमेरिका के **माउण्ट पालोमर** पर स्थापित की गई है (देखें चित्र-1)। इससे अब तक खोजी गई दूरी से 30 गुना अधिक दूरी तक खोज
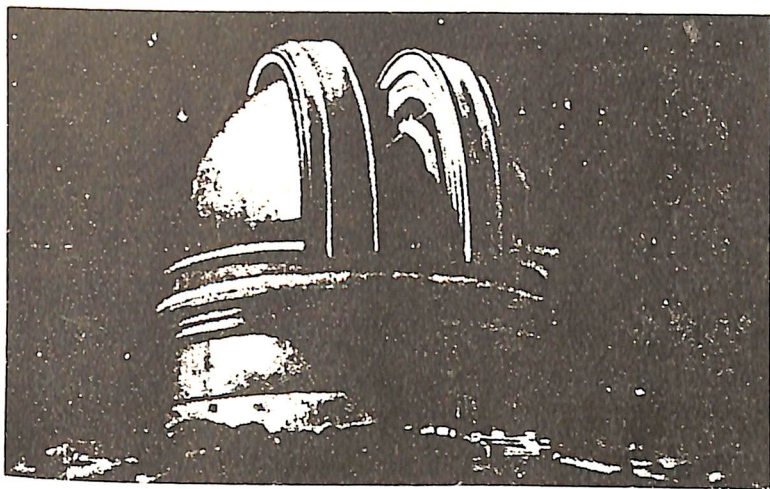
चित्र-1—माउण्ट पालोमर वेधशाला

की जा चुकी है। इससे 3 अरब प्रकाश वर्ष की दूरी स्थित 'विश्व द्वीपों' (Island Universe) के चित्र लिये गये हैं। अनुमान है कि इस दूरी में एक अरब 'निहारिकाएँ' होनी ही चाहिए। इस दूरबीन से 6 अरब सितारों के चित्र लिये जा सके हैं। आज इस ज्योतिष कार्य के लिए दुनियाँ में कई वेध शालाएँ स्थापित की गई हैं जिनमें प्रतिदिन आकाशीय पिंडों की दूरी, स्थिति, बनावट, गतियाँ, तापमान, विशालता, तेजस्विता, घनत्व, उनकी उत्पत्ति आदि का अध्ययन कर उनका वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है जिससे उनके सत्य स्वरूप का ज्ञान सम्भव हो सका है। ये वेध शालाएँ हैं—लिंक वेधशाला (अमेरिका), पार्किंज वेधशाला (अमेरिका), लापेल वेधशाला (अमेरिका), राजकीय ग्रिनविच वेधशाला (इंग्लेण्ड), कोडाई केनाल वेधशाला (भारत)। ये सभी वेधशालाएँ महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं।

◆:◆:◆

2

ब्रह्माण्ड विस्तार

जिस भूमि पर हम रहते हैं वह हमें विशाल ज्ञात होती है किन्तु विशालता तो सापेक्ष है । यदि सौर-मण्डल के अन्य पिंड बृहस्पति, शनि तथा सूर्य आदि से इसकी तुलना की जाय तो हमें इसकी लघुता और सौर-मण्डल की विशालता का आभास होता है । यदि समस्त ब्रह्माण्ड की तुलना में हम अपने सौर-मण्डल को देखें तो हमें इसकी लघुता का आभास पाकर लज्जित ही होना पड़ेगा तथा हमारा सारा मिथ्या गर्व नष्ट हो जाएगा । इस विशाल ब्रह्माण्ड की तुलना में हमारा सौर-मण्डल कुछ भी नहीं है । इसके परे असंख्य पिंड हैं जिनकी विशालता, दूरी, संख्या, घनत्व, तापमान आदि का अनुमान लगाकर हम आश्चर्यचकित हुए बिना न रहेंगे । फिर इनके निर्माण की प्रक्रिया, इनका आदि व अन्त का ज्ञान होना और भी कठिन है । ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के विषय में प्राचीन ऋषियों ने यह कहकर छोड़ दिया कि "यह सब जानने वाला यदि कोई है तो वह यहाँ आकर बतावें" अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति को जानने वाला कोई नहीं है । किन्तु वैज्ञानिकों ने इस चुनौती को स्वीकार किया तथा ब्रह्माण्ड की छानबीन में लग गये । यदि देवताओं और राक्षसों के समुद्र मन्थन से अनेक उपयोगी वस्तुओं के साथ अमृत मिल सकता है तो इन वैज्ञानिकों के ब्रह्माण्ड मंथन से इनसे भी उपयोगी वस्तुएं मिल सकती हैं । जिस ब्रह्माण्ड को अपारीमित, अनन्त, असीम आदि कहकर छोड़ दिया गया था उसकी खोज में आज सर्वाधिक प्रयत्न किये जा रहे हैं । इस क्षेत्र में क्रान्ति लाने का श्रेय **गेलीलियो** को है जिसने सर्वप्रथम दूरवीक्षण यन्त्र का आविष्कार करके इस खोज कार्य को गति प्रदान की । आज 380 वर्षों में इस यन्त्र की सहायता से जितना खोज कार्य सम्भव हो सका है उतना इसके बिना एक हजार वर्ष में भी सम्भव नहीं हुआ । ब्रह्माण्ड की विशेष जानकारी प्राप्त करने हेतु 'गणित' तथा 'नभौ-भौतिकी' (Astrophysics) विषयों में भी तीव्र प्रगति हुई जिसके कारण आज मानव ब्रह्माण्ड की गतिविधियों को समझने में सक्षम हुआ । किन्तु ज्ञान की यहीं इति श्री नहीं हो जाती । अभी भी यह ज्ञान बाल्यावस्था में ही है तथा इसके विकास की अनेक सम्भावनाएँ हैं । ब्रह्माण्ड का संक्षेप में यहाँ परिचय देना समीचीन होगा ।

ब्रह्माण्ड विस्तार

कोरी आँख से देखने पर एक बार में दो से ढाई हजार सितारे दिखाई देते हैं तथा कुल 6-7 हजार सितारों को देखा जा सकता है । दूरवीक्षण यन्त्र के आविष्कार

के बाद मानव की दृश्य शक्ति कई गुना अधिक हो गई जिससे अब मनुष्य की जानकारी ढाई हजार सितारों से कई गुना आगे बढ़ गई। **'यार्किज वेधशाला'** अमेरिका में स्थित 40 इंच व्यास वाले दूरवीक्षण यन्त्र से 10 करोड़ से अधिक सितारे दिखाई देते हैं। इससे भी बड़ी दूरबीन **'माउण्ट विल्सन वेधशाला'** (अमेरिका) में हो जिसका व्यास 100 इंच है। इस भीमकाय दूरबीन की सहायता से 1934 में पृथ्वी से 45 करोड़ प्रकाश वर्ष की दूरी के 1.5 अरब सितारों का चित्र लिया गया था। आज इससे भी विशाल दूरबीन उपलब्ध है जो इस संसार की सबसे बड़ी दूरबीन है जिसका व्यास 200 इंच है। यह दूरबीन नतोदर (Concave) शीशे वाली है जो अमेरिका में केलीफोर्निया के पालोमार पर्वत के शिखर पर बनी वेधशाला में है। इस दूरबीन को 1934 ई० में ढाला गया था। इसका वजन 13.5 टन (540 मन) है तथा इसका शीशा 27 इंच मोटा है। इसे तैयार करने में 23 करोड़ 40 लाख डालर खर्च हुए। इस दूरबीन से चन्द्रमा 25 मील की दूरी पर दिखाई देता है। इस दूरबीन की सहायता से 3 अरब प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित 'द्वीप विश्वों' (Island Universe) के चित्र लिए गये हैं जिससे एक अरब 'द्वीप विश्व' देखे गये हैं तथा

चित्र-2—द्वीप विश्व

अनुमान है कि इससे भी अधिक 'द्वीप विश्व' ब्रह्माण्ड में विद्यमान है। इस दूरबीन की सहायता से अनेक तथ्यों को समझने में सहायता मिली है। ब्रह्माण्ड की रचना, विश्व द्वीपों का समूह में रहना, ब्रह्माण्ड का विस्तार तथा विकास आदि के विषय में जानकारी मिलने में सुविधा हुई है।

हमारा विश्व (Our Universe)

जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं वह अकेली नहीं है बल्कि यह हमारे 'सौर-मण्डल' (Solar System) का एक सदस्य है। सूर्य ने अपने गुरुत्वाकर्षण के द्वारा ग्रह, उपग्रह, अवान्तर-ग्रह तथा पुच्छल तारों को अपने परिवार का सदस्य बना रखा है। किन्तु यह सौर-मण्डल भी अकेला नहीं है। ऐसे कई सौर-मण्डल आकाश में विद्यमान हैं जिनके अपने-अपने सूर्य, ग्रह तथा उपग्रह आदि हैं। हमारे सौर-मण्डल का व्यास 7 अरब 80 करोड़ मील है। इससे परे इसी प्रकार के अनेकों सौर-मण्डल हैं। **सर आर्थर एडिंगटन** के अनुसार ब्रह्माण्ड में 1 खरब 10 अरब सूर्य हैं तथा हमारे सौर-मण्डल जैसे 11 करोड़ सौर-मण्डल हैं। ये सभी सितारे सूमहों में पाये जाते हैं। हमारा सौर-मण्डल भी एक छोटा समूह है। इस प्रकार के कई सौर-मण्डल मिलकर एक बड़ा समूह बनाते हैं जिसे 'मन्दाकिनी' (Galaxy) या 'आकाश-गंगा' (Milky Way) कहते हैं। हमारा सौर-मण्डल जिस मंदाकिनी में है उसमें कुल नक्षत्र संख्या 3 खरब है जिसमें हमारा सूर्य भी एक है। इस आधार पर कल्पना की जा सकती है कि हमारी इस मन्दाकिनी का आकार व विस्तार कितना है। वैज्ञानिक बताते हैं कि यह मन्दाकिनी फूली हुई पूड़ी के समान है जिसका एक सिरे से दूसरे सिरे तक व्यास 1 लाख प्रकाश वर्ष है तथा केन्द्र पर इसकी मोटाई 20 हजार प्रकाश वर्ष है। हमारा सूर्य इसके केन्द्र में नहीं है बल्कि केन्द्र से 33 हजार प्रकाश वर्ष दूर है तथा इस स्थान पर इसकी मोटाई 3 हजार प्रकाश वर्ष है। जितने नक्षत्र हमें नंगी आँख से दिखाई देते हैं वे सब इसी मन्दाकिनी के नक्षत्र हैं। ज्योतिर्विदों की यह मान्यता है कि ये सभी नक्षत्र इसके केन्द्र का चक्कर लगाते हैं। इस मन्दाकिनी का केन्द्र 'धनु राशि' (Sagittarius) के एक नक्षत्र के समीप है। हमारा सूर्य भी अपने समस्त सौर-मण्डल को साथ लिये इस केन्द्रीय पिंड 'धनु राशि' की परिक्रमा कर रहा है। सूर्य अपनी यह परिक्रमा 200 मील प्रति सेकण्ड की गति से चलकर 25 करोड़ वर्ष में पूरी करता है। इसी प्रकार इस मन्दाकिनी के अन्य नक्षत्र भी निर्दिष्ट समय व मार्ग से अपनी परिक्रमा पूरी करते हैं। यहाँ पर प्रश्न उठता है कि जिस प्रकार हमारा सूर्य इन ग्रहों, उपग्रहों आदि से कई गुना बड़ा होने के कारण वह इन पिंडों को अपने चारों ओर घुमाने की क्षमता रखता है तो क्या इस मन्दाकिनी के केन्द्र में भी इन समस्त सितारों से कोई बड़ा पिंड है? किन्तु ज्ञात किया गया है कि इसके केन्द्र में भी सामान्य सितारे ही हैं, ऐसा बड़ा कोई पिंड नहीं है। इस मंदाकिनी में जितने सौर-मण्डलों का पता चला है उनकी संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। 1927 ई० में ज्योतिर्विदों के 'कन्या राशि' की निहारिका में चित्रा नक्षत्र के समीप एक और

सौर-मण्डल का पता लगाया है जिसका सूर्य हमारे सूर्य से 15 हजार गुना बड़ा है। इसके ग्रह इतने छोटे हैं कि मनुष्य आधा घंटे में ही इसकी परिक्रमा कर सकता है। इसी प्रकार हमारे सबसे नजदीकी सितारे 'अल्फा सेंटारी' के भी ग्रह ज्ञात किये गये हैं। यह सितारा 'नराश्य-मण्डल' 'जय' नामक प्रथम श्रेणी का सितारा है जो हमारी पृथ्वी के सबसे नजदीक का सितारा है जो यहाँसे 4.3 प्रकाश वर्ष दूर है। यह 16 जून को रात्रि 9 बजे जयपुर के अक्षांश से 88 अंश दक्षिण में अर्थात् दक्षिण क्षितिज के पास दिखाई देता है। एक रूसी प्राणी शास्त्र वेता **डॉ० यूरोरॉल** ने यह घोषित किया है कि हमारे तारा-मण्डलों में करीब डेढ़ लाख ग्रह हैं जिनमें बहुतों के अन्दर कई प्रकार के प्राणी विकास की निम्न स्थितियों में है। कुछ ग्रहों में मनुष्य से मिलते-जुलते प्राणी भी रहते हैं।

स्वच्छ रात्रि में देखने पर आकाश में एक सफेद दुधिया-सा मार्ग दिखाई देता है। यही हमारी 'मन्दाकिनी' या 'आकाश-गंगा' है जो हमारे 'विश्व' (Universe) की सीमा है। इस आकाश-गंगा के भीतर जितने नक्षत्रादि आते हैं वे सब इसी समूह में रहते हैं। इस प्रकार के समूह को 'द्वीप विश्व' (Island Universe) भी कहते हैं। हमारे इस 'द्वीप विश्व' की अन्तिम सीमा यही आकाश-गंगा है। यह मन्दाकिनी छोटे-छोटे तारों का सघन समूह है जो उत्तर ध्रुव के समीप 'वृषपर्वा-मण्डल' (Cepheus) धनु मण्डल, श्रवण, धनिष्ठा, हंस, शर्मिष्ठा, मण्डलों के पास दिखाई देता है। हमारा सौर-मण्डल इसी मन्दाकिनी का एक साधारण सौर-मण्डल है जो इसके केन्द्र की परिक्रमा करता है।

अन्य मन्दाकिनियाँ

पहले बताया जा चुका है कि ये सितारे समूहों में रहते हैं जिसमें छोटा समूह 'सौर-मण्डल' कहलाता है तथा ऐसे कई सौर-मण्डल व सितारे मिलकर एक बड़ा समूह बनता है जिसे 'मन्दाकिनी' कहते हैं। ऊपर जिस मन्दाकिनी का वर्णन किया गया है वह हमारी मन्दाकिनी है जिसमें हमारा सौर-मण्डल व पृथ्वी है किन्तु मन्दाकिनी भी अकेली नहीं है। आकाश में इस प्रकार की 10 करोड़ मन्दाकिनियाँ देखी गई हैं। 200 इंच व्यास वाली दूरबीन से देखने पर इनकी संख्या अरब तक पहुँच गई है तथा ज्योतिर्विदों की यह मान्यता है कि इससे भी अधिक मन्दाकिनियाँ हो सकती हैं जिनके विषय में अभी निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। इन मन्दाकिनियों में भी अरबों सितारे हैं तथा उनके सौर-मण्डल भी अवश्य होंगे। इनकी पारस्परिक दूरी करीब 15 लाख प्रकाश वर्ष मानी जाती है। हमारी मन्दाकिनी के सबसे पास वाली मन्दाकिनी 'देवयानी' (Andromeda) है जो इससे 15 लाख
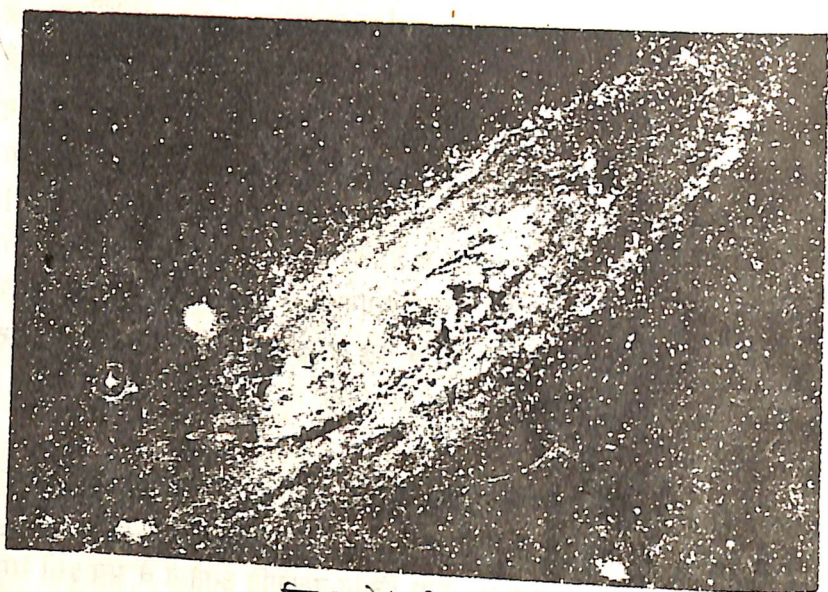
चित्र-3—देवयानी निहारिका

प्रकाश वर्ष दूर है । इसे कोरी आँख से देखा जा सकता है । आकाश मानचित्र सं० 1 में इसकी स्थिति 40 अंश उत्तरी अक्षांश तथा 15 अंश पूर्वी देशान्तर पर दिखाई गई है । यह शीत-ऋतु में 7 दिसम्बर को जयपुर के अक्षांश के शिरोबिन्दु से रात्रि 9.00 बजे 13 अंश उत्तर में दिखाई देती है । इन मन्दाकिनियों को 'निहारिकाएं' कहते हैं । ये 'सर्पिल' (Spiral) होती है । हमारी आकाश-गंगा भी एक 'सर्पिल निहारिका' ही है । निहारिकाओं में स्वतन्त्र तारे होते हैं किन्तु कई ऐसी होती हैं जिनमें गैस व ब्रह्माण्ड धूलि के बादल होते हैं जिन्हें 'नेबुला' कहते हैं । इस प्रकार की समस्त निहारिकाओं और नेबुला का बड़ा समूह 'ब्रह्माण्ड'(Cosmos) कहलाता है । इस ब्रह्माण्ड की असंख्य निहारिकाओं में हमारी निहारिका एक सामान्य निहारिका है । कोरी आँख से 'देवयानी' के अलावा 'कृतिका' (Pleiades) तथा 'मृगशिर' (Orion) निहारिकाएँ दिखाई देती हैं । मानचित्र में इनकी स्थिति देखकर इन्हें आकाश में देखा जा सकता है । *कृतिका* 28 दिसम्बर को रात्रि को 9.00 बजे जयपुर के शिरोबिन्दु से 4 अंश दक्षिण में दिखाई देती है तथा डूँगरपुर एवं बाँसवाड़ा में यह ठीक सिर पर दिखाई देगी । मृगशिर निहारिका 31 जनवरी को रात्रि 9.00 बजे जयपुर के अक्षांश के शिरोबिन्दु से 27 अंश दक्षिण में दिखाई देगी । 'देवयानी निहारिका' हमारी ही निहारिका से दूनी है । दूरवीक्षण यन्त्र की सहायता से लाखों मन्दाकिनियों का पता चला है । मृगशिर के नेबुला का व्यास 26 प्रकाश वर्ष है तथा यह हमारी मन्दाकिनी से 1624 प्रकाश वर्ष दूर है जो सबसे समीप का नेबुला है ।

चित्र-4—सर्पिल निहारिका

केलीफोर्निया विश्व विद्यालय के खगोल शास्त्री प्रोफेसर हाइरोन ने अभी एक नई आकाश-गंगा की उत्पत्ति को पृथ्वी पर देखा है। यह आकाश गंगा हमारी पृथ्वी से 12 अरब प्रकाश वर्ष की दूरी पर है। चूँकि इसका प्रकाश अब पृथ्वी पर पहुँचा है इसका अर्थ है इसकी उत्पत्ति आज से 12 अरब वर्ष पहले हुई थी। यह एक विशालकाय आकाश-गंगा है।

आरम्भ में ब्रह्माण्ड को अनन्त, निस्सीम माना जाता था किन्तु **आइन्स्टीन** के अनुसार यह अनन्त नहीं है। इसके आकार और विस्तार का हिसाब लगाकर बताया गया है कि इसका व्यास 350 अरब प्रकाश वर्ष है। यदि हमारी आकाश-गंगा को केन्द्र मानकर 33 लाख प्रकाश वर्ष अर्द्ध-व्यास का अन्तरिक्ष में एक वृत्त खींचा जाय तो उसमें 19 निहारिकाएँ मिलेंगी।

ब्रह्माण्ड रचना

आधुनिक वैज्ञानिकों ने इसकी रचना के कई सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं। एक सिद्धान्त के अनुसार आज के 10 अरब वर्ष पूर्व ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई। आरम्भ में शून्य में शक्ति का एक महान पुंज विद्यमान था। उस समय यह सम्पूर्ण शक्ति पुंज एक दम ठोस अवस्था में पूंजीभूत था। उस समय उसमें अचानक एक भयंकर विस्फोट

हुआ जिससे वह आदि भूत द्रव्य शून्य में बिखरने लगा। विस्फोट के समय केन्द्रीय पिंड का तापमान कई अरब अंश था किन्तु बिखराव की प्रक्रिया से तापमान गिरने लगा तथा उसके परमाणु परस्पर मिलकर तत्त्वों में बदल गये। इसके पश्चात् बादल बनें, आकाश-गंगाएँ बनी तथा .ठंडे होने की प्रक्रिया के बढ़ने से सितारों का जन्म हुआ तथा कई सितारों के पास सौर-मण्डल बन गये, ग्रह, उपग्रह आदि बने। इस समय यह ब्रह्माण्ड इसी बिखराव की अवस्था में है। यह निरन्तर फैलता जा रहा है तथा वैज्ञानिकों की मान्यतानुसार यह दो अरब वर्ष में लम्बाई-चौड़ाई में दूना हो जाएगा। इसके फैलने का वेग 20,000 मील (32,000 कि०मी०) प्रति सेकण्ड है। किन्तु बिखराव की यह प्रक्रिया अनन्त काल व सीमा तक चलती नहीं रहेगी। एक सीमा तक विस्तार होने के बाद इसका पुनः संकोचन आरम्भ हो जाएगा तथा ये सभी पिंड सिकुड़कर गुरुत्वाकर्षण के कारण पुनः केन्द्राभिमुख होंगे तथा यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पुनः उसी आदि अवस्था में आ जाएगा। इस अवस्था में आने के पश्चात् ये आकाशा-गंगाएँ व नक्षत्र परस्पर टकराएँगे जिससे भविष्य ताप उत्पन्न होगा तथा पुनः वही विस्तरण की क्रिया आरम्भ हो जाएगी। इस सिद्धान्त को 'विस्फोट का सिद्धान्त' या 'विकासवादी सिद्धान्त' कहते हैं। नभौ-भौतिकी (Astro-physicists) के विद्वानों की मान्यतानुसार संकोच और विस्तार की इस प्रक्रिया का एक चक्र 30 अरब वर्ष में पूरा होता है। इस समय हमारा ब्रह्माण्ड विस्तार की प्रक्रिया में आधी अवधि पार कर चुका है।
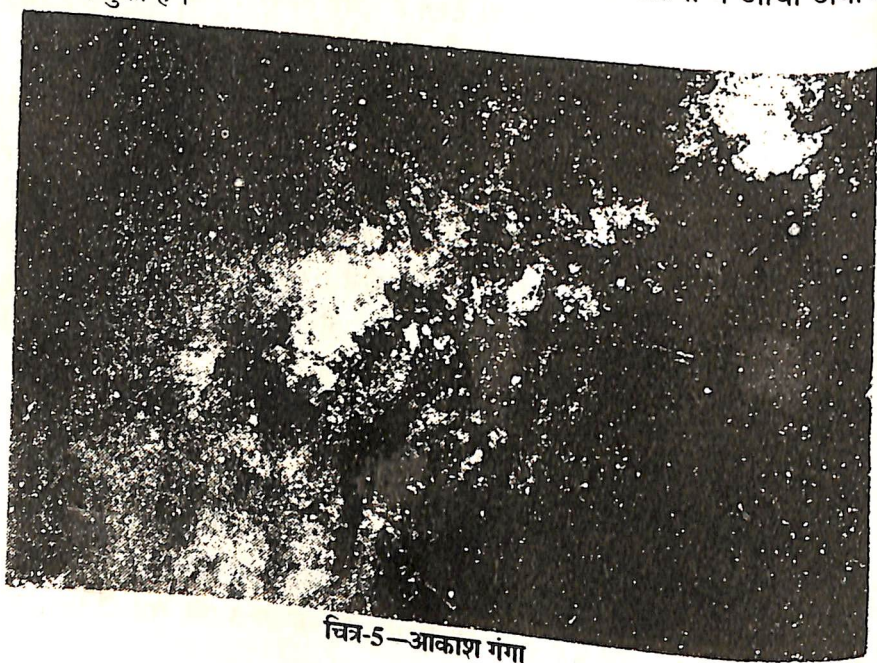
चित्र-5—आकाश गंगा

ब्रह्माण्ड उत्पत्ति का एक और सिद्धान्त वैज्ञानिकों ने प्रस्तुत किया है जिसे 'संतुलित ब्रह्माण्ड का सिद्धान्त' कहते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड का न कोई आरम्भ है न अन्त। संकोच एवं विस्तार की प्रक्रिया इसमें नहीं होती। आरम्भ से ही भूत-द्रव्य का विभाजन इसी प्रकार रहा है और आगे भी रहेगा। जैसे-जैसे मन्दाकिनी छितराती जाती हैं वैसे-वैसे अन्य मन्दाकिनियों की कमी पूरी होती जाती है। ब्रह्माण्ड में ब्रह्माण्डीय रजकण विचरण कर रहे हैं। वे गुरुत्वाकर्षण से परस्पर मिलकर सघन हो जाते हैं तथा पुनः इनका विस्फोट भी होता रहता है। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी केन्द्रीय पिंड के विस्फोट के परिणाम स्वरूप ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति नहीं मानी गई है।

इनके अतिरिक्त भी ब्रह्माण्ड उत्पत्ति के कई सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये किन्तु अभी तक कोई भी सर्वमान्य न हो सका।

भारतीय दृष्टि

ब्रह्माण्ड रचना के विषय में भारतीय अध्यात्म ग्रन्थों में पर्याप्त सामग्री मिलती है। इसके अनुसार सृष्टि का आरम्भ एक ही तत्व से हुआ है। जिसे 'ब्रह्म' कहा जाता है। यह ब्रह्म समस्त जड़ और चेतन स्वरूपों का मूल रूप था जिसमें सभी तत्व शक्ति के रूप में समाहित थे। एक पिंड रूप में नहीं बल्कि सर्वत्र व्याप्त था। इसमें शक्तियों के संगठन से 'ब्रह्मा' के रूप में ये शक्ति तत्व संगठित हुए। इन्हीं ब्रह्माओं से 'यज्ञ' प्रक्रिया से 'परमेष्ठी मण्डलों' का निर्माण हुआ जिसे वैज्ञानिक भाषा में निहारिकाएँ कह सकते हैं। ये परमेष्ठी मण्डल ब्रह्मा रूपी केन्द्रीय पिंड की परिक्रमा कर रहे हैं। इसके बाद इनमें पाये जाने वाले विभिन्न तत्वों के परस्पर घर्षण से अग्नि-कणों की उत्पत्ति हुई जिनके संगठित होने से सूर्यों का निर्माण हुआ जो अग्नि स्वरूप है। ये ही अग्नि कण शीतलता को प्राप्त होकर ग्रह एवं उपग्रह बनें। ये सभी पिंड गुरुत्वाकर्षण के कारण अपने केन्द्रीय पिंड की परिक्रमा कर रहे हैं जिनमें ब्रह्मा ही एक मात्र स्थिर पिंड है। ये सभी पिंड अण्डाकार मार्ग में घूमते हैं जिससे समस्त पिंड समूह का नाम 'ब्रह्माण्ड' पड़ा।

यह मान्यता 'विस्फोट के सिद्धान्त' एवं 'संतुलित ब्रह्माण्ड के सिद्धान्त' का समन्वित रूप है जिसमें संकोच एवं विस्तार की प्रक्रिया भी है किन्तु समस्त ब्रह्माण्ड का विस्तार एक ही केन्द्रीय पिंड के विस्फोट से न मानकर निरन्तर हो रहे विकास की प्रक्रिया का परिणाम माना जाता है। जिसकी विस्तृत व्याख्या लेखक की **'अध्यात्म, विज्ञान और धर्म'** नामक पुस्तक में की गई है।
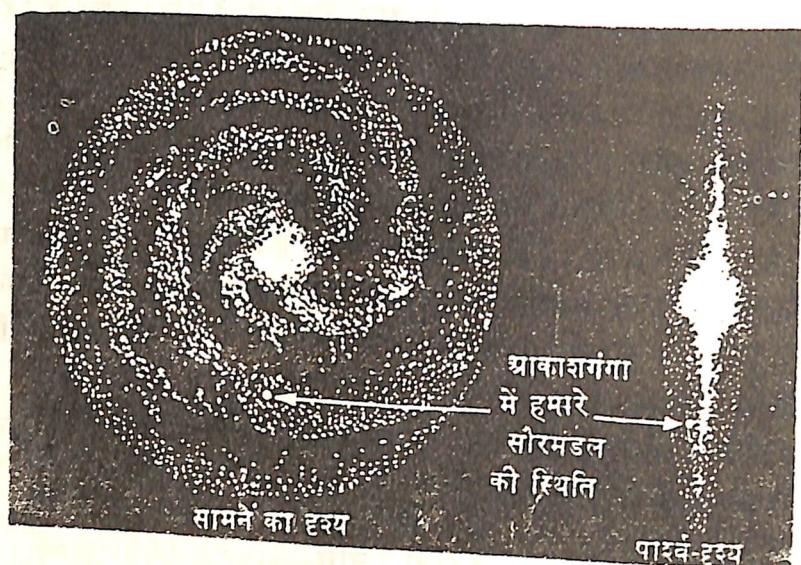
चित्र-6—हमारी आकाश गंगा

ब्रह्माण्ड के निर्माण एवं विध्वंस की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है जिसका विधिवत अध्ययन करने के लिए मानव आदि काल से प्रयत्नशील है। सृष्टि की गतिविधियों को समझना तथा वैज्ञानिक ढंग से उसका विवेचन करना ही ज्योतिर्विदों का चरम लक्ष्य होता है। इस प्रकार के अध्ययन व मनन से मनुष्य की जिज्ञासा बढ़ती है तथा वह नये-नये तथ्यों को जानने को उत्सुक रहता है। वैज्ञानिकों के लिए अन्वेषण ही इसका पुरस्कार है।

3

सितारे क्या है ?

सभ्यता के उषा: काल से ही मानव की जिज्ञासा सितारों के अवलोकन की ओर रही तथा सभी देशों और युगों में इनके विषय में अधिकाधिक प्राप्त करने के प्रयास किये गये। अपने साधन सुविधाओं के अनुसार इनके विषय में कई निर्णय लिये गये किन्तु ब्रह्माण्ड में फैले हुए सितारों का क्रम अभी भी रहस्य का विषय बना हुआ है जिसकी खोज निरन्तर जारी है। वैज्ञानिकों की उपलब्धियाँ महत्वपूर्ण होते हुए भी अभी इन्हें पूर्ण नहीं कहा जा सकता। गेलीलियो ने 1610 में अपन प्रथम दूरवीक्षण यन्त्र बनाकर सितारों के अवलोकन में एक नये अध्याय का सूत्रपात किया। आज संसार में ऐसे भीमकाय दूरवीक्षण यन्त्र बन चुके हैं जिनकी सहायता से ब्रह्माण्ड के कई नये रहस्यों के उद्घाटन में सहायता मिली है। मानव की जिज्ञासा तथा साधनों की श्रेष्ठता से विगत 375 वर्षों में मानव ने खगोल का जितना ज्ञान अर्जित किया है उतना इससे पूर्व हजारों वर्षों में भी नहीं किया जा सका। निश्चय ही विज्ञान की प्रगति ने मानव को अपराजेय शक्ति प्रदान की है जिससे वह इस सम्पूर्ण सृष्टि क्रम को समझने में सक्षम हुआ है। ब्रह्माण्ड में फैले इन असंख्य सितारों की नाप जौख करके कई महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये हैं जिनमें मुख्य है उनका गुरुत्वाकर्षण बल, संख्या, दूरी, प्रकाश, तापमान, तेजस्विता, आकार, घनत्व, गति, रंग तथा उनके प्रकार आदि जिनका वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

गुरुत्वाकर्षण बल (Force of Gravitation)

आकाशस्थ पिंडों का सबसे बड़ा रहस्य है उनका अधर में टिका रहना तथा निश्चित मार्ग एवं समय में किसी केन्द्रीय पिंड की परिक्रमा करना। इन दोनों का सम्बन्ध गुरुत्वाकर्षण से है। गुरुत्वाकर्षण वह शक्ति है जो अन्य समीपस्थ पदार्थों को अपने केन्द्र की ओर खींचती है। इस शक्ति का ज्ञान सामान्य रूप से प्राचीन काल में भी था किन्तु **न्यूटन** ने इसकी विस्तृत व्याख्या की। न्यूटन ने बगीचे में सेव के वृक्ष से जब सेव को पृथ्वी पर गिरते देखा तो उसके मस्तिष्क में अनेक प्रश्न पैदा हुए और उनका सारभूत तत्व 'गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त' के रूप में प्रकट हुआ। इस सिद्धान्त में उसने उद्घोषित किया कि, *"पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण शक्ति है जिससे वह अन्य समीपस्थ वस्तुओं को अपने केन्द्र की ओर खींचती है। यह गुरुत्वाकर्षण शक्ति सृष्टि के प्रत्येक अणु में विद्यमान है किन्तु उसकी मात्रा भिन्न-भिन्न है। गुरुत्वाकर्षण की यह*

मात्रा दो पिंडों के द्रव्य मानों (Mass) तथा दूरी पर निर्भर रहती है। दो पिंडो के द्रव्य मानों का गुणनफल जितना अधिक होगा आकर्षण उतना ही अधिक होगा तथा दोनों पिंडों के बीच की दूरी जितनी अधिक होगी आकर्षण उसके वर्ग के अनुपात से कम होगा। यदि दो पिंडों के बीच की दूरी दूनी हो जाय तो आकर्षण चौथाई ही रह जायगा।" यह गुरुत्वाकर्षण प्रत्येक पदार्थ का गुण है। उदाहरण के तौर पर यदि हम पृथ्वी से ऊपर कूदते हैं तो पृथ्वी हमारी ओर खिंचती है किन्तु हमारा द्रव्ययान कम होने से पृथ्वी का यह खिंचाव इतना सूक्ष्म होता है कि हम उसे देख नहीं पाते। पृथ्वी और चन्द्रमा में पृथ्वी का द्रव्यमान अधिक होने से उसका आकर्षण भी अधिक है तथा चन्द्रमा का कम है। सूर्य का आकर्षण पृथ्वी से भी अधिक है किन्तु यह आकर्षण दूरी के अनुपात से कम होता है। चन्द्रमा का आकर्षण सूर्य से कम है किन्तु चन्द्रमा पृथ्वी के पास होने से सूर्य की अपेक्षा उसका प्रभाव अधिक होता है। जैसे एक वस्तु पृथ्वी तल पर पड़ी है जो उसके केन्द्र से 6400 किलोमीटर (4000 मील) दूर है जबकि चन्द्रमा की दूरी पृथ्वी के केन्द्र से 3,88,800 किलोमीटर (2,43,000 मील) है। अत: यह दूरी पृथ्वी के धरातल पर पड़ी वस्तु की अपेक्षा 60 गुना अधिक है जिससे पृथ्वी चन्द्रमा को 60 x 60 = 1/3600 की शक्ति से खींचती है अर्थात् यह प्रति सेकण्ड में एक ईंच के अंश में पृथ्वी की ओर गिर रहा है किन्तु उसके घूमने के कारण उसकी अग्रगति से उसमें इतना ही 'केन्द्र प्रसारी बल' (Centrifugal Force) पैदा होता है जिससे यह पृथ्वी की ओर नहीं गिर पाता। गुरुत्वाकर्षण के नाप से ही इन पिंडों का वजन निकाला जाता है।

सभी आकाशीय पिंड इसी गुरुत्वाकर्षण के कारण एक दूसरे को आपस में खींचे हुए हैं तथा इसी प्रकार ब्रह्माण्ड का संतुलन कायम है। अपने आकर्षण को कायम रखते हुए भी सभी पिंड आकाश में एक निश्चित मार्ग पर चलते रहते हैं। सूर्य का गुरुत्वाकर्षण ही पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों को अपने चारों ओर घुमाता है, पृथ्वी चन्द्रमा को घुमाती है, पृथ्वी पर ज्वार-भाटा चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण के कारण आता है, हमारा वजन भी गुरुत्वाकर्षण के ही कारण है, हम इसी गुरुत्वाकर्षण के कारण पृथ्वी पर टिके हैं। किन्तु सभी आकाशीय पिंडों का गुरुत्वाकर्षण एक जैसा नहीं है।

सितारे क्या हैं?

ब्रह्माण्ड में कई प्रकार के पिंड हैं जिनमें सितारे भी हैं। ये सितारे सभी सूर्य हैं जिनमें स्वयं का प्रकाश है। यद्यपि ये सितारे स्थिर ज्ञात होते हैं तथा हम अपनी पृथ्वी के व्यावहारिक कार्यों के लिए इन्हें स्थिर ही मानते हैं किन्तु ये भी वास्तव में तीव्र गति से अपने केन्द्रीय पिंड की परिक्रमा कर रहे हैं। जिस प्रकार हमारा सूर्य धनु राशि की

परिक्रमा कर रहा है उसी प्रकार हमारी आकाश-गंगा के सभी सितारे इस धनु राशि की परिक्रमा कर रहे हैं।

सितारों की संख्या

यह पहले बताया जा चुका है कि स्वच्छ रात्रि में कोरी आँख से हम एक समय में करीब 2-3 हजार सितारे देख सकते हैं तथा विभिन्न ऋतुओं में नये सितारे दिखाई देते हैं जिससे कुल 6-7 हजार सितारे देखे जा सकते हैं, किन्तु दूरवीक्षण यन्त्र की सहायता से कई गुना अधिक सितारे देखे गये हैं। 40 इंच व्यास वाली दूरबीन से 10 करोड़ से भी अधिक सितारे देखे गये हैं तथा 100 इंच व्यास वाली दूरबीन से 1.5 अरब सितारों के चित्र लिये गये हैं। हमारी मन्दाकिनी में ही 3 खरब नक्षत्र हैं। इतना होते हुए भी आकाश का अधिकांश भाग खाली है। यदि हमारे सूर्य का आकार एक छोटे बिन्दु (.) जैसा माने तो सबसे नजदीक का दूसरा सूर्य ऐसे ही बिन्दु के आकार का 16 कि०मी० दूर होगा। इतना स्थान रिक्त है। कुछ सितारे तो सैकड़ों और हजारों मील दूर होंगे।

सितारों की दूरियाँ

पृथ्वी पर दूरियाँ नापने के लिए मिलीमीटर, सेण्टीमीटर, मीटर तथा किलोमीटर आदि काम में लिये जाते हैं। पुराने नापों में इंच, फीट, गज, फर्लांग और मील काम में लिये जाते थे। पृथ्वी की दूरियाँ मील अथवा किलोमीटर में नापी जाती है किन्तु सितारों की दूरियाँ इतनी अधिक है कि मीलों और किलोमीटर में नापने पर संख्याएं बहुत छोटी पड़ती हैं जिससे इनके लिए नई इकाई 'प्रकाश वर्ष' (Light Year) काम में ली जाती है। प्रकाश की गति सेकण्ड में 1,86,300 मील (2,98,080 कि०मी०) है। इस गति से चलकर एक वर्ष में प्रकाश जितनी दूर जाता है उसे प्रकाश वर्ष कहते हैं जो 1,86300 x 60 x 60 x 24 x 365 मील के बराबर होता है। इस प्रकाश वर्ष के अनुसार सूर्य का प्रकाश पृथ्वी तक आने में 8.5 मिनिट लगते है अतः इसकी पृथ्वी से दूरी 8.5 मिनिट कही जाती है। हमारे सौर-मण्डल का सबसे दूर का ग्रह 'यम' (प्लूटो) 5.5 घंटे दूर है किन्तु सितारे इनसे कई गुना अधिक दूरी पर है।

पृथ्वी के सबसे नजदीक का सितारा 'जय' (Alpha Centauri) हमारी पृथ्वी से 4.3 प्रकाश वर्ष दूर है। हमारी मन्दाकिनी का दूरतम सितारा यहाँ से 500 प्रकाश वर्ष दूर है। 'श्वान मण्डल' का 'लुब्धक' सितारा हमसे 86 प्रकाश वर्ष दूर है। 'ध्रुवतारा' 47 प्रकाश वर्ष की दूरी पर है। अन्य मुख्य-मुख्य सितारों की पृथ्वी से

दूरियाँ परिशिष्ट 3 में दी गई है जिनसे ज्ञात हो सकता है कि ये सितारे हमसे कितनी दूरी पर है।

आकाश में दूरस्थ पिंडों की दूरियाँ ज्योमितीय विधियों से नापी जाती है। ज्योमितीय नियमानुसार यदि एक त्रिभुज की एक भुजा और दो कोण ज्ञात हो तो उसकी अन्य भुजाएँ ज्ञात की जा सकती है। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है जिससे
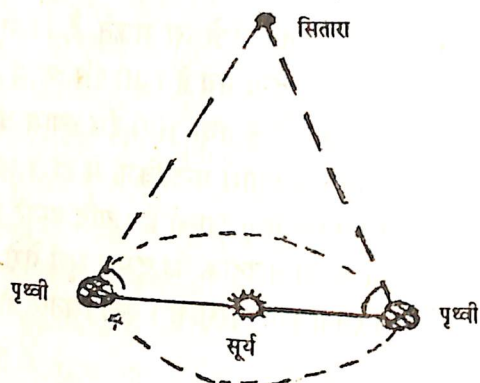
चित्र-7—सितारों की दूरियाँ

एक बार पृथ्वी से सितारों के फोटो लिये जाते हैं तथा दूसरी बार छः महीने बाद जब पृथ्वी सूर्य के विपरीत दिशा में होती है तो फिर फोटो लिये जाते हैं। इन दोनों के बीच में जो अन्तर पड़ता है उससे दूरियाँ ज्ञात की जाती है। पृथ्वी की कक्षा का व्यास 18.5 करोड़ मील (30 करोड़ किलोमीटर) का होता है जो इसकी आधार रेखा बनती है किन्तु दूर के सितारों के लिए यह आधार रेखा भी छोटी पड़ती है।

सितारों का प्रकाश

सितारों में स्वयं का प्रकाश होता है। वे हमारी पृथ्वी तथा चन्द्रमा की भाँति अन्य पिंडों के प्रकाश से प्रकाशित नहीं है। जिस प्रकार हमारा सूर्य स्वयं एक आग का गोला है जिसका स्वयं का प्रकाश है ऐसे ही ये सितारे भी है। इनका यह प्रकाश आणविक प्रतिक्रिया से उत्पन्न होता है जैसे कि हाइड्रोजन बम में होता है। जब हाइड्रोजन के अणु विखंडन की क्रिया से हीलियम में परिवर्तित होते हैं तो उनकी 1% मात्रा ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। इस ऊर्जा से उसका भीतरी तापमान लाखों डिग्री हो जाता है। उनका सतह का तापमान 5500 अंश फ० से 55000 अंश फ० तक हो जाता है। एक पौंड हाइड्रोजन के हीलियम में परिवर्तित होने पर 10,000 टन कोयले से प्राप्त ऊर्जा के बराबर ऊर्जा प्राप्त होती है। इस प्रकार सितारों से प्रति सेकण्ड भारी मात्रा में ऊर्जा निरस्त हो रही है।

सितारों का तापमान व रंग

हमारी पृथ्वी पर वायुमण्डल का सर्वोच्च तापमान 59 अंश से० (136 अंश फ०) नापा गया है तथा विद्युत भट्टियों में मानव ने 3000 अंश से० ताप पैदा किया है। सूर्य का तापमान सतह पर 6000 अंश से० (10,000 अंश फ०) है किन्तु इन सितारों में सूर्य से भी कई गुना अधिक ताप विद्यमान है। उदाहरणार्थ 'लुब्धक' सितारे का तापमान 11,000 अंश से०, 'स्वाति' का 4,300 अंश से०, 'वाणराज' का 16,000 अंश से०, 'अगस्त्य' का 11,000 अंश से० है। सितारों के तापमान का पता उसकी चमक तथा रंग के आधार पर लगाया जाता है। मन्द प्रकाश वाले सितारे का तापमान 1400 अंश से० पीले रंग के तारे का तापमान 2800 अंश से० होगा आदि। रंग के अनुसार सूर्य पीले रंग का, लुब्धक श्वेत, स्वाति नारंगी, आर्द्रा लाल, ज्येष्ठा लाल तथा अगस्त्य श्वेत रंग के दिखाई देते हैं। लाल रंग वाले सितारों का तापमान 3000 अंश होगा, श्वेत का 10,000 अंश से० तथा नारंगी रंग वाले का 4000 अंश होगा। ताप के अनुसार इनके रंगों में परिवर्तित होता है।

तेजस्विता (Magnitude)

हमारा सूर्य आकार तथा चमक में सामान्य सितारा है। कुछ सितारे इस सूर्य से 6 लाख गुने अधिक चमकीले हैं तथा कुछ बहुत ही कम चमक वाले हैं। सितारों की यह चमक दो प्रकार से देखी जाती है। एक तो उसकी वास्तविक चमक होती है जो उसके तापमान पर निर्भर करती है तथा दूसरी हमें जैसी दिखाई देती है। हमें दिखाई देने वाली चमक पर दूरी का प्रभाव पड़ता है जैसे कोई मन्द चमक वाला सितारा भी समीप होने पर हमें अधिक तेजस्वी दिखाई देगा तथा दूर का सितारा अधिक चमक वाला होते हुए भी मन्द दिखाई देगा। सितारों की यह चमक 'तेजस्विता' में नापी जाती है। तेजस्विता के अनुसार इन्हें छः वर्गों में बाँटा गया है। छठवीं श्रेणी के सितारे सबसे मन्द सितारे हैं। पाँचवीं श्रेणी के उनसे 2.5 गुना अधिक तेजस्वी होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक श्रेणी में तेजस्विता 2.5 गुनी अधिक होती है। प्रथम श्रेणी के सितारे छठवीं श्रेणी से 100 गुना अधिक तेजस्वी होते हैं। कोरी आँख से छठवी श्रेणी तक के सितारे देखे जा सकते हैं। इनकी पहचान तारामण्डल में विशेष नाम द्वारा उनकी स्थिति से होती है अथवा उनकी श्रेणी के आधार पर होती है।

सितारों की श्रेणी ग्रीक वर्णमाला के अक्षरों में बताई जाती है जैसे प्रथम श्रेणी का सितारा 'अल्फा वर्ग' कहलाता है, दूसरी श्रेणी का 'बीटा वर्ग' कहलाता है। इसी प्रकार 'गामा, डेल्टा, थिटा' और 'जीटा वर्ग' है। 'अल्फा सेंटारी' का अर्थ है

'सेण्टारस' (नराश्य) तारामण्डल का प्रथम श्रेणी का सितारा। इसी प्रकार 'रेवती' नक्षत्र को 'जिटा पीसियम' कहते हैं अर्थात् 'पीसेज' (मीन) तारामण्डल का छठवीं श्रेणी का सितारा आदि। भारत में भी तारा समूह के अनुसार इन वैज्ञानिक नामों को हिन्दी में अपनाया है। आकाश में प्रथम श्रेणी के 20 सितारे हैं जो परिशिष्ट-3 में दिये गये हैं तथा सूर्य के सापेक्ष इनकी वास्तविक तेजस्विता दी गई है। मुख्य-मुख्य सितारों के वैज्ञानिक नाम निम्न प्रकार हैं—

क्र०	नाम सितारा	अंग्रेजी नाम	तारामंडल	पाश्चात्य वैज्ञानिक नाम	भारतीय वैज्ञानिक नाम
1.	लुब्धक	Sirius	श्वान मंडल	Alpha Camis	क-श्वान
2.	अगस्त्य	Canopus	नौका "	" Majoris	क-नौत्तल
3.	अभीजित	Vega	वीणा "	" Argus	क-वीणा
4.	स्वाति	Arctaurus	भूतेश "	" Lyrae	क-भूतेश
5.	रोहिणी	Aldebaran	वृष "	" Bootis	क-वृष
6.	चित्रा	Spica	कन्या "	" Tauri	क-कन्या
7.	पू० फाल्गुनी	–	सिंह "	" Virginis	क-सिंह
8.	जय	Rigil Kentaurun	नराश्य "	Theta Leonis	क-नराश्य

परिशिष्ट-3 में जो तेजस्विता दी गई है वह सूर्य के सापेक्ष उन सितारों की वास्तविक तेजस्विता है जबकि इनका छः भागों में यह वर्गीकरण पृथ्वी से दिखाई देने वाली तेजस्विता के आधार पर किया गया है। अधिक तेजस्वी सितारा भी दूरी के कारण छठी श्रेणी में आता है तथा कम तेजस्वी होने पर भी वह कम दूरी के कारण अधिक तेजस्वी दिखाई देता है जिससे उसे प्रथम श्रेणी में लिया गया है।

सितारों का आकार

जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं वह हमें बहुत बड़ी ज्ञात होती है। इनती बड़ी कि हम अपने जीवन में उसे सम्पूर्ण रूप से कभी देख ही नहीं सकते। पृथ्वी का व्यास 1,28,00 किलोमीटर (8000 मील) है किन्तु आकाश के अन्य पिंडों की तुलना में यह कुछ भी नहीं है। हमारा सूर्य ही इस पृथ्वी से 13 लाख गुना बड़ा है किन्तु कई सितारे इससे भी कई गुना बड़े हैं। आकाश के हमसे सबसे समीप के सितारे पर जाकर यदि हम पृथ्वी को देखें तो सम्भवतः वह हमें दिखाई ही नहीं देगी। हमारे सूर्य का व्यास पृथ्वी से 109 गुना है। यदि हमारे पृथ्वी जैसी 109 पृथ्वियाँ एक सीधी रेखा में रखी जायँ तो उसका व्यास सूर्य के व्यास के बराबर होगा किन्तु ये सितारे

हमारे सूर्य से भी कई गुना बड़े हैं। यदि हम सूर्य के व्यास को 1 मान लें तो अन्य मुख्य-मुख्य सितारों का व्यास निम्न प्रकार होगा—

1. लुब्धक	1.6	4. आर्द्रा	300
2. स्वाति	27	5. ज्येष्ठा	450
3. वाणराज	30		

'मृगलोचनी' हमारे सूर्य से 7 करोड़ 40 लाख गुना बड़ा है, 'वृषपर्वा मण्डल' का एक नक्षत्र विशाल दैत्य-w सूर्य से 14 अरब गुना बड़ा है। 'आर्द्रा नक्षत्र' हमारे सूर्य से 3 करोड़ गुना बड़ा है। *ज्येष्ठा* इससे भी बड़ा है। ऐसे सितारे 'विराट सितारे' (Giants Stars) कंहलाते हैं। कई सितारे वामनाकृति भी होते हैं जिन्हें 'वामन सितारे' (Dwarb Stars) कहते हैं। हमारा सूर्य एक 'वामन तारा' है। 'फानमानेन' भी एक वामन सितारा है जिसका व्यास हमारी पृथ्वी के ही बराबर है। शर्मिष्ठा मण्डल का एक सितारा भी वामनाकृति है जिसका व्यास पृथ्वी का 1/8 ही है। 'लुब्धक' का एक छोटा साथी तारा है जिसका व्यास सूर्य का 0.034 ही है।

सितारों का घनत्व

सितारों के घनत्व तथा उनके वजन में भी बड़ी भिन्नताएँ हैं। वास्तव में सभी सितारे गैसे पिंड ही हैं किन्तु ये गैसें भी विभिन्न अवस्थाओं में पाई जाती हैं। कुछ सितारों का घनत्व हमारे सूर्य के ही घनत्व के बराबर है किन्तु कुछ वामन तारे ऐसे भी हैं जिनका घनत्व सर्वाधिक है। हमारी पृथ्वी का घनत्व 5.5 है अर्थात् यह जल के घनत्व की अपेक्षा 5.5 गुनी भारी है। सूर्य का बड़ापन पृथ्वी से कई गुना अधिक है किन्तु यह गैस अवस्था में होने के कारण उसका घनत्व 1.41 ही है जो पृथ्वी से हल्का है। पृथ्वी पर पाया जाने वाला सबसे भारी पदार्थ 'प्लेटिनम' है जिसका घनत्व 21.4 है, 'सोने' का 19.5 है, 'शीशे' का 11.0 है किन्तु कई सितारे इनसे भी कई गुना अधिक घनत्व वाले हैं। उदाहरण के तौर पर 'ज्येष्ठा नक्षत्र' का घनत्व 3,00,00,000 है, 'आर्द्रा' का 6,00,000 है, 'लुब्धक' के एक छोटे साथी का घनत्व 27,000 है, 'फानमानेन' का घनत्व 4,00,000 है, 'शर्मिष्ठा' के एक तारे का घनत्व सोने का 20 लाख गुना है। किन्तु कई सितारे बहुत हल्के भी हैं जिनका घनत्व जल से भी कम है। 'स्वाति नक्षत्र' का घनत्व 0.0003 है, 'लुब्धक' का 0.42 है, 'वाणराज' का 0.002 तथा 'अगस्त्य' का 0.0001 है।

सितारों की गतियाँ

सामान्य तौर पर तथा अपने व्यावहारिक कार्यों की दृष्टि से हम सितारों को

स्थिर मानते हैं। किन्तु वैज्ञानिकों की शोध के अनुसार कोई भी आकाशीय पिंड स्थिर नहीं है। जिस प्रकार हमारा चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है तथा पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा कर रही है उसी प्रकार हमारा सूर्य भी अपने समस्त सौर-परिवार को साथ लिये किसी केन्द्रीय पिंड की परिक्रमा कर रहा है। हमारे सूर्य की ही भाँति अन्य सितारे भी अपने-अपने केन्द्रीय पिंड की परिक्रमा कर रहे हैं तथा ये सभी केन्द्रीय पिंड हमारी आकाश-गंगा केन्द्र 'धनु राशि' की परिक्रमा कर रहे हैं। बात यहीं पर समाप्त नहीं हो जाती। हमारी आकाश-गंगा जैसी इस ब्रह्माण्ड में अनेक आकाश-गंगाएँ हैं। ये आकाश-गंगाएँ भी किसी निश्चित केन्द्र की परिक्रमा कर रही हैं। इसलिए इस ब्रह्माण्ड में स्थिर पिंड किसी को नहीं कहा जा सकता।

जिस प्रकार हर मनुष्य का सम्बन्ध किसी न किसी परिवार से होता है, परिवार का नाते, रिश्ते, गोत्र से होता है तथा गाँव से होता है, गाँव का राज्य से, राज्य का देश से तथा देशों का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध होता है वैसा ही इन आकाशीय पिंडों का सम्बन्ध है। मनुष्य अपना पारिवारिक तथा राष्ट्रीय सम्बन्ध प्रेम, सहयोग, वाणिज्य-व्यापार आदि द्वारा स्थापित करता है किन्तु ये आकाशीय पिंड अपने पिता केन्द्रीय पिंड की चारों ओर निरन्तर परिक्रमा करके ही अपने स्नेह एवं पारिवारिक भावना का परिचय देते हैं। यह निश्चित रूप से माना जा सकता है कि जो पिंड जिस केन्द्रीय पिंड की परिक्रमा कर रहा है उसकी उत्पत्ति उसी पिंड से हुई है किन्तु कोई पिंड उस केन्द्रीय पिंड से परिक्रमा के कारण यदि अधिक दूर निकल जाता है तो उसके समीप का पिंड अपने गुरुत्वार्षण से उसे अपनी ओर खींच लेता है जिससे वह दूसरे परिवार का सदस्य बन जाता है तथा पूर्व परिवार से अपना सम्बन्ध हमेशा के लिए तोड़ देता है अर्थात् वह दूसरे परिवार की गोद चला जाता है किन्तु वह किसी न किसी परिवार का सदस्य अवश्य रहता है चाहे वह स्वयं अपना परिवार न बना सके जैसे कई प्राणी सन्तान हीन ही रह जाते हैं।

इसी पारिवारिक भावना के कारण हमारा सूर्य भी 12 मील प्रति सेकण्ड की गति से 'शौरी-मण्डल' (Horcules) की ओर बढ़ रहा है तथा 200 मील प्रति सेकण्ड की गति से हमारी आकाश-गंगा के केन्द्र 'धनु राशि' का चक्कर लगा रहा है। अन्य सितारे भी इसी प्रकार 30 मील प्रति सेकण्ड या इससे अधिक गति से चल रहे हैं। 'स्वाति' नक्षत्र 84 मील प्रति सेकण्ड की गति से चल रहा है। कुछ सितारे अपने केन्द्रीय पिंड की परिक्रमा करने के लिए चल रहे हैं तथा कुछ पूरा का पूरा सितारों का समूह चलता रहता है। 'वृष मण्डल' के सभी सितारे 30 मील प्रति सेकण्ड की गति से चल रहे हैं। कुछ दो या इससे अधिक सितारों के समूह भी
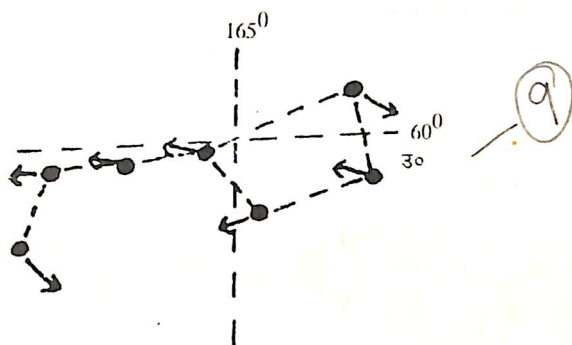
चित्र-8—सप्तर्षि के सितारों की गति

अंतरिक्ष परिक्रमा में किसी केन्द्र की परिक्रमा करते हैं। तारा-मण्डलों में जितने सितारे दिखाई देते हैं वे आवश्यक नहीं कि एक परिवार के सदस्य हों। ये एक दूसरे से बहुत दूर हैं तथा भिन्न-भिन्न परिवार के सदस्य होने से भिन्न-भिन्न दिशाओं की ओर तथा भिन्न-भिन्न गतियों से चल रहे हैं। उदाहरण के रूप में 'सप्तर्षि-मण्डल' के सितारे भिन्न-भिन्न दिशाओं की ओर इस समय बढ़ रहे हैं जैसा कि नीचे चित्र में दिखाया गया है।

सितारों के प्रकार

(i) युग्म सितारे—जितने ज्ञात सितारे हैं उनमें एक तिहाई सितारे 'युग्म सितारे' (Binary Stars) हैं। इनमें से कुछ को कोरी आँख से भी देखा जा सकता है। कुछ सितारे तीन या इनसे अधिक के जोड़ों में भी होते हैं जैसे कन्या राशि के 'प्रकृति सितारे' में तीन जोड़े हैं (छह) हैं। 'सप्तर्षि-मण्डल' में 'वशिष्ठ' का सितारा 'युग्म सितारा' है। पास में छोटा 'अरुन्धती' का सितारा है। 'चित्रा' और 'ब्रह्म हृदय' भी 'युग्म सितारे' हैं। इन युग्म सितारों में भी छोटे सितारे बड़े पिंड की परिक्रमा करते रहते हैं जिससे ग्रहण जैसी स्थिति भी बनती है।

(ii) परिवर्तनशील सितारे—सितारों में कुछ सितारे ऐसे भी हैं जिनका प्रकाश परिवर्तित होता रहता है। इनमें कुछ ऐसे हैं जिनका विस्फोट भी होता रहता है। इन्हें 'नवतारा' (Nove) कहते हैं। 'शर्मिष्ठा' के पास ऐसा ही एक 'नवतारा' देखा गया है।

इन युग्म सितारों के केन्द्रीय पिंड के चारों ओर घूमने के कारण इनकी दूरियों तथा प्रकाश में भी अन्तर आता रहता है। जिनसे इनकी दूरियों की गणना भी गलत हो जाती है। ऐसा ही इन 'मन्दाकिनियों' के घूमने के कारण होता है।

(iii) तारक गुच्छा (Star Clusters) – कई सितारे समूहों में रहते हैं जो एक-दूसरे के बहुत समीप होते हैं तथा ये ग्रह प्रणाली की भाँति घूमते रहते हैं। हमारी आकाश-गंगा में ऐसे 300 'तारक गुच्छ' हैं। सप्तर्षि-मण्डल में भी ऐसा तारक गुच्छा दिखाई देता है। 'वृष-मण्डल' में 150 सितारों का एक समूह है। अधिकांश तारक गुच्छे मन्दाकिनी में हैं।

चित्र-9—तारक गुच्छ

सितारों की उत्पत्ति

सितारों की उत्पत्ति भी एक रहस्य है। वैज्ञानिकों की मान्यतानुसार ये आकाश में ब्रह्माण्डीय गैस एवं धूलि कणों से विकसित हुए हैं। जब वे सिकुड़ते हैं तो उनका ताप बढ़ जाता है व वे अधिक गर्म हो ज़ाते हैं। कुछ कहते हैं कि गर्म सितारे फैलते हैं तथा वे 'दैत्याकार सितारे' बन जाते हैं। जब विकरिण से उनके ताप में कमी आती है तो वे सिकुड़ कर विस्फोट करते हैं जिन्हें 'नव तारा' कहते हैं तथा बाद में वे सिकुड़कर 'श्वेत वामन सितारे' बन जाते हैं और धीरे-धीरे .ठंडे होकर अपनी प्रकाश खो देते हैं। नये नक्षत्रों का निर्माण अभी जारी है।

वैज्ञानिक इससे भी बड़ी उलझन में है कि यह सारा ब्रह्माण्ड फैलता जा रहा है। दूर के तारक समूह एवं मन्दाकिनियाँ तीव्र गति से आगे सरक रही हैं। यह क्रिया कैसे आरम्भ हुई तथा इसका अन्त कहाँ होगा यह विचारणीय है। फिर वैज्ञानिकों की

यह भी धारणा है कि यह फैलने की बात वास्तविक भी है या निरी कल्पना मात्र है अथवा केवल दिखाई देती है जो भ्रम मात्र है। वैज्ञानिक इस प्रकार की अनेक समस्याओं से निरन्तर जूझ रहे हैं तथा नित्य नये सिद्धान्त एवं विचार सामने आ रहे हैं। सम्भवत: ये निकट भविष्य में तथ्यात्मक विवरण रख सकेंगे।

ब्लैक होल (Black Hole)

कुछ सितारे इतने विशाल, भारी और ठोस होते हैं कि उनका गुरुत्वाकर्षण निरन्तर बढ़ता जाता है जिससे वे सिकुड़ते जाते हैं तथा उनका अन्त 'ब्लैक होल' में होता है। ये इतने भारी तथा विशाल होते हैं कि ये अपने गुरुत्वाकर्षण से जिन पदार्थों का ये विकिरण करते हैं उन्हें पुन: खींचने लगते हैं। इनसे प्रकाश का वेग तथा विद्युत चुम्बकीय विकीरण भी इनसे बाहर नहीं जा सकते। इसलिए इनकी खोज कर पाना कठिन है। इनका अनुभव समीपवर्ती पिंडों पर पड़ रहे आशचर्यजनक प्रभाव से ही लगाया जा सकता है।

4

सितारों का अवलोकन एवं अध्ययन

सितारों को क्यों देखें ?

जब स्वच्छ मेघ रहित अन्धकारमय रात्रि में आकाश की ओर देखते हैं तो उस नीलाकाश में असंख्य टिमटिमाते हुए सितारे दिखाई देते हैं। इन्हें देखकर हर व्यक्ति के मन में यह स्वाभाविक इच्छा पैदा होती है कि ये सितारे क्या हैं? ये नित्य प्रति क्यों उदय अस्त होते हैं? ये ऋतु के अनुसार अपना स्थान क्यों बदलते हैं? क्या इनके घूमने का कोई नियम भी है? ,आदि। ये सितारे सभी समान नहीं हैं। कुछ अधिक चमकीले हैं व कुछ कम चमकीले, कुछ स्थिर हैं तथा कुछ घूमते रहते हैं, कुछ सितारे विशेष प्रकार की आकृतियाँ बनाते हैं। इन्हीं सितारों एवं सूर्य, चन्द्रमा आदि की सहायता से दिन, तिथि, मास, वर्ष आदि की गणना होती है तथा इन्हीं से दिशा ज्ञान भी होता है जिससे यात्री अपना मार्ग निश्चित करते हैं। इतिहास की काल गणना का भी यही आधार है। आज अनेक मानव निर्मित यन्त्रों की सहायता से दिशा एवं समय का ज्ञान होता है किन्तु इनका आधार भी ये आकाशीय पिंड ही है। यह कार्य बड़ी-बड़ी वेधशालाओं में होता है। इन सितारों का महत्व आज भी कम नहीं हुआ है। इनका अध्ययन केवल रुचिकर ही नहीं महान् उपयोगी भी है जिनका थोड़ा बहुत ज्ञान हर व्यक्ति को होना आवश्यक है। इन सब का अध्ययन एक अलग ही विज्ञान के रूप में किया जाता है जो इन सब प्रश्नों का उत्तर देता है। इस विज्ञान को 'ज्योतिर्विज्ञान' (Astronomy) कहते हैं। स्काउटों, सैनिकों, मल्लाहों, यात्रियों के लिए इसकी सर्वाधिक उपयोगिता है तथा इसका प्रशिक्षण भी दिया जाता है। इस समस्त ब्रह्माण्ड में इन सितारों का आकार एवं दूरी के ज्ञान से मनुष्य को अपनी साधुता का भी आभास होता है कि हम कितने तुच्छ हैं।

सितारों को कहाँ देखें ?

सितारों को देखने का शहर या गाँव से दूर कोई खुला स्थान सबसे अच्छा स्थान है। शहर या गाँव में धूली एवं प्रकाश के कारण ये सितारे साफ नहीं दिखाई देते। शहर से दूर यदि कोई ऊँची पहाड़ी हो तो उसके शिखर पर जाकर ही इन्हें देखना चाहिए जहाँ ऊँचाई के कारण क्षितिज भी बड़ा दिखाई देता है तथा धूलि कणों की मात्रा कम हो जाने से ये सितारे बड़े चमकीले दिखाई देते हैं तथा छोटे-छोटे सितारे भी स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। ऊँचे मकान की छत से भी इन्हें देखा जा

सकता है किन्तु आसपास अन्य ऊँचे मकानों एवं वृक्षों आदि की बाधा न हो ।

सितारों को कब देखें ?

वैसे जब आकाश में अधिक धूलि कण, बादल, कोहरा, धूँध आदि न हो तो ये वर्ष भर देखे जा सकते हैं किन्तु आकाश में चन्द्रमा के होने पर कई मन्द तारे दिखाई नहीं पड़ते । केवल कुछ अधिक चमकीले तारे ही दिखाई पड़ते हैं। इसके लिए अमावस्या की या अन्य अँधेरी रात्रि उपयुक्त रहती है । फिर मौसम की दृष्टि से ग्रीष्म में वायुमंडल में धूलि की अधिकता से इन्हें स्पष्ट नहीं देखा जा सकता तथा वर्षा ऋतु में बादलों के कारण सम्भव नहीं होता । अतः इनके लिए सबसे अच्छा समय शरद या शीत ऋतु है जब वायुमण्डल अधिक स्वच्छ रहता है । देखने का समय रात्रि 9.00 बजे से प्रातः 4.00 बजे तक अच्छा रहता है । सूर्य के अस्त होते ही उसके प्रकाश के कारण कई मन्द सितारे नहीं दिखाई देते हैं तथा सूर्योदय के पूर्व भी उसके प्रकाश के कारण बाधा पड़ती है ।

फिर पृथ्वी के परिभ्रमण के कारण एक ही प्रकार के सितारे वर्ष भर नहीं दिखाई देते । प्रतिमाह नये-नये सितारे उदय होते रहते हैं एवं देखे गये अस्त होते रहते हैं। इसलिए सम्भव हो तो प्रतिमाह किसी निश्चित तिथि एवं समय में इन्हें देखना चाहिए जिससे इनकी गतियों का भी ज्ञान हो जाय कि ये पूर्व से पश्चिम की ओर कितने समय में कितनी दूरी से हटते जाते हैं तथा एक वर्ष बाद पुनः उसी स्थिति में आ जाते हैं। यद्यपि ये सितारे पूर्व से पश्चिम को जाते हुए ज्ञात होते हैं किन्तु वास्तव में ये चलते नहीं है । पृथ्वी की दैनिक एवं वार्षिक गति के कारण ही ये पश्चिम की ओर जाते हुए दिखाई देते हैं । यदि प्रतिमाह इनका देखना सम्भव न हो तो प्रति तीन माह में तो एक बार अवश्य देखना चाहिए । यदि रात्रि 9.00 बजे सितारों को देखा जाता है तो पृथ्वी की दैनिक गति के कारण कुछ सितारे पश्चिम में अस्त हो जाते हैं एवं पूर्व से नये सितारे उदय हो जाते हैं इसलिए एक रात्रि में भी दो बार रात्रि 9.00 बजे एवं प्रातः 4.00 बजे इन्हें अवश्य देख लेना चाहिए जिससे अधिक सितारों का एक साथ अध्ययन किया जा सके ।

सूर्य के कारण जो सितारे दिन में नहीं दिखाई देते उन्हें रात्रि में भी नहीं देखा जा सकता । वे पृथ्वी की वार्षिक गति के कारण छः माह बाद रात्रि में देखे जा सकते हैं । अतः रात्रि में दो बार तथा वर्ष में दो बार देखने पर सभी सितारे दिखाई दे सकते हैं ।

सितारों को देखने में हमारा अक्षांश भी बाधक है । राजस्थान 23 अंश उत्तरी अक्षांश से 30 अंश उत्तरी अक्षांश के मध्य स्थित है इसलिए हमें 60 अंश दक्षिणी

अक्षांश से दक्षिणी ध्रुव के मध्य स्थित सितारे कभी भी दिखाई नहीं देंगे। अन्य सभी सितारों को देखा व पहचाना जा सकता है।

सितारों को कैसे देखें ?

किसी उपयुक्त स्थान पहाड़ी आदि के ऊपर जाकर सितारों को आसानी से देखा जा सकता है। क्षितिज के आसपास के सितारों को देखने के लिए कोई खास परेशानी नहीं होती किन्तु शिर के ऊपर के सितारों को लम्बे समय तक गर्दन मोड़कर देखना पड़ता है जिससे गर्दन एवं पीठ में दर्द होने लगता है। इसके लिए भूमि पर लेटकर अथवा आराम कुर्सी पर बैठकर देखना चाहिए। भूमि ठंडी होने से गर्म कम्बल आदि बिछा लेना चाहिए। सितारों की पहचान तारामण्डलों की विशेष आकृति के अनुसार की जाती है। कुछ तारामण्डल जो समूह में रहते हैं तथा उनकी विशेष प्रकार की आकृति होती है उन्हें आसानी से पहचाना जा सकता है, जैसे—सप्तर्षि, लघु सप्तर्षि, मृग मंडल, सिंह राशि, वृश्चिक राशि, शर्मिष्ठा, कृतिका, आदि। इन्हें चित्र संख्या 18, 19, 20, 21, 22, 23 के अनुसार निश्चित समय में देखने से आसानी से पहचाना जा सकता है। इन्हें पहचान लेने पर इनके आसपास के सितारों एवं तारामण्डल को चित्र के अनुसार आकाश में देखकर पहचान सकते हैं। केवल ग्रहों को पहचानने में कठिनाई होती है क्योंकि ये पश्चिम से पूर्व की ओर घूमते रहने के कारण सितारों के मध्य अपनी स्थिति बदलते रहते हैं। पहले पंचांग देखकर उनकी स्थिति जान लेनी चाहिए कि वे किस राशि में हैं फिर उस राशि में देखने पर वह वहीं मिल जाएगा। ग्रहों में कोरी आँख से केवल शुक्र, मंगल, बृहस्पति एवं शनि ग्रह ही दिखाई देते हैं। अन्य ग्रह बिना दूरदर्शी यन्त्र के नहीं देखे जा सकते। सितारों को देखने व पहचानने के लिए इस पुस्तक में दिये गये मानचित्र का प्रयोग करना चाहिए। प्रतिमाह केवल एक रात्रि में दो बार अथवा प्रति तीन माह में एक राशि में दो बार नियमित रूप से देखते रहने से सभी सितारे पहचान में आ जाते हैं। साथ ही इनकी आकृति का चित्र भी बना लिया जाए तो उत्तम है। जिस समय इन्हें देखा जाता है वह समय भी नोट कर लेना चाहिए तथा जहाँ से देखा गया है उस स्थान का नाम एवं उसका अक्षांश तथा किस स्थान पर दिखाई दिया यह भी नोट कर लेना चाहिए जिससे आगे के अध्ययन में सहायता मिलेगी तथा इनकी गतियों का ज्ञान भी होगा।

सितारों के अध्ययन के साधन

सितारों के देखने के लिए स्वयं की आँख ही सबसे बड़ा साधन है तथा अध्ययन के लिए स्वयं की जिज्ञासा एवं बुद्धि ही पर्याप्त है किन्तु आजकल कई अन्य

साधन भी उपलब्ध हैं जिनके प्रयोग से इसमें सुविधा मिलती है। ये अन्य साधन हैं—

(1) फील्ड ग्लासेज—6 से 8 की शक्ति वाले फिल्ड ग्लासेज का प्रयोग करने से ये सितारे अधिक साफ दिखाई देते हैं। इनसे चन्द्रमा का धरातल, बृहस्पति के चन्द्रमा, कई नये तारा-पुंज, मन्द सितारे आदि भी स्पष्ट दिखाई देते हैं।

(2) वाइनोक्यूलर—कीमती वाइनोक्यूलर का प्रयोग करने से भी सितारों की संख्या एवं स्पष्टता में वृद्धि होती है तथा दर्शक को इससे अधिक आनन्द आता है।

(3) दूरदर्शी यन्त्र—यदि अच्छी शक्ति वाला दूरदर्शी यन्त्र उपलब्ध हो सके तो उसका प्रयोग अवश्य करना चाहिए। इससे दूर के सितारे, आकाश गंगाएँ, चन्द्रमा का धरातल, मंगल का धरातल, शनि के वलय आदि अनेक नई वस्तुएँ देखी जा सकती हैं जो कोरी आँख से नहीं दिखाई देती।

(4) संग्रहालय का उपयोग—कई संग्रहालय ऐसे होते हैं जिनमें ज्योतिर्विज्ञान का अलग ही प्रकोष्ठ होता है जिसमें समस्त ब्रह्माण्ड की जानकारी एवं साधन उपलब्ध रहते हैं तथा सितारों के कई मानचित्र भी होते हैं जिनसे सितारों की पूरी जानकारी मिल सकती है।

(5) तारागृह (प्लेनिटोरियम) —देश में कई स्थानों पर तारा-ग्रह बनाये गये हैं जिनमें गुम्बजनुमा छत पर यन्त्र की सहायता से सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, सितारे आदि घूमते हुए दिखाये जाते हैं। इनका भी उपयोग रोचक एवं लाभकारी होता है।

(6) वेधशालाएँ—ज्योतिर्विज्ञान के अध्ययन के लिए कई स्थानों पर प्राचीन वेधशालाएँ बनी हुई हैं जो जयपुर के महाराजा जयसिंह ने बनवाई थीं। एक आधुनिक वेधशाला शान्तिकुंज (हरिद्वार) में स्थापित की गई है। इनके अलावा नवीन वैज्ञानिक यन्त्रों से युक्त कई वेधशालाएँ हैं जहाँ जाकर इस विज्ञान के अध्ययन की जानकारी ली जा सकती है।

(7) अन्य साधन—इनके अलावा ज्योतिषीय मेगजीन, पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकें, चित्र, मानचित्र, पंचांग, पुस्तकालय, ज्योतिषीय, सोसाइटीज आदि से सम्पर्क करके अपने ज्ञान में वृद्धि कर सकते हैं।

◆:◆:◆

5

हमारा सौर-मण्डल

पहले बताया गया है कि हमारे विश्व का व्यास 1 लाख प्रकाश वर्ष है जिसमें कुल 3 लाख नक्षत्र हैं। इनमें हमारा सूर्य भी एक है। हमारा सूर्य इस मन्दाकिनी के केन्द्र में नहीं है बल्कि उससे 33 हजार प्रकाश वर्ष दूर है तथा यह 200 मील प्रति सेकण्ड की गति से इसके केन्द्र की परिक्रमा कर रहा है। इसकी यह परिक्रमा 25 करोड़ वर्ष में पूरी होती है। इस परिक्रमा में यह अपने पूरे सौर-परिवार को साथ लेकर चलता है।

हमारी इस मन्दाकिनी में हमारा सूर्य अकेला नहीं है। ऐसे अनेकों सूर्य हैं जिनके अपने-अपने सौर-मण्डल है। हमारे सूर्य का भी अपना एक परिवार है जिसमें 9 ग्रह, 31 उपग्रह, 6000 अवान्तर ग्रह, 900 धूमकेतु तथा असंख्य उल्काएँ हैं जो सूर्य के गुरुत्वाकर्षण में बँधकर उसकी परिक्रमा करते हैं तथा सूर्य के साथ-साथ मन्दाकिनी के केन्द्र की भी परिक्रमा करते हैं। हमारे सौर-मण्डल का सबसे बड़ा पिंड सूर्य है। जिसका व्यास 14 लाख किलोमीटर (8 लाख 66 हजार मील) है तथा हमारी पृथ्वी से 13 लाख गुना बड़ा है। इस बड़ेपन के कारण ही इसका गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी से 28 गुना है। इसी गुरुत्वाकर्षण के कारण इसके परिवार के सदस्य इसकी परिक्रमा एक निश्चित मार्ग एवं निश्चित अवधि में करते हैं। सूर्य इन सब पिंडों का केन्द्र है। इसलिएं 'सूर्य' और उसके चारों ओर घूमने वाले पिंड़ों को मिला कर 'सौर-मण्डल' या 'सौर-परिवार' (Solar System) कहते हैं। इसके निम्न सदस्य हैं—

सौर-परिवार के सदस्य

(1) ग्रह (Planets) — किसी निश्चित मार्ग पर चलते हुए किसी स्थिर तारे के चारों ओर परिक्रमा करने वाले आकाशीय पिंड़ों को 'ग्रह' कहा जाता है। इन ग्रहों में स्वयं का प्रकाश नहीं होता। जो पिंड स्थिर रहते हैं तथा ज़िनमें स्वयं का प्रकाश होता है वे 'सितारे' या 'तारे' कहलाते हैं। ये सितारे सभी 'सूर्य' हैं। हमारा सूर्य भी एक सितारा है जिसके चारों ओर 9 पिंड निरन्तर चक्कर लगा रहे हैं। सूर्य की समीपता के क्रम से ये हैं, बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, अरुण, वरुण तथा यम (प्लूटो)। इन ग्रहों में स्वयं का प्रकाश नहीं है। ये सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित होते हैं तथा अपना प्रकाश पुनः शून्य में परावर्तित करते हैं। सौर-मण्डल के जिन 9 ग्रहों का अब

तक पता लगा है उनमें 5 ग्रह (बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति तथा शनि) ऐसे हैं जो कोरी आँख से दिखाई देते हैं। इनका ज्ञान प्राचीन काल में भी था जिन्हें 'पंच देव' कहते थे। इनकी गतियों का ज्ञान प्राप्त कर प्राचीन काल में भी इन्हें ग्रहों की संज्ञा दी गई थी। अरुण, वरुण तथा यम (प्लूटो) पृथ्वी से अधिक दूर होने के कारण बिना दूरदर्शी के दिखाई नहीं देते अत: इनके ग्रह होने का ज्ञान दूरदर्शी के आविष्कार के बाद क्रमश: 1781 ई०, 1846 ई० तथा 1930 ई० में हुआ। यदि भारतीय ग्रन्थों का अध्ययन किया जाय तो इन तीनों ग्रहों का ज्ञान वैदिक आर्यों को था। **ऋग्वेद** में इनके नाम 'अर्थमा', 'वरुण' और 'क्रत' मिलता है। वेदों में ग्रहों का वर्णन है। 'सूर्य सिद्धान्त' का निर्माण इसी आधार पर हुआ। इन्होंने ग्रहों के प्रभाव का भी पता लगाया जो केवल धार्मिक ही नहीं वैज्ञानिक भी है।

आर्यों को इन ग्रहों की गतियों का भी पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने ग्रहों की आठ प्रकार की गतियों का भी वर्णन किया है—वक्र, अनुवक्र, विकला, शीघ्र, शीघ्रतर, मन्द, मन्दतर तथा समासम। इनका आधार या तो दृश्य गति है या 'केलकुलस' सिद्धान्त जिसका ज्ञान न्यूटन और लाइबनीज को 17वीं शताब्दी में हुआ।

इन ग्रहों में 'शुक्र' सबसे चमकीला दिखाई देता है। दूसरा स्थान 'बृहस्पति' का है। 'मंगल' लाल रंग का दिखाई देता है, 'शनि' तथा 'बुध' हल्के दिखाई देते हैं। **तैत्तिरीय ब्राह्मण** में 'बृहस्पति' के जन्म का तथा **शतपथ ब्राह्मण** में 'शुक्र' का उल्लेख मिलता है। **जर्मन प्रोफेसर बेपर की सम्मति** में *"ग्रहों की खोज सर्वप्रथम भारत में ही हुई होगी क्योंकि उनके नाम विशेष रूप से भारतीय हैं।"* महाभारत में भी पाँचों ग्रहों का ज्ञान प्राचीन काल से था। भारत में पृथ्वी को ग्रह न मानकर सूर्य और सोम (चन्द्रमा) को ग्रह माना जाता था जिससे ग्रहों की संख्या 7 मानी जाती थी। 'राहु' और 'केतु' कोई आकाशीय पिंड नहीं है। वे गणित सिद्ध बिन्दु है जिन्हें चन्द्रमा के 'आरोही' और 'अवरोही' पात (Ascending and Decending nodes) कहते हैं। इन्हें मिलाकर 9 ग्रह माने जाते थे।

आकार के क्रम में 'बृहस्पति' सबसे बड़ा ग्रह है। इसके बाद क्रमश: शनि, अरुण, वरुण, पृथ्वी, शुक्र, मंगल, यम, तथा बुध हैं।

आकार के अनुसार इनका वजन भी भिन्न-भिन्न है। पृथ्वी का वजन 16 हजार शंख मन (57 शंख टन) है। यदि इस तौल को 1 सेर मान लिया जाय तो इस अनुपात से सूर्य का वजन 8 हजार मन, बृहस्पति का 7.75 मन, शनि का 2 मन 13 सेर, अरुण का 17 सेर, वरुण का 14 सेर, शुक्र का 13 छटांक, मंगल का 1.5 छटांक तथा बुध का 1 छटांक होगा। चन्द्रमा इस मुकाबले 1 तोले का होगा। यदि इन सब

ग्रहों के वजन को मिला दिया जाए तो भी सूर्य का वजन इनसे 750 गुना अधिक होगा।

(2) उपग्रह (Satellites) – इस सौर-मण्डल में कुछ पिंड ऐसे भी हैं जो इन ग्रहों की परिक्रमा करते हैं। इन्हें 'उपग्रह' या 'चन्द्रमा' कहते हैं। हमारे सौर-मण्डल में इनकी संख्या 31 है किन्तु और भी उपग्रहों का पता चला है। विभिन्न ग्रहों पर इनकी संख्या भिन्न-भिन्न है। बड़े ग्रहों के अधिक उपग्रह हैं तथा कुछ छोटे ग्रहों के कोई उपग्रह नहीं है। पृथ्वी के 1, मंगल के 2, बृहस्पति के 12, शनि के 9, अरुण के 5 तथा वरुण के 2 उपग्रहों का अब तक पता लगा है। बुध, शुक्र तथा यम के कोई उपग्रह ज्ञात नहीं हुए हैं।

(3) अवान्तर ग्रह (Asteroids) – सौर-मण्डल में इन ग्रहों और उपग्रहों के अतिरिक्त मंगल और बृहस्पति के बीच करीब 6000 छोटे-मोटे क्षुद्र पिंडों का भी पता लगा है जो सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं। इन्हें 'क्षुद्र ग्रह' या 'अवान्तर ग्रह' कहते हैं। ये भी अन्य पिंडों की ही भाँति हमारे सौर-मण्डल के सदस्य हैं।

(4) धूमकेतु (Comets) – कभी-कभी आकाश में ये 'धूमकेतु' या 'पुच्छल तारे' भी दिखाई देते हैं। ये भी सूर्य की परिक्रमा करते हैं किन्तु इनका परिक्रमण मार्ग लम्बा होने से कभी-कभी ही दिखाई देते हैं। ये भी हमारे सौर-मण्डल के ही सदस्य हैं।

(5) उल्का पिंड (Meteors) – इनके अलावा इस सौर-मण्डल के क्षेत्र में कई 'उल्का पिंड' भी घूमते रहते हैं। अत: इन्हें भी इस सौर-मण्डल का सदस्य माना जाता है।

सौर-मण्डल का केन्द्र

इस सौरं-मण्डल का केन्द्र सूर्य है जिसके चारों ओर उपरोक्त सभी पिंड परिक्रमा करते हैं, किन्तु आरम्भ में इनकी प्रत्यक्ष गति के आधार पर लोगों ने यह अनुमान लगाया कि इस समस्त ब्रह्माण्ड का केन्द्र हमारी पृथ्वी है तथा सभी आकाशीय पिंड इसी की परिक्रमा करते हैं। 530 ई० पू० के यूनानी गणितज्ञ **पाइथेगोरेस** का विचार था कि यह पृथ्वी समस्त ब्रह्माण्ड का केन्द्र है किन्तु तीसरी शताब्दी ई०पू० में एक अन्य यूनानी दार्शनिक **एरिस्टार्कस** ने बताया कि सूर्य स्थिर है और विभिन्न ग्रह उसकी परिक्रमा करते हैं। किन्तु इस धारणा को सत्य नहीं मान गया। सिकन्दरिया के प्रसिद्ध खगोलज्ञ **टॉलमी** (127-151 ई०) का भी विश्वास था कि पृथ्वी केन्द्र है तथा सूर्य, ग्रह, चन्द्रमा आदि इसी की परिक्रमा कर रहे हैं। उस

समय धर्म का प्रभाव अधिक होने से उसके खिलाफ बोलना मृत्यु को आमंत्रण देना था। इसलिए टॉलमी के ये विचार इतने दृढ़ हो गये कि 1500 वर्षों तक इसे असत्य प्रमाणित करने का किसी का साहस नहीं हुआ। जिस किसी ने ऐसा किया उसे कठोर यातनाएँ दी गई तथा मृत्यु-दण्ड भी दिये गये। **एरिस्टार्कस** को इस सत्य की खोज का यह पुरस्कार मिला कि उसे भ्रान्त विचारधारा फैलाने के अपराध में देश निर्वासित कर दिया गया। **आर्किमिडी** ने भी इसे भ्रम पूर्ण बताया तथा **हिपार्कस** ने भी इसे मान्यता नहीं दी।

इसे 'भू केन्द्रीय प्रणाली' (Geo-centric System) को 16वीं शताब्दी में **कोपरनिकस** ने झूठ सिद्ध किया और बताया कि इस सौर-मण्डल का केन्द्र पृथ्वी नहीं बल्कि सूर्य है जिसके चारों ओर पृथ्वी सहित अन्य ग्रह परिक्रमा करते हैं। इसकी पुष्टि **गेलीलियो** तथा **केपलर** ने भी की। इसे 'कोपरनिकस प्रणाली' (Copernicus System) या 'सूर्य केन्द्रित प्रणाली' (Helio-centric System) कहते हैं।

कोपरनिकस पोलेण्ड का प्रसिद्ध खगोलज्ञ था। उसने 1564 में अपनी प्रकाशित पुस्तक में यह बताया कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा कर रही है। उसने योरोप में पहली बार कहा कि *"हर चीज के केन्द्र पर सूर्य है।"* धर्म के विरुद्ध बोलने के अपराध में उस पर भी अभियोग चलाया जाता किन्तु इस मत के प्रकाशित होने के पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई थी जिससे वह दण्ड से बच गया।

केपलर ने इन सिद्धान्तों को परिष्कृत किया तथा ग्रह गतियों के नियम बनाये। **गेलीलियो** पर भी अभियोग चलाया गया तथा उसे पोप की सभा में यह स्वीकार कराया गया कि पृथ्वी नहीं घूमती है। किन्तु सत्य को कब तक दबाया जा सकता है। आज अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध किया जा चुका है कि सौर-मण्डल का केन्द्र सूर्य है तथा अन्य ग्रहादि उसी की परिक्रमा करते हैं।

ग्रहों के घूमने का कारण

इस सौर-मण्डल का केन्द्र सूर्य है जिसके चारों ओर ये सभी पिंड एक निश्चित अवधि में चक्कर लगाते हैं। इनके भ्रमण के तीन नियम हैं—'गुरुत्वाकर्षण' 'भ्रमण शक्ति' तथा 'केन्द्र प्रसारी बल'। 'गुरुत्वाकर्षण' (Gravitation) वह शक्ति है जो सभी पिंडों को एक-दूसरे की ओर आकर्षित करती है। सूर्य का आकार बड़ा होने से उसका गुरुत्वाकर्षण सर्वाधिक है। जिससे यह सभी ग्रहों, उपग्रहों आदि को बाँधे हुए है किन्तु इनके घूमने का सिद्धान्त यह है कि यदि कोई पिंड शून्य में चलना आरम्भ

करे तो वह सीधी रेखा में तब तक चलता रहेगा जब तक कि कोई और शक्ति उसे रोक या मोड़ न दे। इस शक्ति को 'भ्रमण शक्ति' (Law of inertia) कहते हैं। भ्रमण-शक्ति किसी घूमने वाले पदार्थ में यह प्रवृत्ति है जो उसे एक सीधी रेखा में चालू रखती है और समगति से उसे घूमने देती है। पिंडों की इस भ्रमण शक्ति के कारण उसमें 'केन्द्र प्रसारी बल' (Centrifugal Force) पैदा होता है जिससे वे पिंड गुरुत्वाकर्षण के विपरीत दिशा में भागना चाहते हैं। कोई भी भ्रमण शील पदार्थ अपने केन्द्र से विपरीत दिशा की ओर हटना चाहता है। 'गुरुत्वाकर्षण' तथा 'केन्द्र प्रसारी बल' के ही संतुलन के कारण एक निश्चित स्थान पर टिका रह सकता है तथा एक निश्चित मार्ग पर ही घूमता है। निम्न उदाहरण से इसको समझा जा सकता है। किसी तेज घूमते हुए लट्टू पर एक छोटा-सा कंकड़ डालने पर वह दूर फिक जाएगा। उसके दूर फिंकने का कारण वह 'केन्द्र प्रसारी बल' है जो लट्टू के घूमने के कारण उत्पन्न हुआ। यदि किसी धागे से पत्थर बाँधकर घुमाया जाय तो वह एक तल पर घूमता रहेगा। यदि धागा कमजोर हुआ और उसे अधिक तेजी से घुमाया गया तो निश्चित ही धागा टूटकर वह पत्थर बहुत दूर जा गिरेगा। इसमें धागा 'गुरुत्वाकर्षण' है तथा घूमने से उसमें 'केन्द्र प्रसारी बल' पैदा हुआ। दोनों के सन्तुलन से वह निर्बाध गति से घूमता रहेगा। यदि उसका घूमना बन्द कर दिया जाय तो वह नीचे गिर पड़ेगा। ठीक ऐसी ही स्थिति सौर-मण्डल के पिंडों की है। यदि इन पिंडों पर सूर्य का आकर्षण कम हो जाय तो अपनी भ्रमण शक्ति तथा केन्द्र प्रसारी बल की तीव्रता से ये पिंड सूर्य के आकर्षण क्षेत्र से बाहर निकल जायेंगे तथा अन्तरिक्ष में लुढ़कते फिरेंगे। इसके विपरीत यदि 'भ्रमण शक्ति' नष्ट हो जाय तो इनका केन्द्र प्रसारी बल भी नष्ट हो जाएगा जिससे सूर्य अपने गुरुत्वाकर्षण के कारण इन्हें अपनी ओर खींच कर अपने में विलीन कर लेगा जिससे इनका अस्तित्व सदा के लिए समाप्त हो जाएगा। अतः इन तीनों शक्तियों के सन्तुलन के ही कारण सौर-मण्डल के सभी पिंड निश्चित दूरी पर सूर्य की निश्चित अवधि में अपनी कक्षाओं में रहकर परिक्रमा करते रहते हैं।

सौर-मण्डल की उत्पत्ति (Origin of the solar system)

सौर-मण्डल की उत्पत्ति मानव के लिए सदा से चुनौती का विषय रही है किन्तु वैज्ञानिकों ने इस चुनौती को स्वीकार कर इसकी व्याख्या करने का प्रयत्न किया तथा कई सिद्धान्त प्रस्तुत किये। सर्वप्रथम 1755 में एक प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् **काण्ट** ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार किया। इसके बाद कई वैज्ञानिकों ने अपनी-अपनी परिकल्पनाएँ (Hypothesis) प्रस्तुत की किन्तु अब तक कोई भी सिद्धान्त

सर्वमान्य न हो सका। सौर-मण्डल के मूलभूत तथ्य सभी वैज्ञानिकों ने स्वीकार किये हैं। वे हैं—1. सभी ग्रह, उपग्रह आदि अण्डांकार पथ में सूर्य की परिक्रमा करते हैं। 2. उनकी कक्षाएँ एक ही तल पर हैं। 3. सभी पिंड घड़ी की विपरीत दिशा में घूमते हैं। 4. सभी पिंडों में एक ही प्रकार के तत्त्व विद्यमान हैं। 5. सभी पिंडों की पदार्थ राशि सूर्य का 745वाँ भाग है। इस प्रकार सम्पूर्ण सौर-मण्डल की 99.87% पदार्थ राशि अकेले सूर्य में है। इनसे ज्ञात होता है कि सौर-मण्डल के सभी पिंडों का जन्म के साथ तथा एक ही कारण से हुआ है। कुछ महत्त्वपूर्ण पाश्चात्य परिकल्पनाएँ निम्न प्रकार हैं—

(1) काण्ट की वायव्य राशि परिकल्पना (Kants Gaseous Hypothesis) — जर्मनी के प्रशिया प्रान्त के निवासी तथा केनिंग्स वर्ग विश्व विद्यालय के प्रोफेसर **इमेन्युअल काण्ट** ने सर्वप्रथम 1755 ई० में सौर-मण्डल की उत्पत्ति की एक वैज्ञानिक परिकल्पना प्रस्तुत की जो न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्तों पर आधारित थी। उसने बताया कि ब्रह्माण्ड में असंख्य 'दैव निर्मित पदार्थ' (Premosdial Substance) बिखरे पड़े थे। आकर्षण के कारण वे परस्पर टकराने लगे जिससे दबाब में वृद्धि हुई तथा ताप एवं गति पैदा हुई। इस प्रकार विशाल निहारिकाओं का निर्माण हुआ। इन घूमती हुई निहारिकाओं से केन्द्र प्रसारी बल की वृद्धि हुई जिससे छोटी-छोटी वलयाकार गैस राशियाँ पृथक होने लगी। धीरे-धीरे इनके ताप में कमी हुई जिससे वे घनीभूत होने लगी। इस प्रकार ग्रह, एवं उपग्रह बने। किन्तु वैज्ञानिकों ने इसे मान्यता नहीं दी क्योंकि टकराने से ताप तो उत्पन्न हो सकता है किन्तु उससे गति उत्पन्न नहीं हो सकती। गति के लिए बाह्य शक्ति आवश्यक है।

(2) बफन का मत—काण्ट की परिकल्पना से 6 वर्ष पूर्व 1749 में एक फ्रान्सीसी वैज्ञानिक **बफन** ने अपना मत प्रकट करते हुए बताया कि एक आकाशीय पिंड सूर्य से टकरा गया जिससे सूर्य की गैसें बड़े-बड़े टुकड़ों में बिखर गई। ताप के कम होने से ये टुकड़े जम गये व ग्रह बन गये। किन्तु यह मत भी मान्य न हो सका।

(3) लाप्लेस का निहारिका सिद्धान्त(Haplaceis Nebular Hopothesis) —काण्ट से मिलती-जुलती कल्पना फ्रांस के विद्वान् **लाप्लेस** ने 1796 में प्रस्तुत की। उसके अनुसार एक अति उष्ण निहारिका शून्य में घूम रही थी। विकीरण द्वारा उसका बाहरी भाग .ठंडा होने लगा जिससे उसका आयतन कम हुआ। आयतन कम होने से उसकी गति बढ़ी व केन्द्र प्रसारी बल भी बढ़ गया जिससे

उसका मध्य भाग उभरने लगा और उसमें से छल्ले अलग होकर उसके चारों ओर घूमने लगे। आरम्भ में एक छल्ला अलग हुआ जो कई भागों में टूट गया जिससे ग्रह बने। इसी क्रिया से उपग्रह बने। **रोसे** ने इसमें संशोधन करके बताया कि एक छल्ला अलग नहीं हुआ बल्कि ऐसे नौ छल्ले अल हुए जो संगठित होकर नौ ग्रह बने। वैज्ञानिकों ने इसमें भी दोष निकालकर अमान्य .ठहरा दिया।

(4) लाकयर की उल्का पिंड परिकल्पना (Meteorite Hypothesis) — **लाकयर** ने बताया कि अतीत में दो महान् उल्का पिंडों के टकराने से उनमें ताप उत्पन्न हुआ तथा उल्का पिंड पिघल गये। वे कई गैंस पिंड बनकर शून्य में छितरा गये तथा गुरुत्वाकर्षण के कारण एकत्रित होकर निहारिका के रूप में परिवर्तित हो गये। इसका ऊपरी भाग .ठंडा हो जाने से उसकी गति बढ़ गई व छल्लों के आकार में अंश अलग होना आरम्भ हुए। इस प्रकार 9 भाग अलग हुए जो ग्रह बने तथा केन्द्रीय भाग सूर्य कहलाया। इसकी भी कटु आलोचना हुई।

(5) चेम्बरलोन तथा मोल्टन की ग्रहाणु परिकल्पना (Planetesimae Hypothesis) — संयुक्त राज्य अमेरिका के निवासी **चेम्बरलोन** तथा **मोल्टन** ने 1904 में बताया कि सौर-मण्डल की उत्पत्ति ग्रहाणु से हुई है। आरम्भ में सूर्य के समीप कोई बड़ा पिंड आया जिसके गुरुत्वाकर्षण से सूर्य में से बहुत बड़ा पदार्थ अलग हो गया तथा .ठंडा होकर .ठोस कण बन गये जिनके चारों ओर ग्रहाणु गतिशील थे। आकर्षण के कारण एकत्र होकर ग्रह बने तथा इनसे निकली हुई वाष्प व गैस से वायुमण्डल बना। इस परिकल्पना को भी अपूर्ण माना गया।

(6) जेम्स जीन्स की ज्वार परिकल्पना (Fidal Hypothesis) — एक अंग्रेज विद्वान् **जेम्स जीन्स** ने 1919 ई० में एक अन्य परिकल्पना प्रस्तुत करते हुए बताया कि आरम्भ में सूर्य एक गैस का गोला था जिसका विस्तार 'यम' ग्रह तक था। करीब 3 अरब वर्ष पूर्व एक बहुत बड़ा सितारा घूमता हुआ सूर्य के समीप आया जिससे उसके आकर्षण के कारण सूर्य में ज्वार उत्पन्न हुआ। इस ज्वार की ऊँचाई बढ़ती गई तथा एक बड़ा भाग सूर्य से अलग हो गया। घूमता हुआ सितारा दूर निकल गया तथा सूर्य से अलग हुई राशि का वह पिंड पीछे रह गया और सूर्य की परिक्रमा करने लगा। वह पदार्थ धीरे-धीरे .ठंडा होने लगा तथा संकुचन के कारण खण्ड-खण्ड होकर ग्रह रूप में बदल गया। इसी प्रकार सूर्य के आकर्षण से ग्रहों में ज्वार उत्पन्न हुआ जिससे 'उपग्रह' बने। यह परिकल्पना भी दोष रहित नहीं है किन्तु इसे सर्वाधिक मान्यता प्राप्त है। इसमें दोष यही है कि सितारे इतने दूर हैं कि इनके समीप आने की सम्भावना नहीं है।

(7) फोन वाइस्साफर का सिद्धान्त—जर्मनी के प्रसिद्ध भौतिक विज्ञान वेता **फोन वाइस्साफर** ने 1943 में एक नवीन परिकल्पना प्रस्तुत की। उसके अनुसार सूर्य जैसे नक्षत्रों का निर्माण हीलीयम, हाइड्रोजन एवं ब्रह्माण्डीय धूलि से हुआ हैं। शून्य में असंख्य धूलीकण विद्यमान थे। धीरे-धीरे इनका घनीयवन होने लगा। परिणामस्वरूप सूर्य के चारों ओर ऐसे कण चक्कर काटने लगे। छोटे कण मोटे कणों से मिलाते गये जिससे उनका आयतन बढ़ने लगा। परस्पर संघर्ष से उनमें ऊर्जा पैदा हुई जिससे ये पिंड तरल और गैसीय स्थिति में परिवर्तित होते गये। यह प्रक्रिया 10 करोड़ वर्ष तक चलती रही व अन्त में इन्होंने ग्रहों का रूप धारण कर लिया व पुनः ठंडे होते गये। इन ग्रहों का निर्माण आज से लगभग 3 अरब वर्ष पूरे हो चुका था। इस सिद्धान्त को काफी मान्यता मिली तथा भारतीय विद्वान् **डॉ० चन्द्रशेखरन** आदि ने भी इसका समर्थन किया।

(8) ओटोस्मिड की अन्तः नक्षत्रीय धूलि परिकल्पना (Inter Steller Dust Hypothesis)—सौर-मण्डल की उत्पत्ति के बारे में एक रूसी वैज्ञानिक **ओटो स्मिड** ने 1958 में नवीन सिद्धान्त प्रस्तुत किया। उसके अनुसार आरम्भ में सूर्य के चारों ओर धूलि मेघ व गैसीय पदार्थ चक्कर लगाते थे। ये पदार्थ मन्दाकिनियों से आये होंगे जिसको सूर्य ने अपने गुरुत्वाकर्षण में पकड़ लिया। ये धूलिकण परस्पर संघटित हुए जिससे ग्रहों का निर्माण हुआ व सूर्य के गुरुत्वाकर्षण से इनमें गति उत्पन्न हुई। सूर्य के चारों ओर धूलि कण एकत्र होने का कारण सूर्य अपनी परिक्रमा में एक निहारिका के मध्य पड़ गया तथा निकलते समय काफी पदार्थ निहारिका से सिगार के आकार का अपने साथ ले आया जो उसके चारों ओर घूमने लगा। आगे चलकर यह कई पिंडों में विभाजित होकर ग्रह, उपग्रह, अवान्तर ग्रह आदि बने।

सौर-मण्डल की उत्पत्ति के और भी सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये किन्तु इनमें कोई भी सर्वमान्य न हो सका। सौर-मण्डल की उत्पत्ति का रहस्य समझने के लिए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना व उत्पत्ति को समझना आवश्यक है क्योंकि यह हमारा सौर-मण्डल कोई स्वतन्त्र इकाई नही है बल्कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की प्रक्रिया का ही एक अंग है तथा उसी का एक सामान्य सदस्य है। हमारी मन्दाकिनी में कई सौर-मण्डल चक्कर लगा रहे हैं जिनमें हमारा सौर-मण्डल भी एक हैं। हमारी मन्दाकिनी भी किसी अन्य केन्द्र की परिक्रमा कर रही हो यह सम्भावना है। आज वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यह सारा ब्रह्माण्ड फैल रहा है। फैलने की दिशा और गति की भी वैज्ञानिकों ने जानकारी ली है किन्तु उसके केन्द्र का अभी पता नहीं लगा पाये हैं।

फैलने की मान्यतानुसार यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक ही पिंड रहा होगा तथा उसी से अलग होकर मन्दाकिनियाँ बनी होंगी। फिर अलग-अलग पिंडों की रचना हुई होगी। ग्रह, उपग्रह आदि बाद में बने होंगे। ज्यों-ज्यों ब्रह्माण्ड फैलता जा रहा है त्यों-त्यों नये ग्रहों का निर्माण भी होना चाहिए। वैज्ञानिकों की मान्यतानुसार इसका विस्तार एक सीमा तक ही सम्भव है। इसके बादं पुनः संकोचन आरम्भ हो जाएगा तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पुनः सिमटकर एक वृहदाकार पिंड में परिवर्तित हो जाएगा। ब्रह्माण्ड में फैले असंख्य पिंडों की रचना सामग्री से इस बात की पुष्टि होती है कि इन सबका मूल एक ही है।

भारतीय ग्रन्थों में वेद, उपनिषद्, सांख्य, योग आदि से सृष्टि की उत्पत्ति की जो व्याख्या दी गई है वह भी पूर्ण वैज्ञानिक है। वर्तमान वैज्ञानिक शोध में भारतीय मान्यता बहुत बड़े आधार का काम दे सकती है किन्तु पाश्चात्य वैज्ञानिक भारतीय विज्ञान की सदा से उपेक्षा करते रहे हैं। भारतीय ज्ञान की इस उपेक्षा के कारण ही आज वैज्ञानिक कई महत्वपूर्ण तथ्यों से वंचित हैं। जो ज्ञान प्राप्त किया है वह सब ऊपरी-ऊपरी है। गहराई में अभी प्रवेश नहीं कर पाये हैं। मूल को समझे बिना पत्तों को समझना भी असम्भव एवं भ्रामक है। भारत ने मूल को समझा है किन्तु पत्तों की व्याख्या नहीं की। आज दोनों मिलकर कार्य करें तो आशातीत सफलता मिल सकती है।

उत्पत्ति की भारतीय मान्यता—भारतीय मान्यतानुसार ये विभिन्न आकार एक ही तत्त्व के भिन्न रूप मात्र है। एक ही तत्त्व विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरकर विभिन्न प्रकार के पदार्थों का निर्माण करता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को समझ लेने से सम्पूर्ण सृष्टि रचना का क्रम समझ में आ सकता है किन्तु विज्ञान इन्हें खण्ड-खण्ड में बाँटकर अध्ययन कर रहा है जिससे निम्न स्तर पर किये गये परीक्षणों के परिणाम उच्च स्तर के अध्ययन पर जाकर बदल जाते हैं। इसीलिए **कोपरनिकस, केलपर, न्यूटन, आइन्स्टीन** तथा **नार्लीफर** आदि के सिद्धान्तों में अन्तर पाया जाता है। इसी प्रकार पृथ्वी की उत्पत्ति से सौर-मण्डल की उत्पत्ति को नहीं समझा जा सकता तथा सौर-मण्डल की उत्पत्ति से आकाश-गंगाओं की उत्पत्ति को नहीं समझा जा सकता। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को समझ लेने से ही सौर-मण्डल एवं अन्य पिंडों की रचना का रहस्य समझ में आ सकता है।

भारतीय अध्यात्म ने पूर्ण से अंश की व्याख्या की है कि सृष्टि का हर कण उस पूर्ण का अंग है तथा इसके विकास की जटिल प्रक्रिया है जिससे गुजरकर यह वर्तमान सृष्टि के रूप में दिखाई दे रहा है। विज्ञान इसकी उल्टी प्रक्रिया से खोज कर रहा है।

यह सृष्टि जैसी है तथा जैसी दिखाई दे रही है उससे चलकर उसके मूल तत्त्व की ओर बढ़ रहा है जिससे नित्य नई उलझने पैदा हो रही हैं तथा सर्व सम्मत कोई भी निर्णय किसी भी क्षेत्र में नहीं लिया जा सका है। जो भी निर्णय लिए गये हैं वे महत्वपूर्ण होते हुए भी अपूर्ण हैं।

सृष्टि निर्माण की पूर्ण वैज्ञानिक व्याख्या केवल वेदों में पाई जाती है। अन्य किसी धर्म ग्रन्थ में इतना स्पष्ट विवेचन नहीं मिलता। यदि वैज्ञानिक इनका अध्ययन कर इसी आधार पर अपने खोज कार्य को आगे बढ़ाते तो उसके परिणाम अधिक स्पष्ट होते। वेदों में सम्पूर्ण सृष्टि रचना के सिद्धान्त मौजूद हैं। वैज्ञानिकों को उन पर केवल परीक्षण करके उनके सत्य असत्य पर निर्णय मात्र लेना था। यदि यह किया जाता तो कम समय में अधिक सफलता उन्हें मिल सकती थी। आज भी वैज्ञानिक यदि इस आधार पर शोध करें तो उन्हें आशातीत सफलता मिल सकती है।

6

सौर-मण्डल—एक परिचय

सूर्य (Sun)

प्राचीन काल से ही लोग सूर्य के बारे में जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक रहे हैं। आज भी बड़ी-बड़ी वेधशालाओं में नित्य प्रति इसका अध्ययन किया जा रहा है जिससे नये-नये तथ्य सामने आ रहे हैं। सूर्य हमसे कितनी दूर है, कितना बड़ा है, इसका तापमान कितना है, यह ताप कहाँ से आता है, इसका मानव जीवन पर क्या प्रभाव होता है आदि की वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त करने के प्रयत्न जारी हैं।

आकार—सूर्य हमारे सौर-मण्डल का सबसे बड़ा पिंड है जिसका व्यास 14 लाख किलोमीटर (8,66,300 मील) है। यह 'व्यास' हमारी पृथ्वी का 109 गुना है। यदि एक सौ नौ पृथ्वियाँ एक रेखा में जमा दी जाय तो इसकी लम्बाई के बराबर सूर्य का व्यास होगा। इसका आकार पृथ्वी से 13 लाख गुना है। बड़ा होने से इसका वजन भी अधिक है। वैज्ञानिकों ने ज्ञात किया है कि इसका वजन 2 पर 27 शून्य लगाने जितना टन है जो पृथ्वी के वजन का 3 लाख 34 हजार गुना अधिक है। इसका आपेक्षित घनत्व 1.5 ही है क्योंकि यह गैस अवस्था में है।

पृथ्वी से दूरी—सूर्य की पृथ्वी से औसत दूरी 15 करोड़ कि०मी० (9 करोड़ 30 लाख मील) है। पृथ्वी इसके चारों ओर दीर्घ वृत्ताकार मार्ग में भ्रमण करती है जिससे इसकी दूरी कभी 14 करोड़ 75 लाख कि०मी० तथा कभी 15 करोड़ 25 लाख कि०मी० हो जाती है। यह हमसे इतना दूर है कि इससे हमारे यहाँ प्रकाश आने में 8.5 मिनिट लग जाते हैं। इसमें यदि कोई विस्फोट हो तो उसकी ध्वनि हमें 14 वर्ष बाद सुनाई देगी। यदि 100 कि०मी० प्रति घंटे चलने वाली रेलगाड़ी में बैठकर हम इसकी ओर यात्रा करें तो हमें वहाँ पहुँचने में 170 वर्ष लगेंगे। किन्तु अन्य सितारों की अपेक्षा यह हमसे सबसे समीप का सितारा है।

गुरुत्वाकर्षण—पृथ्वी से आकार में बड़ा होने के कारण इसका गुरुत्वाकर्षण भी पृथ्वी से 28 गुना है। वहाँ मनुष्य का वजन भी पृथ्वी की अपेक्षा 28 गुना अधिक होगा।

गतियाँ—प्राचीन काल में यह माना जाता था कि पृथ्वी इस ब्रह्माण्ड का केन्द्र है तथा सूर्य समेत सभी आकाशीय पिंड उसी की परिक्रमा कर रहे हैं किन्तु आज अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि सूर्य स्थिर है तथा पृथ्वी इसकी परिक्रमा कर रही

है। सूर्य हमारे इस सौर-मण्डल का केन्द्र है जिसके चारों ओर सभी ग्रह तथा उपग्रह चक्कर लगा रहे हैं। किन्तु यह भी स्थिर नहीं है। यह भी अपनी धूरी पर 25 दिन 5 घंटे में एक बार घूम जाता है। 'सूर्य फलांकों' (Sun Spots) के निरीक्षण से ज्ञात होता है कि यह पश्चिम से पूर्व की ओर अन्य ग्रहों की भाँति घूमता है। यही नहीं यह भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का केन्द्र नहीं है। यह भी हमारी मन्दाकिनी के केन्द्र 'धनु राशि' की परिक्रमा 200 मील (320 कि०मी०) प्रति सेकण्ड की गति से चल कर 25 करोड़ वर्ष में पूरी करता है। हमारे विश्व के केन्द्र 'धनु राशि' से यह 30 हजार प्रकाश वर्ष दूर है जिससे सूर्य की कक्षा 1 लाख 88 हजार प्रकाश वर्ष की होती है। खगोल शास्त्रियों का विश्वास है कि इसका जन्म आज से 4 अरब वर्ष पहले हुआ होगा। इस हिसाब से वह अब तक धनु राशि की 16 परिक्रमा ही कर पाया है।

तापमान—सूर्य हमारे लिए ताप, प्रकाश तथा शक्ति का स्त्रोत है। हमारी पृथ्वी को जितना ताप प्राप्त होता है उसका 99.5% सूर्य से ही प्राप्त होता है। सूर्य हमसे 15 करोड़ कि०मी० दूर होते हुए भी हमें इतनी गर्मी देता है तो वह स्वयं कितना गर्म होगा इसका अन्दाज लगाया जा सकता है। सूर्य से पृथ्वी पर दो वर्ग गज पर एक अश्व बल के बराबर शक्ति प्राप्त होती है। गणना करके यह ज्ञात किया गया है कि सूर्य की सतह से प्रति वर्ग इंच 54 अश्व बल की शक्ति निकलती है। कई देशों में इसकी शक्ति के उपयोग के प्रयत्न किये हैं। इस ताप से रेडियो चलाना, भोजन बनाना, बिजली तैयार करना आदि कार्य किये जा सकते हैं। सूर्य की सतह का तापमान 6000 डिग्री से० (10,000 डिग्री फ०) है। यह तापमान इतना अधिक है कि जिससे कोई भी पदार्थ पिघली हुई अवस्था में नहीं रह सकता। 100 डिग्री से० पर पानी खोलने लगता है, 1000 डिग्री से० पर सोना पिघल जाता है, 2500 डिग्री से० पर स्पात पिघल जाता है। सूर्य का तापमान इससे भी अधिक है। जब सूर्य की सतह का तापमान इतना अधिक है तो उसके केन्द्र का कितना होगा? पता लगाया गया है कि उसके केन्द्र का तापमान 2.5 करोड़ डिग्री से० है। यह ऊँचा तापमान उसकी गैसों के दबाव के कारण है किन्तु पृथ्वी पर इसका 1/22 अरबवाँ भाग ही पहुँचता है। इससे भी पृथ्वी पर प्रति वर्ग मील 50 लाख अश्व शक्ति ऊर्जा प्राप्त होती है।

सूर्य से यह गर्मी बराबर निकलती रहती है। फिर भी यह ठंडा नहीं हो रहा है। पृथ्वी पर पाये जाने वाले 3200 वर्ष पुराने वृक्षों को काटकर उनके रेशों के अध्ययन से ज्ञात किया गया है कि उस समय भी सूर्य की गर्मी उतनी ही थी जितनी आज है। लकड़ी का विकास गर्मी पर ही आधारित है। भूगर्भ शास्त्रियों ने पत्थरों के अध्ययन से भी ज्ञात किया है कि यह गर्मी कम नहीं हो रही है। सन् 1849 में एक वैज्ञानिक ने

बताया कि इस पर निरन्तर उल्काओं की वृष्टि होती रहती है जिससे यह निरन्तर गर्म बना रहता है। किन्तु इस सिद्धान्त को .ठीक नहीं माना गया क्योंकि उल्का वृष्टि से 3 करोड़ वर्ष में इसका आकार दूना हो जाता, किन्तु ऐसा हुआ नहीं।

दूसरा सिद्धान्त 1853 ई० में जर्मनी के वैज्ञानिक **हेल्म होल्टस** ने प्रस्तुत किया। इसके अनुसार सूर्य निरन्तर सिकुड़ता जा रहा है जिससे ताप उत्पन्न होता है। सिकुड़ने का कारण उसका आकर्षण है। इसे भी मान्यता नहीं मिली।

इस समस्या का समाधान **आइन्स्टीन** के सापेक्षवाद के सिद्धान्त (Theory of relativity) से मिलता है। इसके अनुसार पदार्थ और शक्ति एक ही है तथा एक का दूसरे से रूपान्तरण होता रहता है। भयानक ताप के कारण सूर्य के पदार्थों का रूपान्तरण शक्ति में हो रहा है। सूर्य एक विशाल परमाणु भट्टी है जिसमें हाइड्रोजन के परमाणु भयंकर दबाव के कारण विखंडित होकर हीलियम गैस तत्त्वों में निरन्तर परिवर्तित होते रहते हैं। इस विस्तृत शक्ति के ही कारण सूर्य गर्म बना हुआ है।

कुछ वैज्ञानिकों का यह भी मत है कि सूर्य प्रति 7 वर्षों में 1 कि०मी० व्यास में कम हो रहा है तथा इसका वजन प्रति सेकण्ड 40 लाख टन घट रहा है जिससे पृथ्वी सूर्य से 1 सेण्टीमीटर दूर होती जा रही है। 10 अरब वर्षों में यह सूर्य से 92 लाख किलोमीटर दूर हो जाएगी। इस समय इसका तापमान 30 डिग्री से० कम हो जाएगा। किन्तु कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि सूर्य का ताप निरन्तर बढ़ रहा है। 10 अरब वर्ष में इसका ताप इतना बढ़ जाएगा कि पृथ्वी पर जीवन असम्भव हो जाएगा। फिर यह .ठंडा होने लगेगा। ब्रह्माण्ड में ऐसे कई सितारे हैं जिनका ताप समाप्त हो चुका है।

सूर्य कलंक—जिस प्रकार चन्द्रमा की सतह पर धब्बे दिखाई देते हैं। उसी प्रकार सूर्य में कई धब्बे दिखाई देते हैं। जिन्हें 'सूर्य कलंक (Sun Spots) कहते हैं। ये 'सूर्य कलंक' एक प्रकार के बवंडर या भंवर हैं जिनसे भीतर की गैसें चक्कर मारकर बाहर निकलती है। इनमें कुछ धब्बे इतने बड़े होते हैं कि इन्हें कोरी आंख से शीशे पर कालिख लगाकर देखा जा सकता है। इनकी आकृति भी सदा समान नहीं रहती। कभी ये गोल, कभी अंडे के समान, कभी लम्बे दिखाई देते हैं। ये भी स्थाई नहीं रहते, बनते व बिगड़ते रहते हैं। इनका आकार भी विशाल होता है। सन् 1947 में एक बड़ा 'कलंक' दिखाई दिया था जिसका क्षेत्रफल 16 अरब 13 करोड़ वर्ग कि०मी० था जिसमें हमारी पृथ्वी जैसे 100 गोले समा सकते हैं। ये धब्बे कुछ काले दिखाई देते हैं जिनका तापमान 4500 डिग्री से० ही होगा। ये कंलक 11 वर्षों में संख्या व क्षेत्रफल में सबसे अधिक होते हैं। इनकी संख्या 300 से 400 तक होती

है। सूर्य कलंकों की अधिकता से पृथ्वी पर चुम्बकीय तूफान आते हैं, रेडियो में गड़गड़ की ध्वनि होती है, दिग्सूचक यन्त्र की सुई की दिशा में भी परिवर्तन हो जाता है तथा पृथ्वी पर स्थाई सूर्य ताप में भी 2% की वृद्धि हो जाती है। इनकी अवधि भी निश्चित नहीं है। एक बार एक धब्बा 18 महीने तक दिखाई दिया था कुछ एक ही सप्ताह में समाप्त हो जाते हैं।

चीन के प्राचीन साहित्य में इन कलंकों की चर्चा मिलती है। दूसरी शताब्दी से 17वीं शताब्दी तक 1500 वर्षों में 95 सूर्य कलंकों की चर्चा मिलती है जो कोरी आँख से देखे गये थे किन्तु विशेष कार्य **गेलीलियो** के दूरदर्शी यन्त्र के आविष्कार के बाद हुआ। **गेलीलियो** (1564-1642 ई०) इटली के प्रसिद्ध खगोलज्ञ ने बताया कि ये कलंक पश्चिम से पूर्व को चलते हुए सूर्य का 27.25 दिन में एक चक्कर लगा देते हैं तथा मध्य रेखा के पास ये 25 दिन में ही एक चक्कर पूरा कर लेते हैं। उत्तर व दक्षिण वाले मन्द गति से चलते हैं। ये 5 अंश से 40 अंश के मध्य अधिक बनते हैं तथा ध्रुवों के पास कभी नहीं बनते।

आजकल सूर्य का अध्ययन कई वेधशालाओं में किया जा रहा है। भारत में तमिलनाडू राज्य में **कोडाई केनाल,** ग्रिनविच की **शाही वेधशाला** तथा द० अफ्रीका में **केप ऑफ गुड होप** की वेधशालाओं में प्रतिदिन सूर्य के फोटो लिये जाते हैं जिससे महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जाती है। उदयपुर की सौर वेधशाला में भी इसका अध्ययन किया जा रहा है।

सूर्य की बनावट—सूर्य एक आग का गोला है। अधिक तापमान के कारण इसके सभी पदार्थ गैसीय अवस्था में हैं। इसका बाहरी भाग 'फोटोस्पीयर' कहलाता है। सूर्य का समस्त ताप और प्रकाश इसी क्षेत्र से प्रसारित होता है। इस 'फोटोस्पीयर' के ऊपर गुलाबी रंग की एक पतली पर्त है जिसे 'क्रोमोस्पीयर' कहते हैं। इस क्षेत्र की गहराई 10 हजार किलोमीटर है। सूर्य के बाहर लाखों किलोमीटर की दूरी तक इसका 'परिमण्डल' (Corona) दिखाई देता है। खग्रास के समय इसे नंगी आँख से भी देखा जा सकता है। इस समय सूर्य के चारों ओर 10,000 से 32,000 किलोमीटर लम्बी ज्वालाएँ दिखाई देती हैं। इसके केन्द्र का घनत्व 28 है। सूर्य का यह ताप इतना अधिक है कि यदि इसके पिंड का एक पिन के बराबर का भाग भी पृथ्वी पर गिर पड़े तो पृथ्वी पर 1500 किलोमीटर की सभी वस्तुएं भस्म हो जाएंगी।

किरणों के रंग—सूर्य की किरणों में सात रंग होते हैं जो 'वर्ण विश्लेषक' (Prism) के द्वारा ज्ञात किये जा सकते हैं। इन्द्रधनुष की छटा भी इसी का प्रमाण

है। ये रंग हैं—जामनी (Violet), नीला (Indigo), आसमानी (Blue), हरा (Green), पीला (Yellow), नारंगी (Orange) तथा लाल (Red)। सूर्य से निकली इन किरणों में कई किरणें बीमारियों के कीटाणुओं को नष्ट करती हैं।

जर्मनी के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक **प्रो० डेविड टॉड** का कहना है कि सूर्य के बीच में एक दरार पड़ रही है जो निरन्तर बढ़ती जा रही है। यदि इसका बढ़ना बन्द न हुआ तो निकट भविष्य में सूर्य दो टुकड़ो में विभक्त हो जाएगा जिसका प्रभाव हमारे सारे सौर-मण्डल पर पड़ेगा। यदि एक पिंड छोटा हुआ तो यह सूर्य का चक्कर लगाने लगेगा जो इसका दसवाँ ग्रह होगा। सम्भवत: अन्य ग्रहों का निर्माण भी इसी प्रकार हुआ होगा। सूर्य के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों ने और भी कई रहस्यों का पता लगाया है जिससे मनुष्य लाभान्वित हो रहा है।

बुध (Mercury)

सूर्य एक केन्द्रीय पिंड है जिसके चारों ओर कई पिंड चक्कर लगा रहे हैं जिनमें 'बुध' और 'शुक्र' हमारी पृथ्वी और सूर्य के मध्य के ग्रह होने से इन्हें 'अन्तर्ग्रह' (Inferior Planets) कहते हैं।

बुध सभी ग्रहों में सबसे छोटा ग्रह है जिसका व्यास 4875 किलोमीटर (3030 मील) है जो हमारे चन्द्रमा का लगभग डयोढ़ा तथा पृथ्वी के आकार का 2/3 है। इसकी सूर्य से दूरी 5 करोड़ 76 लाख किलोमीटर (3 करोड़ 60 लाख मील) तथा पृथ्वी से यह 9 करोड़ 28 लाख किलोमीटर (5 करोड़ 80 लाख मील) दूर है। यह अपनी दीर्घवृताकार कक्षा में सूर्य की परिक्रमा 88 दिन में पूरी कर लेता है। इस परिक्रमा में इसकी गति 48 किलोमीटर (27.7 मील) प्रति सेकण्ड होती है। इस परिक्रमा में जब यह पृथ्वी के सबसे समीप होता है उस समय पृथ्वी से इसकी दूरी 9 करोड़ 28 लाख किलोमीटर (5 करोड़ 80 लाख मील) होती है तथा सूर्य के दूसरी ओर जाने पर यह दूरी 21 करोड़ किलोमीटर (13 लाख 30 हजार मील) हो जाती है।

यह ग्रह जब पृथ्वी के सापेक्ष सूर्य के समकोण पर होता है तो सूर्योदय से 2 घंटे पूर्व या सूर्यास्त के 2 घंटे बाद तक ही दिखाई देता है। यह सूर्य से अधिक से अधिक 28 अंश तथा सामान्तया 23 अंश दूर रहता है। अपनी कक्षा गति के कारण यह कभी पश्चिम में तथा कभी पूर्व में दिखाई देता है जिससे प्राचीन यूनानियों ने इसको दो ग्रह समझ कर दो नाम दे दिये। सन्ध्याकालीन ग्रह का नाम 'मर्क्यूरी' तथा प्रात:कालीन ग्रह का नाम 'अपोलो' (Apolo) रखा। मिश्र निवासियों ने भी ऐसी ही

गलती करके इसके नाम 'होरस' तथा 'सेट' रख दिया। बाद में ज्ञात हुआ कि यह एक ही ग्रह है तो इसका नाम 'मर्क्यूरी' रखा।

इसकी धुरी गति भी 88 दिन है जिससे सूर्य की परिक्रमा में इसका एक ही भाग सदा सूर्य के सामने रहता है। इसका परिभ्रमण मार्ग पृथ्वी की कक्षा से 7 अंश का कोण बनाता है। जब यह घूमता हुआ पृथ्वी के साथ सूर्य के मध्य एक ही धरातल पर आता है तो इसका धब्बा सूर्य पर दिखाई देता है जिसे 'रवि बुध गमन' कहते हैं। यह धब्बा गोल होता है जिससे सूर्य के धब्बों से इसका अन्तर किया जा सकता है।

'रवि बुध गमन' का अवसर कम आता है किन्तु जब भी आता है यह मई या नवम्बर महीने में ही आता है। 13 नवम्बर 1953, 6 मई 1957 तथा 6 नवम्बर 1960 में 'रवि बुध गमन' हुआ था। इसके बाद 9 मई 1970, 9 नवम्बर 1973 तथा 12 नवम्बर 1986 में भी हुआ।

88 दिन में जब यह सूर्य की परिक्रमा करके पुनः अपने स्थान पर आता है तो पृथ्वी अपने परिक्रमा पथ पर आगे निकल जाती है जिससे पृथ्वी के साथ होने में इसे 28 दिन और लग जाते हैं जिससे सूर्य के साथ इसकी 'युति' (Conjunction) 116 दिन बाद होती है। यह जब सूर्य से अधिक दूर होता है तब दिखाई देता है अतः इसे वर्ष में 6 दिन ही देखा जा सकता है।

सूर्य के समीप होने से इसके सूर्य की ओर के भाग का तापमान 430 डिग्री से० (770 डिग्री फ०) तक हो जाता है जो हमारी पृथ्वी के तापमान से 8 गुना अधिक है। इस भीषण गर्मी के कारण यहाँ टिन व शीशा भी पिघली हुई अवस्था में रहता है। इसका सूर्य के विपरीत वाला भाग इतना ठंडा है कि जिसका तापमान -94 डिग्री से० (-200 डिग्री फ०) से -140 डिग्री से (-300 डिग्री से०) तक रहता है। यह भाग सदा अन्धकार में ही रहता है, जिसको प्रकाश तारों से ही मिलता है।

छोटा होने के कारण इसका गुरुत्वाकर्षण भी कम है तथा इस पर वायुमण्डल भी नहीं है। इस पर न बादल है न पानी। भीतरी ग्रह होने से इसमें कलाएँ भी दिखाई देती हैं। इसका 'विपलायन वेग' (Escape Velocity) 3.6 कि०मी० (2.3 मील) प्रति सेकण्ड है। यहाँ के वायुमण्डल में कई जहरीली गैसें पाई जाती हैं। इसकी आकर्षण शक्ति पृथ्वी की 1/4 है तथा वजन पृथ्वी का 1/23 है। इस पर प्राणियों की कोई सम्भावना नहीं है।

आज के 100 वर्ष पूर्व सूर्य और बुध के बीच एक और ग्रह की कल्पना की गई थी। लवेरी ने सोचा कि यह ग्रह गणितीय नियम से नहीं घूम रहा है। इसकी विकृति का कारण सूर्य और इसके बीच कोई अन्य पिंड होना चाहिए। उसने इस नवीन

कल्पित ग्रह का नाम 'वूल्कन' रखा किन्तु बाद में खोज करने पर ज्ञात हुआ कि ऐसा कोई पिंड वहाँ नहीं है। इस पर पहाड़, चोटियाँ, दरारें आदि होने का भी विश्वास किया जाता है। इसके कोई उपग्रह (चन्द्रमा) भी नहीं है।

शुक्र (Venus)

बुध के बाद शुक्र दूसरा ग्रह है। सूर्य तथा पृथ्वी के मध्य होने से इसे भी 'अन्तर्ग्रह' कहते हैं। अन्य ग्रहों की अपेक्षा यह सबसे चमकीला दिखाई देता है जिससे अँधेरी रात्रि में इसकी ज्योति से परछाई भी पड़ती है। वैज्ञानिक इसकी खोज में अधिक रुचि ले रहे हैं। बुध की भाँति इसे भी सूर्योदय से 3 घंटे पूर्व तथा सूर्यास्त के 3 घंटे बाद तक ही देखा जा सकता है। सूर्य से यह अधिक से अधिक 45^0 के कोण तक दिखाई देता है।

यह ग्रह सूर्य से 10 करोड़ 72 लाख किलोमीटर (7 करोड़ 72 लाख मील) दूर है तथा दीर्घवृत में चलकर 225 दिन (224 दिन 16 घंटे 48 मिनिट) में सूर्य की परिक्रमा करता है किन्तु इस समय में पृथ्वी अपने परिक्रमा पथ में आगे निकल जाती है जिससे इसकी 'युति' 584 दिन बाद होती है। जब यह पृथ्वी के समीप होता है तो इसकी पृथ्वी से दूरी 3 करोड़ 85 लाख किलोमीटर (2 करोड़ 46 लाख मील) होती है तथा दूर की स्थिति में यह 27 करोड़ किलोमीटर (16 करोड़ 90 लाख मील) दूर होता है। इसकी कक्षा में घूमने की गति 34.7 कि०मी० (21.7 मील) प्रति सेकण्ड है। इसका व्यास 12320 कि०मी० (7700 मील) है जो पृथ्वी के व्यास के लगभग बराबर है। इसका भार पृथ्वी के भार का 85% है तथा इसकी आकर्षण शक्ति भी 85% है। इसका विपलायन वेग 10.08 कि०मी० (6.3 मील) प्रति सेकण्ड है।

यह ग्रह भी कभी पूर्व में तथा कभी पश्चिम में दिखाई देता है जिससे प्राचीन ज्योतिर्विद इसे दो ग्रह समझते थे। वैदिक आर्यों ने इसका नाम 'वेन' और 'शुक्र' दिया तथा यूनानियों ने भी इसका नाम 'टेस्पेरस' (प्रातः कालीन तारा) तथा 'फास्फोरस' (संध्याकालीन तारा) दिया। बाद में ज्ञात हुआ कि यह एक ही ग्रह है तो यूनानियों ने इसका नाम 'वीनस' तथा आर्यों ने 'शुक्र' दिया।

इसके चारों ओर बादल छाये रहते हैं तथा इस पर वायुमण्डल भी है। इसकी धुरी गति का पूरा ज्ञान नहीं हो सका किन्तु एक जर्मन ज्योतिषी **क्रेटर** (1745-1816 ई०) ने बताया कि यह 23 घंटे 17 मिनिट में अपनी धुरी पर घूम जाता है। यह सूर्य की परिक्रमा 247 दिन में कर लेता है। एक अमेरिकन वैज्ञानिक ने बताया कि यह घड़ी की दिशा में घूम रहा है। ऐसी उल्टी गति बृहस्पति के 4 उपग्रहों की भी है तथा

शनि और वरुण के भी एक-एक उपग्रह इसी प्रकार घड़ी की दिशा में घूमते हैं।

बुध की भाँति भीतरी ग्रह होने से शुक्र में भी कलाएँ दिखाई देती हैं जिससे इसका प्रकाश घटता-बढ़ता रहता है। इन कलाओं को सर्वप्रथम 1610 ई० में **गेलीलियो** ने देखा था। इसका स्वयं का प्रकाश न होने से तथा यह पृथ्वी और सूर्य के मध्य होने से इसका प्रकाशित भाग सूर्य की ओर रहता है जिससे यह पृथ्वी से दिखाई नहीं देता किन्तु इस स्थिति में ही यह पृथ्वी के सबसे समीप होता है। जब यह सूर्य के पीछे चला जाता है तब भी दिखाई नहीं देता। जब यह सूर्य से पृथ्वी के सापेक्ष समकोण पर होता है तभी दिखाई देता है।

पृथ्वी की अपेक्षा यह सूर्य के अधिक समीप होने से इसका तापमान पृथ्वी से अधिक होना चाहिए किन्तु इसके ऊपर बादलों का घना आवरण है जिसमें सम्भवत: पानी की भाप और बर्फ के कण हैं जो सूर्यताप का 75% भाग पुन: शून्य में परावर्तित कर देता है जिससे इसके धरातल पर कम गर्मी पहुँचती है। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि इसका तापमान 100 डिग्री से० से ऊपर है किन्तु कुछ का मत है कि यह 36 डिग्री से० ही होना चाहिए। शुक्र के बादल पानी के हैं अत: इस ग्रह पर पानी अवश्य होना चाहिए। इस पर वनस्पति तथा प्राणियों के रहने की सम्भावना है। इसके ऊपर कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा पृथ्वी से कई गुना अधिक है किन्तु ऑक्सीजन आदि गैसों का पता नहीं चल सका। कुछ नाईट्रोजन होने की भी प्रमाण मिले हैं। जिस प्रकार पृथ्वी से पूर्ण चन्द्र दिखाई देता है वैसे पूर्ण शुक्र कभी भी दिखाई नहीं देता। बुध की भाँति शुक्र भी कभी-कभी सूर्य पर से होकर गुजरता है किन्तु ऐसी स्थिति लगभग 100 वर्षों में आती है, जब शुक्र का धब्बा सूर्य पर दिखाई देता है। सन् 1882 ई० में शुक्र का धब्बा सूर्य पर दिखाई दिया था। अब सन् 2004 में 8 जून को यह फिर दिखाई देगा तथा 2012 ई० में पुन: दिखाई देगा।

इस ग्रह के भी कोई उपग्रह नहीं है। इसका चुम्बकीय क्षेत्र पृथ्वी से अधिक है। 12 फरवरी 1961 को रूस ने एक राकेट शुक्र की ओर भी भेजा जिसने इसके अधिक समीप से गुजर कर इसके चित्र लिये जिससे अधिक जानकारी मिलने की आशा है।

हमारी पृथ्वी (Our Earth)

जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं उसके विषय में हमारी जानकारी सर्वाधिक होनी चाहिए। इस पृथ्वी पर मनुष्य अपने जन्म के समय से ही इसकी अत्यधिक जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है। तथा अपनी सीमा में उसने इसकी व्याख्याएँ भी प्रस्तुत की हैं।

सूर्य से दूरी एवं आकार—अन्य ग्रहों की भाँति हमारी पृथ्वी भी एक ग्रह है जिसकी सूर्य से औसत दूरी 15 करोड़ किलोमीटर (9 करोड़ 29 लाख 65 हजार मील) है। यह दीर्घवृत में सूर्य की परिक्रमा करती है जिससे इसकी दूरी सूर्य के समीप होने पर 14 करोड़ 75 लाख कि०मी० (9 करोड़ 15 लाख मील) तथा दूर होने पर 15 करोड़ 25 लाख कि०मी० (9 करोड़ 45 लाख मील) हो जाती है। इसका व्यास लगभग 12800 कि०मी० (8000 मील) है किन्तु यह पूर्ण रूपेण गोल नहीं है। बल्कि ध्रुवों पर कुछ चपटी है जिससे इसका ध्रुवीय व्यास 12640 कि०मी० (7899.6 मील) है तथा विषुवत रेखीय व्यास 12683.2 किलोमीटर (7926.6 मील) है जो ध्रुवीय व्यास से 43.2 कि०मी० (27 मील) अधिक है। व्यास के अनुसार इसकी विषुवत रेखीय परिधि 39843 कि०मी० (24902 मील) तथा ध्रुवीय परिधि 39776 कि०मी० (24860 मील) है, जिनका अन्तर 67 कि०मी० (42 मील) है इसका क्षेत्रफल 55 करोड़ 33 लाख कि०मी० (19 करोड़ 70 लाख मील) है जिसमें 36 करोड़ 35 लाख कि०मी० में जलभाग है, जबकि स्थल भाग केवल 15 करोड़ 98 लाख कि०मी० ही है। सम्पूर्ण पृथ्वी का घनफल (Volume) 10 खरब, 63 अरब घन कि०मी० है। इसका घनत्व 5.5 है। इसका वजन 16 x 1022 मन (56,700,000,000,000,000,000 टन) है। इसका विपलायन वेग (Escape Velocity) 7 मील (11.2 कि०मी०) प्रति सेकण्ड है। यदि कोई वस्तु 7 मील प्रति सेकण्ड की गति से फेंकी जाय तो वह इसके गुरुत्वाकर्षण से बाहर निकल जाएगी।

तापमान—पृथ्वी पर सबसे अधिक तापमान 59 डिग्री से० (136 डिग्री फ०) तथा न्यूनतम तापमान दक्षिणी ध्रुव के समीप -87 डिग्री से० (-125 डिग्री फ०) अंकित किया गया है। पृथ्वी के केन्द्र की ओर तापमान निरन्तर बढ़ता जाता है। प्रति 31 मीटर (101 फीट) की गहराई पर 1 डिग्री से० तापमान बढ़ जाता है। यदि इसी क्रम से तापमान बढ़ता रहे तो केन्द्र का तापमान 2.25 लाख डिग्री से० होगा। इसमें भी स्वयं का प्रकाश नहीं है। यह सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित होती है तथा इसे पुनः परावर्तित करती है। जिस प्रकार हम चन्द्रमा की चाँदनी देखते हैं वैसे ही चन्द्रमा पर भी पृथ्वी की चाँदनी दिखाई देती है तथा वहाँ भी इसकी कलाएँ दिखाई देंगी किन्तु चन्द्रमा पर इसका प्रकाश हमारे यहाँ चन्द्रमा की चाँदनी से 50 गुना अधिक होगा। द्वितीय चाँद में जो हल्का प्रकाश दिखाई देता है वह पृथ्वी का ही परावर्तित प्रकाश है।

गतियाँ (Motions)—पृथ्वी की दो स्पष्ट गतियाँ हैं—'अपनी धूरी पर

घूमना' तथा 'सूर्य की परिक्रमा करना'। पृथ्वी अपनी धूरी पर 24 घंटे (23 घंटे 56 मिनिट 4.09 सेकण्ड) में एक बार घूम जाती है। इसे पृथ्वी की दैनिक गति या 'आवर्तन' (Rotation) कहते हैं। अपनी धूरी पर घूमती हुई यह 365.25 दिन (365 दिन, 5 घंटे, 48 मिनिट, 46.09 सेकण्ड) में सूर्य की एक परिक्रमा कर लेती है। इसे पृथ्वी की 'वार्षिक गति' या 'परिक्रमण' (Revolution) कहते हैं। पृथ्वी जिस मार्ग से सूर्य की परिक्रमा करती है उसे पृथ्वी की 'कक्षा' (Orbit) कहते हैं। यह कक्षा 93 करोड़ 54 लाख कि०मी० (58 करोड़ 46 लाख मील) है जिसे यह 1 लाख कि०मी० प्रति घंटा या 29 कि०मी० (18 मील) प्रति सेकण्ड की गति से चलकर 365.25 दिन में तय करती है। वैज्ञानिकों की यह मान्यता है कि पृथ्वी की ये गतियाँ सदा समान नहीं रहती। पृथ्वी के जन्म के प्रारम्भिक दिनों में यह सूर्य के अधिक समीप थी उस समय यह अपनी धूरी पर 15000 वर्षों तक 4 घंटे में ही घूम जाती थी तथा परिक्रमण की अवधि भी कम थी। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि यह सूर्य से दूर हटती जा रही है जिससे इसके घूमने की अवधि बढ़ती जा रही है। पृथ्वी सूर्य से प्रतिवर्ष 1 सेण्टीमीटर 0.375 इंच दूर होती जा रही है। जिससे इसके घूमने की गति एक लाख वर्षों में 1 सेकण्ड कम होती जा रही है अर्थात् दिनमान की अवधि बढ़ती जा रही है।

पृथ्वी की आकृति, विस्तार तथा उसकी गतियों की जानकारी लेने में मनुष्य को हजारों वर्ष लग गये। विभिन्न समयों में मनुष्य ने अपने सीमित साधनों से पृथ्वी की जिस प्रकार व्याख्या की उससे ज्ञात होता है कि मनुष्य को इसके विषय में जानने की कितनी तीव्र जिज्ञासा थी। जिज्ञासा का यह क्रम अभी भी बन्द नहीं हुआ है बल्कि वैज्ञानिक साधनों से इसकी गति और तीव्र हुई है किन्तु पृथ्वी के कई रहस्यों की खोज अभी भी शेष है।

उपग्रह (Satellite) – इस पृथ्वी का एक ही 'उपग्रह' या 'चन्द्रमा' है जिसका वर्णन अलग से किया जा रहा है।

आकृति (Shape) – प्राचीन पाश्चात्य धारणा–पृथ्वी की आकृति सम्बन्धी धारणा भी काफी समय तक मनुष्य के लिए रहस्य बनी रही। आकाश के अन्य पिंडों को देखकर मनुष्य ने शीघ्र ही जान लिया कि ये गोल है किन्तु पृथ्वी के ऊपर रह कर वह इसकी आकृति का .ठीक.ठाक अनुमान नहीं लगा सका। प्राचीन काल में यातायात के तीव्रगामी साधन न होने से मनुष्य का सम्बन्ध पृथ्वी के थोड़े से ही क्षेत्र से रहा तथा पृथ्वी की विशालता की तुलना में लघु मानव ने उसके थोड़े से भाग को देखकर शीघ्र ही निर्णय ले लिया कि यह चपटी है क्योंकि यह चपटी ही दिखाई देती

है। इसके बाद भिन्न-भिन्न देशों में इसके आकार सम्बन्धी भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ भी की गई जिनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं था। बेबीलोनिया निवासी पृथ्वी को चपटी मानते थे। यहूदी लोग इसके वृत्ताकार मानते थे तथा यह मानते थे कि इसे गोलाकर रूप में ऑकियानॉस नदी घेरे हुए है। वे आसमान को गुम्बदनुमा वक्ष समझते थे जिसकी खिड़कियों में से वर्षा होती है। यूनानी दार्शनिक **थेल्स** ने 640 ई०पू० में बताया कि पृथ्वी गोल-मण्डल है जो पानी पर तैर रहा है परन्तु उसके शिष्य व साथी **एनक्षीमेण्डर** ने 6वीं शताब्दी ई०पू० में बताया कि पृथ्वी मण्डल नहीं है बल्कि 'वेलनाकार वृत' (Cylinderic) है जो अपनी धूरी पर घूम रहा है। अन्य यूनानियों ने भी इसे चौरस छत की भाँति बताया। किसी ने इसे अण्डाकार, किसी ने खरबूजे की भाँति तथा किसी ने ताम्बूलाकार माना। **कोलम्बस** ने भी 15वीं शताब्दी में यह सिद्ध करना चाहा कि पृथ्वी शंखाकार है। इन सब भ्रान्त धारणाओं ने मनुष्य को काफी समय तक अन्धकार में रखा। अधिक समय तक सत्य का पता न लगने का कारण यह भी था कि कुछ धर्मावलम्बी इस वैज्ञानिक अन्वेषण में रोड़े अटकाते थे तथा उनके विचारों को धर्म के विरुद्ध मानकर कठोर से कठोर यातनाएँ भी दी जाती थी। रोमन केथोलिक मतावलम्बी पृथ्वी को अभी भी चपटी मानते हैं। **जिआर्ड नो ब्रूनो** ने सिद्ध किया कि पृथ्वी गोल है तो धर्म के विरुद्ध प्रलाप करने का अभियोग लगाकर उसे जिन्दा जला दिया गया। इसी आरोप में गणित का पंडित **हिपोशिया** का गिरजाघर में वध कर दिया गया और उसके मृत शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये। **गेलीलियो** को कारावास का दण्ड भुगतना पड़ा। 600 ई० में **पाइथेगारेस** ने भी पृथ्वी को गोलाकार बताया तथा 400 ई०पू० **अरस्तु** ने भी इसे गोलाकार सिद्ध किया था। ईसा के 300 वर्ष पूर्व **इराटॉस्थनीज** ने नाप जौख कर इसके गोल होने के प्रमाण दिये तथा इसकी परिधि भी ज्ञात की, किन्तु चौथी शताब्दी में धर्म के प्रभाव के कारण यह सत्य अन्धकार में डूबा रहा तथा 16वीं शताब्दी तक उसको प्रकट होने का अवसर नहीं मिला।

भारतीय मत—भारत में भी पृथ्वी की आकृति सम्बन्धी कल्पना प्राचीन काल से की गई। भारत में 'भूगोल' शब्द ही पृथ्वी के गोल होने का परिचायक है। **स्कन्द पुराण** के अनुसार, *सूर्य से अलग होकर पृथ्वी ने भक्त की भाँति अपने जन्मदाता सूर्य के सम्मुख अपना सिर झुका दिया व सूर्य की गति से गतिमान हुई व स्वयं घूमती हुई भगवान अंशुमान (सूर्य) की प्रदक्षिणा करने लगी।"* **ऐतरेय ब्राह्मण** में भी पृथ्वी के गोल होने के प्रमाण मिलते हैं। **वराहमिहिर** ने अपने **'सूर्य सिद्धान्त'** में लिखा है, *"वे जो भी एक ही व्यास पर रहते हैं एक दूसरे के बारे में सोचते हैं कि दूसरा हमारे नीचे*

हैं। जैसे भद्रावश्य के लोग केतुमास वालों को और लंका के लोग सिद्धपुर वालों को, और इस भूगोल पर सब जगह लोग अपने ही स्थान को ऊपर मानते हैं परन्तु पृथ्वी तो अंतरिक्ष में एक गोला है। इसलिए उसका ऊपर कहाँ है और नीचे कहाँ है?" 12वीं शताब्दी में **भास्कराचार्य द्वितीय** ने **'सिद्धान्त शिरोमणि'** ग्रन्थ में लिखा है, *"वह बड़ी भारी भूमि की तुलना में मनुष्य के अत्यन्त क्षुद्र होने के कारण भूमि के ऊपर उसकी दृष्टि जहाँ तक जाती है वहाँ सब सपाट-सी जान पड़ती है।"* इन्होंने पृथ्वी की परिधि भी ज्ञात की। इन्होंने लिखा है, *"भूमध्य रेखा से उज्जायिनी की दूरी नाप कर उसे 16 से गुणा करने पर पृथ्वी की परिधि ज्ञात होगी क्योंकि उज्जायिनी का अक्षांस 22.5 अंश है।"* (22.5 x 16 = 360 अंश) इन्होंने दोनों ध्रुवों की स्थिति, पृथ्वी के व्यास और क्षेत्रफल का भी वर्णन किया। इन्होंने परिधि और व्यास का अनुपात 3.1416 लिया जो बहुत शुद्ध है। आजकल यह 22/7 = 3.1428 माना जाता है।

आधुनिक मत—16वीं शताब्दी में कोपरनिकस ने यह सिद्ध कर दिखाया कि निश्चित ही पृथ्वी गोल है तथा इसकी आकृति गेंद के समान है। इसकी पुष्टि **गेलीलियो** ने की किन्तु 17वीं शताब्दी में **न्यूटन** ने यह प्रमाणित किया कि यह गेंद की तरह गोल नहीं है बल्कि ध्रुवों पर कुछ चपटी है। 1903 ई० में **जेम्स जीन्स** ने बताया कि यह नाशपाती के आकार की है। कुछ वैज्ञानिकों ने इसे नारंगी के समान बताया तथा किसी ने इसे 'चतुष्फलक' (Tetrahedron) के समान बताया किन्तु पृथ्वी की पूर्ण नाप-जौख करने के बाद ज्ञात हुआ कि यह ध्रुवों पर कुछ चपटी है। इतनी चपटी नहीं कि इसे नाशपाती या नारंगी कहा जाय तथा गेंद की तरह पूर्णतया गोल भी नहीं है। इसके ध्रुवीय व्यास एवं विषुवत रेखीय व्यास में केवल 43 कि०मी० का अन्तर है। यह चपटापन इतना कम है कि 40 सेण्टीमीटर (16 इंच) व्यास का ग्लोब लें तो उस पर सिरों का चपटापन कागज के पृष्ठ की मोटाई के बराबर ही होगा। अतः विद्वानों ने इसे 'पृथ्वियाकार' (Geoid या Spheroid) कहा। सामान्य कार्यों के लिए गोल ही कहा जाता है। इसकी मोटाई अकाट्य प्रमाणों द्वारा सिद्ध की जा चुकी है जिसे सभी विद्वानों ने एक मत होकर स्वीकार किया।

महत्व—पृथ्वी की इस गोलाई का मनुष्य के लिए सर्वाधिक महत्व है। इस गोलाई के कारण भिन्न-भिन्न अक्षांशों पर सूर्य की किरणें भिन्न-भिन्न अंश के कोण पर पड़ती है। भूमध्य रेखा के पास से अधिक लम्बवत् पड़ती है तथा ध्रुवों की ओर इनका तिरछापन बढ़ता जाता है जिससे विषुवत रेखा के पास के स्थानों का तापमान अधिक रहता है तथा ध्रुवों की ओर घटता जाता है। इसी तापमान की भिन्नता से

वायुदाब में भिन्नता पाई जाती है। जिससे हवाएँ चलती हैं, वर्षा होती है, जलवायु में भिन्नता पाई जाती है। इसी भिन्नता के कारण संसार में विभिन्न प्रकार की फसलें तथा वनस्पति होती है जिससे मानव जीवन का अस्तित्व है। इसी जलवायु की भिन्नता से मनुष्यों के रहन-सहन, वेशभूषा, खान-पान, रीतिरिवाज, धर्म-संस्कृति, सभ्यताएँ आदि में भी भिन्नता पाई जाती है। जनसंख्या का घनत्व व वृद्धि भी इसी पर निर्भर है। इसके विपरीत यदि पृथ्वी चपटी होती तो इन सब भिन्नताओं का अभाव होता जिससे इस पृथ्वी पर मानव का अस्तित्व ही नहीं होता व यह पृथ्वी एक शुष्क मानव रहित वीरान मरुस्थल होती।

गतियों सम्बन्धी प्राचीन मत—जिस प्रकार पृथ्वी की आकृति के बारे में प्राचीन काल में काफी मतभेद रहा उसी प्रकार इसकी गतियों के बारे में भी मतभेद चलता रहा किन्तु आजकल अनेक प्रमाणों द्वारा इसकी दोनों गतियों को सिद्ध किया जा चुका है।

प्राचीन काल में पृथ्वी को स्थिर तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का केन्द्र माना जाता था। इसी कारण इसे 'स्थिरा' 'अचला' आदि की संज्ञा दी गई। सर्वप्रथम छठी शताब्दी में **आर्यभट्ट** ने इसे घूमती हुई सिद्ध किया तथा बताया कि एक महायुग में पृथ्वी अपनी धुरी पर 1,58,22,37,500 बार घूम जाती है। एक महायुग 43,20,000 वर्ष का होता है। इस हिसाब से एक वर्ष में पृथ्वी अपनी धूरी पर 366 चक्कर लगाती है जो सर्वथा शुद्ध है। **आर्यभट्ट** ने लिखा है कि, *"जैसे चलती हुई नाव में बैठा हुआ मनुष्य किनारे के स्थिर पेड़ों को उल्टी दिशा में चलता हुआ देखता है वैसे ही लंका से स्थिर तारे पश्चिम की ओर चलते दिखाई देते हैं।"* किन्तु इस मत को बाद वाले ज्योतिषियों ने मान्यता नहीं दी। **वराहमिहिर** ने भी इस मत का खंडन करते हुए लिखा कि, *"कुछ लोग कहते हैं कि पृथ्वी भ्रमण करती है परन्तु यदि ऐसा होता तो चील तथा अन्य पक्षी आकाश में अपने घोंसलों को नहीं लौट सकते. . . फिर यदि पृथ्वी वस्तुतः एक दिन में एक चक्कर लगाती है तो ध्वजा आदि पृथ्वी के वेग के कारण पश्चिम की ओर फहराते रहते। और यदि कोई यह कहे कि पृथ्वी धीरे-धीरे घूमती है तो फिर एक दिन में एक बार कैसे घूम जाती है।"* **भास्कराचार्य द्वितीय** ने भी पृथ्वी का घूमना स्वीकार नहीं किया। आज भी कई ज्योतिषी पृथ्वी की गति को तो स्वीकार करते हैं किन्तु गणना में सूर्य को ही चलायमान मानते हैं। इससे गणना में कोई अन्तर नहीं पड़ता। सूर्य सितारों के सापेक्ष चलता दिखाई देता है यह उसकी 'दृश्य गति' है।

गतियों का प्रभाव—पृथ्वी के गोल होने तथा उसकी धुरी गति के कारण ही भिन्न-भिन्न भाग भिन्न-भिन्न गति से घूमते हैं तथा इस पृथ्वी पर दो ऐसे बिन्दु हैं जहाँ

गति शून्य होती है। इन्हीं बिन्दुओं को 'ध्रुव' (Poles) कहा जाता है। दोनों ध्रुवों के बीच विषुवतरेखा वाले भाग पर गति सबसे अधिक होती है। विषुवतरेखा पर यह गति 1660 कि०मी० (1038 मील) प्रति घंटा या 28 कि०मी० (17 मील) प्रति मिनिट है। यह गति बन्दूक की गोली से 50 गुनी तथा रेलगाड़ी की गति से 1000 गुनी अधिक है। पृथ्वी की गति इतनी तीव्र होते हुए भी इतनी सम है कि मनुष्य को उसका आभास भी नहीं होता। विषुवतरेखा से ध्रुवों की ओर यह गति कम होती जाती है। भिन्न-भिन्न अक्षांशों पर यह गति निम्न प्रकार है—

0^0	अक्षांस	—	1660 किमी/घंटा	(1038 मील)
10^0	"	—	1637 "	(1023 ")
20^0	"	—	1562 "	(976 ")
30^0	"	—	1438 "	(899 ")
40^0	"	—	1272 "	(795 ")
50^0	"	—	1009 "	(668 ")
60^0	"	—	830 "	(519 ")
70^0	"	—	568 "	(355 ")
80^0	"	—	290 "	(181 ")
90^0	"	—	0 "	(0 ")

पृथ्वी के इसी आवर्तन के कारण हवाओं एवं धाराओं की दिशा में परिवर्तन होता है। पृथ्वी की वर्तमान आकृति भी इसी आवर्तन के कारण बनी है जिससे वह ध्रुवों पर चपटी हो गई तथा विषुवतरेखा पर उभर गई। इसी आवर्तन के कारण दिशाओं का ज्ञान होता है। जहाँ पृथ्वी की गति शून्य है वे उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव कहलाते हैं। यही पृथ्वी की उत्तर और दक्षिण दिशा है। जिधर सूर्य उदय होता है वह 'पूर्व' और जिधर अस्त होता है उसे 'पश्चिम' कहते हैं। इसी आवर्तन के कारण दिन में दो ज्वार व दो भाटे आते हैं। पृथ्वी की चुम्बकीय दशा भी घूमने के ही कारण है।

जिस प्रकार पृथ्वी के आवर्तन का मानव जीवन पर प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार उसके परिक्रमण का भी प्रभाव पड़ता है। इस वार्षिक गति से ही वर्ष की अवधि 365 दिन या 366 दिन निश्चित की गई है। इसे 'सौर-वर्ष' कहते हैं।

पृथ्वी के 66.5 अंश झुके हुए होने तथा इसी स्थिति में सूर्य की परिक्रमा के कारण ही पृथ्वी पर दिन-रात की अवधि में असमानता पाई जाती है। जब सूर्य विषुवत रेखा से उत्तर में लम्बवत् चमकता है तो उस समय उत्तरी गोलार्द्ध में दिन बड़े

और रातें छोटी होती हैं तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में सीधा चमकने पर इसके विपरीत रातें बड़ी और दिन छोटे होते हैं। 21 जून को जब सूर्य कर्क रेखा (23.5 अंश उत्तरी अक्षांश) पर लम्बवत् चमकता है उस समय उत्तरी गोलार्द्ध में सबसे बड़ा दिन तथा रात सबसे छोटी होती है। इसके विपरीत दक्षिणी गोलार्द्ध में रात सबसे बड़ी तथा दिन सबसे छोटा होता है। 22 दिसम्बर को जब सूर्य मकर रेखा (23.5 अंश दक्षिणी अक्षांश) पर लम्बवत् चमकता है उस समय दक्षिणी गोलार्द्ध में सबसे बड़ा दिन तथा सबसे छोटी रात होती है तथा उस समय उत्तरी गोलार्द्ध में सबसे बड़ी रात तथा सबसे छोटा दिन होता है। 21 मार्च तथा 23 सितम्बर को जब सूर्य की किरणें विषवतरेखा पर लम्बवत पड़ती हैं तो सारी पृथ्वी पर दिन-रात बराबर 12-12 घंटे के होते हैं।

21 मार्च तथा 23 सितम्बर को दिन-रात का बराबर होना केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से ही सत्य है किन्तु प्रत्यक्ष निरीक्षण के आधार पर देखा जाय तो इन तिथियों में भी दिन-रात बराबर नहीं होते। इसके निम्न कारण हैं—

(1) 21 मार्च को प्रातः काल 10 बजे सूर्य विषुवत को पार कर उत्तर की ओर लम्बवत् चमकने लगता है जिससे 20 मार्च का दिन उत्तरी गोलार्द्ध में 12 घंटे से छोटा होता है तथा 21 मार्च का 12 घंटे से बड़ा हो जाता है। दक्षिणी गोलार्द्ध में इसके विपरीत होता है। इंग्लैण्ड में 21 मार्च का दिन 12 घंटे 10 मिनिट का होता है तथा रात्रि में 11 घंटे 50 मिनिट की ही होती है।

(2) इन तिथियों में दिन-रात की असमानता का दूसरा कारण यह है कि विषुवत रेखा को पार करने में सूर्य के केन्द्र का ध्यान रखा जाता है जबकि सूर्योदय और सूर्यास्त की गणना सूर्य के ऊपरी किनारे से होती है जो क्षितिज से बाहर होता है। इससे दिन की लम्बाई बढ़ जाती है। सूर्य समय से पूर्व ही उदय हो जाता है तथा बाद में अस्त होता है।

(3) तीसरा कारण है कि पृथ्वी पर घना वायुमण्डल है जिससे सूर्य की किरणों का परावर्तन (Refraction) होता है। इस परावर्तन के कारण सूर्य जब क्षितिज से नीचे होता है तब भी वह आकाश में क्षितिज से ऊपर दिखाई देता है। इसी प्रकार सूर्यास्त के समय क्षितिज से नीचे चले जाने पर भी वह कुछ समय तक क्षितिज से ऊपर ही दिखाई देता है जिससे दिन की अवधि 12 घंटे से अधिक होती है। यदि सूर्य बिन्दु रूप में होता तथा पृथ्वी पर वायुमण्डल नहीं होता तो दिन-रात अवश्य बराबर होते।

विभिन्न अक्षांशों पर दिन की अधिकतम लम्बाई निम्न प्रकार होती है—

अक्षांश	दिन की अधिकतम लम्बाई	अक्षांश	दिन की अधिकतम लम्बाई
0^0	12 घंटे	60^0	18 घंटे 30 मिनिट
10^0	12 घंटे 35 मिनिट	66.50^0	24 घंटे 0 "
20^0	13 " 13 "	70^0	2 महीना (65 दिन)
30^0	13 " 56 "	80^0	4.5 " (134 दिन)
40^0	14 " 51 "	90^0	6 " (187 दिन)
50^0	16 " 9 "	—	—

पृथ्वी के इसी परिक्रमण के कारण अक्षांश रेखाओं का ज्ञान होता है। विषुवतरेखा, कर्क और मकर रेखाएँ, 66.5 अंश उत्तरी तथा दक्षिणी अक्षांश रेखाएँ जिन्हें उत्तरी तथा दक्षिणी 'ध्रुव वृत्त' कहते हैं सूर्य की किरणों की स्थिति के आधार पर ही निश्चित किये गये हैं।

पृथ्वी की तीसरी गति—सूर्य की परिक्रमा में पृथ्वी की धुरी एक ही ओर झुकी रहती है किन्तु ज्योतिर्विदों का कहना है कि यह भी स्थिर नहीं है। पृथ्वी की धुरी की यह दिशा एक वृत्त बनाती है जिससे पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव विभिन्न सितारों की सीध में आता है। इस समय यह धुरी वर्तमान 'ध्रुव तारे' (Pole Star) की सीध में है किन्तु यह भी ठीक इसकी सीध में न होकर 1 अंश के अन्तर पर है। पृथ्वी का यह ध्रुव
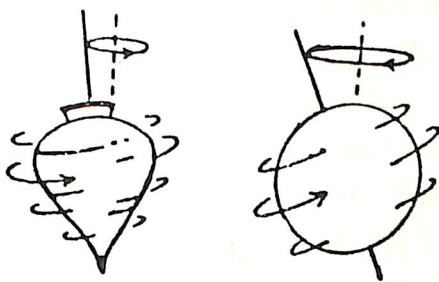
चित्र-10—पृथ्वी का धुरी भ्रमण

वृत्ताकार मार्ग में चलता है। यह पृथ्वी का 'धुरी भ्रमण' (Precession of the equinoxes) कहलाता है। यह पृथ्वी की तीसरी गति है।

चन्द्रमा (Moon)

हमारी पृथ्वी का एक ही उपग्रह है जिसे 'चन्द्रमा' या 'चाँद' कहते हैं। यह हमारी पृथ्वी की परिक्रमा करता है इसलिए इसे 'उपग्रह' कहा जाता है। चन्द्रमा का ज्ञान मोटे रूप से मनुष्य को आदि काल से था किन्तु आज नवीन साधनों से इसके लिए ऐसे रहस्यों का पता चला है जिसके बारे में पहले ज्ञान नहीं था। **'तैत्तीरीय संहिता'** में चन्द्रमा को 'सूर्य रश्मि' लिखा है। (सूर्य रश्मिश्चन्द्रमा गंधर्व) उस समय भी उन्हें यह ज्ञान था कि चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से चमकता है। चन्द्रमा की विभिन्न गतियों, उसकी कलाएँ, चन्द्र व सूर्य ग्रहण आदि का ज्ञान प्राचीन ज्योतिषियों को था। वे गणना द्वारा ग्रहणों की भविष्यवाणी करते थे किन्तु आज वैज्ञानिक साधनों से इसके बारे में अधिक जानकारी प्राप्त की गई हैं।

आकार—चन्द्रमा का व्यास 3456 कि०मी० (2160 मील) है जो पृथ्वी के व्यास का एक चौथाई है। यह भी गोल नहीं है बल्कि धुरी पर कुछ चपटा है। इसका आयतन पृथ्वी का 1/49 है अर्थात् करीब 49 चन्द्रमा मिलकर पृथ्वी के आयतन के बराबर होंगे। इसका भार भी पृथ्वी का 1/84 है तथा इसका घनत्व भी 3.33 है। इसके धरातल का क्षेत्रफल 3 करोड़ 75 लाख 29 हजार 600 वर्ग किलोमीटर ही है जो पृथ्वी के क्षेत्रफल का 13.4 गुना कम है। इसकी आकर्षण शक्ति भी पृथ्वी की 1/6 ही है। यदि किसी मनुष्य का वजन पृथ्वी पर 54 किलोग्राम हो तो उसका वजन चन्द्रमा पर केवल 9 किलोग्राम ही रह जाएगा। इससे यदि पृथ्वी पर 1.5 मीटर ऊँचा कूद सकते हैं तो वहाँ पर 9 मीटर कूदने में सफल हो जाएगा। लम्बी कूद में वह 36 मीटर तक कूद सकेगा। आकर्षण कम होने से इसका 'विपलायन वेग' (Escape Velovity) भी कम है। पृथ्वी का विपलायन वेग 11 किलोमीटर प्रति सेकण्ड है जबकि चन्द्रमा का केवल 2.4 किलोमीटर प्रति सेकण्ड ही है।

पृथ्वी से दूरी—चन्द्रमा पृथ्वी के सबसे समीप का पिंड है। इसकी पृथ्वी से औसत दूरी 3,82,400 किलोमीटर 2,38,840 मील) है। यह पृथ्वी के चारों ओर अण्डाकार मार्ग में घूमता है जिससे यह कभी पृथ्वी के अधिक समीप आ जाता है तथा कभी दूर हो जाता है। जब यह पृथ्वी के समीप होता है तो इसकी पृथ्वी से दूरी 3,53,700 कि०मी० (2,21,463 मील) होती है तथा दूर होने पर यह 4,04,336 कि०मी० (2,562,710 मील) होता है। इसकी समीप की स्थिति को 'शीघ्रोच्च' (Perigee) तथा दूर की स्थिति को 'मन्दोच्च' (Apogee) कहते हैं। यदि 100 कि०मी० प्रति घंटा से चलने वाली रेलगाड़ी में बैठकर चन्द्रमा की यात्रा पर निकलें तो छः माह में चन्द्रमा पर पहुँच सकते हैं। यदि 18000 मील प्रति घंटे की गति से

चलने वाले राकेट में बैठकर चन्द्रमा की ओर जाते हैं तो हम 13 घंटे में ही चन्द्रमा पर पहुँच सकते हैं। चन्द्रमा का प्रकाश पृथ्वी पर पहुँचने में 1.3 सेकण्ड का समय लगता है। यह दूरी अन्य आकाशीय पिंडों की तुलना में सबसे कम है।

वायुमण्डल—गुरुत्वाकर्षण कम होने से चन्द्रमा पर वायुमण्डल नहीं है। यदि है भी तो इतना हल्का कि वहाँ मनुष्य का साँस लेना कठिन है। वायुमण्डल न होने से वहाँ आकाश नीला न दिखाई देकर काला दिखाई देता है, वहाँ दिन में भी तारे दिखाई देते हैं। तारे भी झिलमिलाते नहीं, वे समान रूप से प्रकाशित दिखाई देते हैं। वहाँ आँधी, तूफान नहीं आते। ओस, कुहरा, पाला, धुंध, हिमपात, वर्षा आदि कुछ नहीं होती। वहाँ धूप में तापमान सर्वाधिक रहता है तथा छाया में सबसे कम। वहाँ मनुष्य एक दूसरे की आवाज भी नहीं सुन सकता। यदि वहाँ कोई भयंकर विस्फोट हो तो उसकी आवाज भी मनुष्य नहीं सुन सकता। उषा: काल व सन्ध्या की लालिमा, इन्द्रधनुष, विभिन्न प्रकार के बादलों का दृश्य भी वहाँ नहीं मिलेगा। वहाँ पानी भी नहीं है जिससे वनस्पति का सर्वथा अभाव है। चन्द्रमा पर उल्का वृष्टि निरन्तर होती रहती है जिससे बचना कठिन है। इससे अनुमान लगा सकते हैं कि वहाँ का वातावरण कितना नीरस है।

तापमान—चन्द्रमा पर वायुमण्डल न होने से तापमान अधिक रहता है। वहाँ दिन का तापमान 101 डिग्री से० (214 डिग्री फ०) तक पहुँच जाता है जो पानी के खौलने के बिन्दु से भी 1 डिग्री अधिक है, इसलिए वहाँ पानी भी नहीं है। रात्रि का तापमान -153 डिग्री से० (-243 डिग्री फ०) तक पहुँच जाता है। इतना कम तापमान पृथ्वी पर कहीं भी नहीं पाया जाता। पृथ्वी पर सबसे कम तापमान -125 डिग्री फ० दक्षिणी ध्रुव में रिकार्ड किया गया है। यहाँ धूप और छाया के तापमान में काफी अन्तर पाया जाता है। चन्द्रग्रहण के समय इसका तापमान एक दम गिरने लगता है। 1927 में एक चन्द्रग्रहण के अवसर पर एक ही घंटे में यहाँ का तापमान 250 डिग्री फ० 121 डिग्री से०) गिर गया था। इस अचानक परिवर्तन से वहाँ चट्टानों का विखंडन तीव्र गति से होता है जिससे वहाँ धूल ही धूल मिलती है।

धरातल—कोरी आँख से देखने पर चन्द्रमा पर कुछ धब्बे दिखाई देते हैं जिन्हें पहले सागर समझा जाता था। **गेलीलियो** ने सर्वप्रथम 1610 ई० में अपनी दूरबीन से इन्हें देखा जो 30 गुना बड़ा दिखाई देता था। उसने भी इन धब्बों को सागर समझकर शान्ति सागर, वर्षा सागर आदि नाम रख दिये किन्तु बाद में ज्ञात हुआ कि वे सागर नहीं हैं क्योंकि वहाँ पानी है ही नहीं। ये धब्बे ऊँचे पर्वतों की छाया मात्र है। चन्द्रमा के धरातल पर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं, गड्ढ़े हैं, मैदान हैं तथा दरारें हैं। पहाड़ों में

कई ज्वालामुखी भी हैं। इनमें कई इतने विशाल हैं कि उनका व्यास 160 कि०मी० से भी अधिक है। इस पर छोटे-मोटे कुल मिलाकर 30,000 'ज्वालामुख' (Crater) हैं। यहाँ पर्वतों में सबसे ऊँची चोटी 'लिबनीज पर्वत' 35000 फीट है। यहाँ कई पर्वत मालाएँ भी हैं। सबसे बड़ी पर्वतमाला 'एवेनाइन' 640 कि०मी० लम्बी है। कुछ ज्वालामुखी की गहराई 6 किलोमीटर तक है किन्तु इसमें कोई भी ज्वालामुखी जाग्रत अवस्था में नहीं है। ये प्राचीन ज्वालामुखियों के अवशेष मात्र हैं किन्तु रूसी वैज्ञानिकों का विश्वास है कि इनमें अभी भी विस्फोट जारी है। 3 नवम्बर 1958 ई० को एक रूसी वैज्ञानिक ने दूरयक्षिण से 'असफंसो' ज्वालामुखी में विस्फोट होते भी देखा है। इसके बाद अन्य वैज्ञानिकों ने भी विस्फोट होने की घोषणा
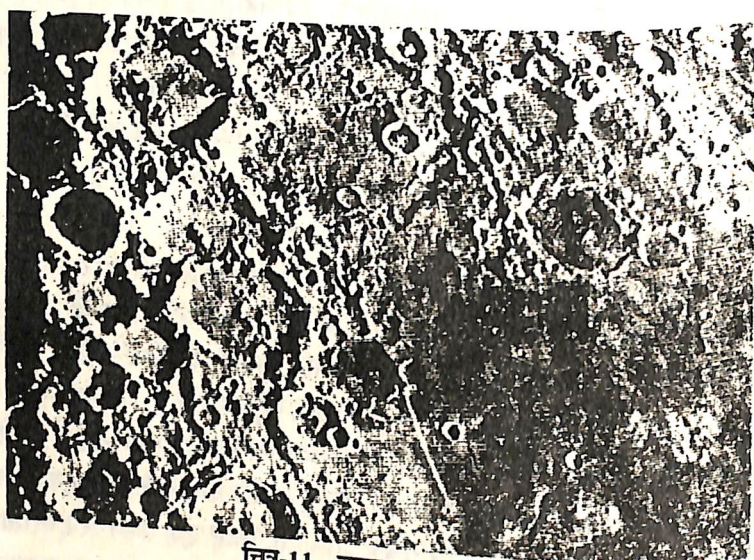
चित्र-11—चन्द्रमा का धरातल

की है। चन्द्रमा का धरातल काफी ऊबड़-खाबड़ हो गया है। यहाँ सख्त भूमि का अभाव है किन्तु इसका दूसरा भाग जो कभी पृथ्वी के सामने नहीं आता वह सम्भवतः सख्त होगा। चन्द्रमा के उस भाग के सर्वप्रथम एक रूसी राकेट 'ल्यूनिक तृतीय' ने 7 अक्टूबर 1959 को परिक्रमा करके चित्र लिये हैं। उस भाग में एक बड़ा धब्बा तथा 12 छोटे धब्बे हैं किन्तु अभी उसका पूरा ज्ञान नहीं हो पाया है।

चन्द्रलोक में मानव—आज से 200 वर्ष पूर्व संसार के सभी वैज्ञानिकों का यह विश्वास था कि चन्द्रमा पर हमारी पृथ्वी की ही भाँति मनुष्य रहते हैं, वहाँ समुद्र है, वनस्पति है तथा अन्य सभी प्राणी हैं किन्तु अब यह स्पष्ट हो गया है कि ये सब वस्तुएँ वहाँ नहीं हैं। यह एक उजाड़, और वीरान लोक है। यदि चन्द्रलोक में मनुष्य पहुँच

जाए तो उसे इस पृथ्वी से भिन्न परिस्थितियाँ मिलेंगी । उसे वहाँ नीरसता का सामना करना पड़ेगा । न हवा, न पानी, न बादल, न वर्षा, न कोई शब्द सुनाई देता है, न किसी की गन्ध आती है । चारों ओर धूल ही धूल, ऊँचे पर्वत, गहरे गड्ढ़े, खाइयाँ यही सब मिलेगा । एक और अजीब बात दिखाई देगी और वह है पृथ्वी का चमकना । चन्द्रमा से हमारी पृथ्वी यहाँ से देखे गये चन्द्रमा से 13 गुनी बड़ी दिखाई देगी तथा इसका प्रकाश भी वहाँ चन्द्रमा के प्रकाश से 40 गुना अधिक दिखाई देगा । इस प्रकाश में वहाँ आसानी से काम किया जा सकता है तथा पढ़ा जा सकता है । चन्द्रमा की कलाओं की भाँति वहाँ पृथ्वी की भी कलाएँ दिखाई देंगी । हमारे यहाँ जब अमावस्या होती है उस दिन चन्द्रमा पर पूर्णिमा होगी । वहाँ से पूरी पृथ्वी प्रकाशित दिखाई देगी । हमारी पूर्णिमा के दिन वहाँ अमावस्या होगी । वहाँ भी पृथ्वी की भाँति ग्रहण दिखाई देते हैं । जब पृथ्वी पर सूर्य ग्रहण होता है तब वहाँ पृथ्वी पर ग्रहण लगता दिखाई देता है तथा जब हमारे यहाँ चन्द्रग्रहण होता है तब वहाँ सूर्यग्रहण दिखाई देता है । वायुमण्डल के अभाव में वहाँ सूर्य का 'परिमण्डल' (Corona) भी दिखाई देता है । निरन्तर हो रही उल्का वृष्टि से वहाँ मनुष्य का जान बचाना कठिन है । आकर्षण की कमी से वहाँ मनुष्य का चलना-फिरना भी कठिन है । थोड़े से ही धक्के से उसका सन्तुलन बिगड़ जाता है । वहाँ यदि साइकिल या बस चलाने का अवसर मिले तो थोड़ी-सी शक्ति से ही उसकी गति काफी तेज हो जाती है तथा उलटने की आशंका बढ़ जाती है । वायुमण्डल न होने से वायुयान तो चल ही नहीं सकते । पक्षियों आदि को भी उड़ने की कोई सुविधा नहीं है ।

गतियाँ—चन्द्रमा की तीन गतियाँ हैं । यह पृथ्वी का उपग्रह होने से इसकी परिक्रमा करता है तथा यह परिक्रमा इस प्रकार करता है कि इसका एक ही भाग सदा पृथ्वी की ओर रहता है । दूसरा भाग कभी पृथ्वी के सम्मुख नहीं आता । **महाभारत** के **शान्ति पर्व** में भी इसका उल्लेख है—

"यथा हिमवतः पार्श्व पृष्ठं चन्द्रमसो यथा ।
न दृष्ट पूर्व मनुजे..... ॥

इस प्रकार की गति से इसकी पृथ्वी की एक पूरी परिक्रमा में यह एक बार अपनी धूरी पर भी घूम जाता है । पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण में बँधा होने के कारण जब पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है तो उसके साथ यह भी सूर्य की परिक्रमा कर लेता है ।

चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा अण्डाकार मार्ग से 27.33 दिन (27.321661 दिन या 27 दिन, 7 घंटे, 43 मिनिट और 11.5 सेकण्ड) में तय करता है । चन्द्रमा का

यह सम्पूर्ण मार्ग करीब 23,68,000 कि०मी० (14,80,000 मील) है जिसे यह 3660 कि०मी० प्रति घंटे की गति से चलकर तय करता है। अण्डाकार पथ में चलने के कारण जब यह पृथ्वी के समीप होता है तो इसकी गति बढ़ जाती है तथा दूर होने पर यह कम हो जाती है जिससे यह कभी 27.5 दिन (27.554550 दिन यानि 27 दिन, 13 घंटे, 18 मिनिट और 33.1 सेकण्ड) भी ले लेता है। चूँकि चन्द्रमा इस अवधि में पृथ्वी की एक परिक्रमा कर लेता है जिससे वह 360 अंश चल देता है इसलिए एक दिन में वह 13 अंश पूर्व की ओर हट जाता है। पृथ्वी 24 घंटे में एक बार अपनी धूरी पर घूम ज़ाती है किन्तु तब तक चन्द्रमा 13 अंश आगे निकल जाता है जिससे चन्द्रमा की सीध में आने के लिए उसे 52 मिनिट और लग जाते हैं। इसी कारण चन्द्रमा प्रतिदिन 52 मिनिट देरी से उदय होता दिखाई देता है।

चन्द्रमा जितने समय में पृथ्वी की परिक्रमा करता है उतने ही समय में वह अपनी धुरी पर भी एक बार घूम जाता है जिससे उसकी धुरी गति भी 28 दिन के करीब होती है तथा इससे इसके दिन-रात की अवधि भी 28 दिन होती है। हमारे 14 दिन के बराबर वहाँ का दिन तथा इतनी ही राशि होती है। यद्यपि चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा 27.33 दिन में पूरी कर लेता है किन्तु पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा के कारण इतने समय में करीब 30 अंश आगे बढ़ जाती है जिससे चन्द्रमा को उस सीध में आने के लिए करीब 2.25 दिन और लग जाते हैं जिससे यह पूरी परिक्रमा उसकी 29.5 दिन (29.530588 दिन या 29 दिन, 12 घंटे, 44 मिनिट और 2.87 सेकण्डों में पूरी होती है। चन्द्रमा की इसी गति के आधार पर मास अवधि प्राप्त होती है। (इसका वर्णन **'काल गणना'** अध्याय में किया गया है।)

उत्पत्ति—अधिकांश वैज्ञानिकों की मान्यता है कि चन्द्रमा की उत्पत्ति पृथ्वी से हुई है तथा पृथ्वी की उत्पत्ति सूर्य से हुई मानी जाती है। अन्य ग्रहों की भाँति ही जब पृथ्वी सूर्य से अलग हुई तो यह सूर्य के अधिक समीप थी। उस समय यह अपनी धुरी पर भी तीव्र गति से घूमती थी। धीरे-धीरे इसकी सूर्य से दूरी बढ़ती गई जिससे इसका परिभ्रमण काल भी लम्बा होता गया। पृथ्वी अपने जन्म के पश्चात् 15000 वर्षों तक अपनी धुरी पर 4 घंटे में ही घूम जाती थी। धीरे-धीरे यह अवधि बढ़ती गई व आज के 1 अरब 60 करोड़ वर्ष पहले यह अपनी धूरी पर 20 घंटे में घूमती थी। उस समय चन्द्रमा का पिंड पृथ्वी से अलग हुआ होगा। **डॉ० जैफरे** का अनुमान है कि चन्द्रमा की उत्पत्ति 4 अरब वर्ष पहले हुई होगी किन्तु अधिकांश वैज्ञानिक चन्द्रमा की आयु 2 अरब वर्ष ही मानते हैं। जर्मनी के प्रसिद्ध भौतिक विज्ञान वेता **फोन वाइस्साफर** ने पृथ्वी का जन्म 3 अरब वर्ष पूर्व माना है। कुछ खगोल शास्त्री सूर्य का जन्म भी 4 अरब वर्ष पूर्व का मानते हैं। **सर जार्ज डारविन** ने चन्द्रमा की आयु 5

करोड़ 70 लाख वर्ष आँकी है। जब पृथ्वी अपनी धुरी पर तीव्र गति से घूमती थी उस समय 'केन्द्र प्रसारी बल' (Centrifugal Force) के कारण एक पिंड अलग हो गया होगा जो उसके गुरुत्वाकर्षण में बँधकर उसके चारों ओर घूमने लगा। अपने जन्म के प्रारम्भिक दिनों में चन्द्रमा पृथ्वी के समीप था। उस समय इसकी पृथ्वी से दूरी 17600 कि०मी० (11000 मील) थी। निकट होने से यह पृथ्वी की परिक्रमा 6.5 घंटे में ही लगा लेता था। उस समय पृथ्वी भी अपनी धुरी पर 6.5 घंटे में ही घूमती होगी। **प्रो० टानर** का कहना है कि आज से 5 करोड़ 70 लाख वर्ष पूर्व चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा एक ही दिन में पूरी कर लेता था। चन्द्रमा और पृथ्वी की ये दूरियाँ बढ़ती जा रही हैं। चन्द्रमा पृथ्वी से प्रति वर्ष 12.7 सेण्टीमीटर दूर होता जा रहा है। यह दूरी 50 अरब वर्ष में 5,44,000 कि०मी० (3,40,000 मील) हो जाएगी। **सर जार्ज डाराविन** ने बताया कि चन्द्रमा से उत्पन्न ज्वार-भाटे के कारण पृथ्वी की धुरी को कम कर दिया है तथा चन्द्रमा की भी दूरी बढ़ती जा रही है। यदि यह दूरी बढ़ती रही तो चन्द्रमा भी एक दिन पृथ्वी की भाँति ग्रह बन जाएगा। चन्द्रमा की उत्पत्ति का स्थान प्रशान्त महासागर बताया जाता है। चन्द्रमा के निकलने से ही यहाँ विशाल गर्त बन गया जिसमें जल एकत्र हो जाने से महासागर बन गया। कुछ वैज्ञानिक चन्द्रमा की उत्पत्ति पृथ्वी से नहीं मानते। उनके अनुसार पृथ्वी और चन्द्रमा कभी भी एक नहीं थे। यह पहले पृथ्वी के निकट अवश्य था किन्तु अब धीरे-धीरे दूर होता जा रहा है। 50 अरब वर्ष बाद यह पृथ्वी से सबसे अधिक दूरी (5,44,000 कि०मी०) पर होगा। इसके बाद फिर यह पृथ्वी के समीप आएगा। पृथ्वी की दैनिक गति का समय भी लम्बा होता जा रहा है। समय का यह अन्तर 10,000 वर्षों में मिनिट का पड़ता है। 50 अरब वर्षों में पृथ्वी अपनी धूरी पर 55 दिनों में घूमेगी जिससे हमारा दिन आज के 55 दिनों के बराबर होगा। इसके बाद चन्द्रमा समीप आने लगेगा और पृथ्वी से 1920 कि०मी० (1200 मील) की दूरी पर आकर स्थिर हो जाएगा। उस समय चन्द्रमा पर भयंकर ज्वार उत्पन्न होगा
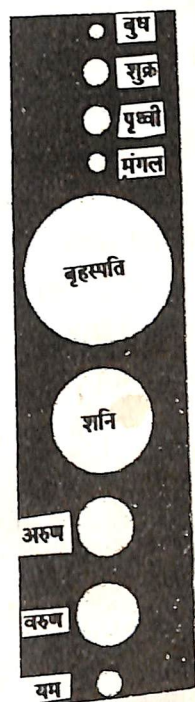
चित्र-१२—हमारा सौर-मण्डल

जिससे चन्द्रमा टुकड़े-टुकड़े होकर शनि के वलय की तरह हो जाएगा।

चन्द्रमा में खोज कार्य—चन्द्रमा पृथ्वी का निकटतम पिंड होने से इसके विषय में काफी जानकारी प्राप्त की जा चुकी है किन्तु अभी तक कई रहस्य ऐसे हैं जिनका .ठीक .ठीक ज्ञान मनुष्य को नहीं हो पाया है। चन्द्रमा के विषय में कई तथ्यों की जानकारी अभी भी अनुमान तथा कल्पना पर आधारित हैं जिसको प्रमाणित करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। चन्द्रमा पर मानव को भेजने के प्रयत्न रूस तथा अमेरिका द्वारा काफी समय से किये जा रहे हैं। सर्वप्रथम 14 सितम्बर 1959 ई० को रूस का अंतरिक्ष राकेट 'ल्यूनिक द्वितीय' चन्द्रमा की भूमि पर उतरा किन्तु वह इतना जोर से गिरा कि उसके यन्त्र नष्ट हो गये जिससे वह वहाँ से कोई समाचार नहीं भेज सका। दूसरा अंतरिक्ष यान 30 जनवरी 1964 को भारतीय समय के अनुसार रात्रि 9.19 पर अमेरिका ने 66 घंटे की यात्रा पर चन्द्रमा की ओर भेजा। इसका वजन 804 पौंड था। यह यान 2 फरवरी 1964 ई० को भारतीय समयानुसार मध्यान्ह 2.00 बजे चन्द्रमा पर उतर गया। इस यान से 3000 फोटो प्राप्त करने थे किन्तु इसके भी यन्त्र टूट जाने से यह फोटो व समाचार नहीं भेज सका। इसके बाद 21 दिसम्बर 1964 ई० को भारतीय समय के अनुसार सायंकाल 6.21 पर अमेरिका ने एक अंतरिक्षयान 'अपोलो -8' चन्द्रमा की ओर भेजा। इसमें तीन यात्री सवार थे। इसने चन्द्रमा से 112 कि०मी० (70 मील) की दूरी से उसके 10 चक्कर लगाये तथा कई फोटोग्राफ और अन्य सूचनाएँ लेकर पुनः 27 दिसम्बर 1968 को भारतीय समय के अनुसार रात्रि 9.21 पर दक्षिणी प्रशान्त महासागर में उतर गया।
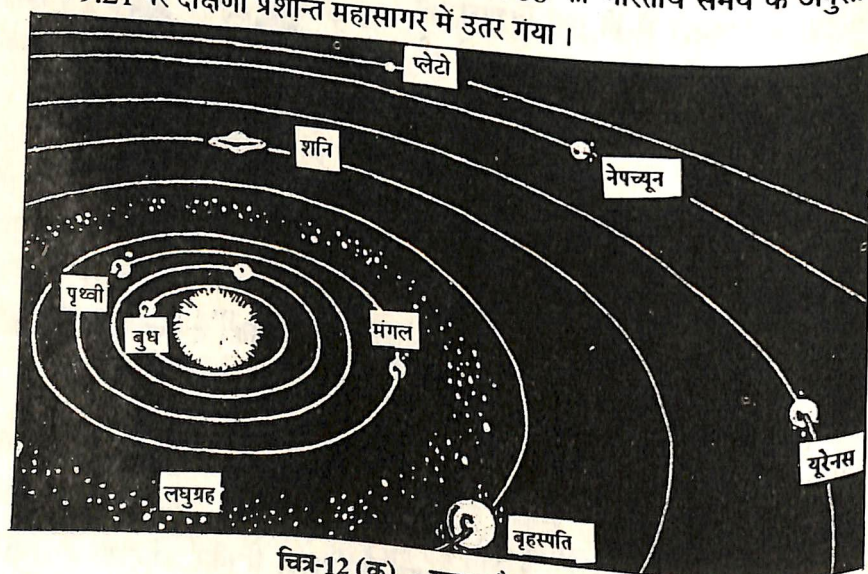
चित्र-12 (क) —हमारा सौर-मण्डल

इस पृथ्वी पर मानव की सबसे बड़ी उपलब्धि है कि वह चन्द्रमा के धरातल पर अपने कदम रख सके तथा पुनः सुरक्षित पृथ्वी पर लौट कर वहाँ की आँखों देखी जानकारी दे सके। चन्द्रमा पर मानव को भेजने में कई कठिनाइयाँ थी। सबसे बड़ी कठिनाई थी मार्ग में अल्ट्रावायलेट किरणें, कॉस्मिक किरणें, विद्युन्मय अणु (Ions) तथा उल्काएँ आदि। अन्य बाधाएँ थी ऊँचा तापमान, वायुमण्डल का अभाव, जहरीली गैसें आदि। किन्तु मानव साहस, तकनीकी प्रगति एवं उपयुक्त जानकारी से मनुष्य ने इन सभी चुनौतियों का सामना करके दिनांक 21 जुलाई 1969 को चन्द्रमा के धरातल पर अपना पहला कदम रख ही दिया जिसे सुनकर दुनियाँ आश्चर्यचकित रह गई। इस धरातल पर कदम रखने वालों में थे **नील आर्मस्ट्रोंग** तथा **एलाविन एल्ड्रिन** जो अमरीकी 'अपोलो -11' यान में सवार हो कर गये तथा वहाँ का अध्ययन कर तथा मिट्टी आदि के नमूने लेकर पुनः दिनांक 24 जुलाई 1969 को सकुशल पृथ्वी पर लौट आये। यह इस सम्पूर्ण सृष्टि काल की सबसे बड़ी घटना थी जो इस शताब्दी में घटी। इससे ब्रह्माण्ड के कई नये रहस्यों का पता लगेगा जिससे मानव अगली खोज में अपने चरण बढ़ा सकेगा।

(चन्द्रमा की कलाएँ, सूर्य एवं चन्द्रग्रहण तथा ज्वार-भाटे का वर्णन अलग अध्याय में किया गया है।)

मंगल (Mars)

मंगल ग्रह इस पृथ्वी का पड़ौसी ग्रह है। आकाश में यह लाल वर्ण का दिखाई देता है। इसका पता भारतीयों को प्राचीन काल से था। पुराणों में इसे 'महिसुत' कहा गया है। यह आकार में पृथ्वी से छोटा है। इसका व्यास 6768 कि०मी० (4230 मील) ही है जो हमारी पृथ्वी का आधा है। यह सूर्य से 22 करोड़ 64 लाख कि०मी० (14 करोड़ 15 लाख मील) तथा पृथ्वी से 5,42,65,600 कि०मी० (3 करोड़ 39 लाख 16 हजार मील) दूर है। यह अपनी धुरी पर 25 घंटे (24 घंटे, 37 मिनिट, 22.6 सेकण्ड) में घूम जाता है तथा 24 कि०मी० (15 मील) प्रति सेकण्ड की गति से चलकर 687 दिन में सूर्य की परिक्रमा कर लेता है। सूर्य की परिक्रमा में जब यह पृथ्वी के समीप आता है तो पृथ्वी से इसकी दूरी 7 करोड़ 20 लाख कि०मी० होती है। यह ग्रह अपनी धुरी पर 25 अंश झुका हुआ है। पृथ्वी और मंगल 15-16 वर्ष में सबसे नजदीक आ जाते हैं। ये दोनों 1939 ई० में पास आये थे, फिर 11 सितम्बर 1954 को आये तथा इसके बाद 9 अगस्त 1971 को समीप आये। छोटा ग्रह होने से इसका गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी का 1/3 ही है। इसमें पदार्थ राशि भी कम है। इसका विपलायन वेग भी 5 कि०मी० प्रति सेकण्ड है।

इस ग्रह पर वायुमण्डल कम घना है किन्तु इस पर ऑक्सीजन और जल वाष्प होने के प्रमाण मिले हैं तथा बादल भी दिखाई देते हैं। यहाँ सर्दी-गर्मी की ऋतु भी होती है। दिन का तापमान 10 डिग्री से० (50 डिग्री फ०) से ऊपर नहीं जाता किन्तु रात्रि का तापमान हिमांक से नीचे ही रहता है। यहाँ वर्षा नहीं होती है। यहाँ गर्मी में विषुवतरेखा पर तापमान 30.5 से० तक पहुँच जाता है तथा जाड़े में ध्रुवों का तापक्रम -87 डिग्री से० से ऊपर नहीं जाता। यहाँ वायुमण्डल की गहराई 96 कि०मी० (60 मील) के लगभग मानी गई है। वायुमण्डल में कुछ ऑक्सीजन, कुछ कार्बन-डाई-आक्साइड, हीलीयम, ऑरगन, जैनन आदि गैसे भी हैं।

इस ग्रह पर कुछ धारियाँ दिखाई देती हैं, कहीं-कहीं हरे रंग के चिन्ह दिखाई देते हैं तथा दोनों ध्रुवों पर सफेद और चमकीले भाग दिखाई देते हैं जो ऋतु के अनुसार छोटे-बड़े होते रहते हैं। इन्हें देखकर इटली के खगोल शास्त्री **शायापरेली** ने 1877 ई० में घोषित किया कि उसने मंगल ग्रह पर नाले देखे हैं। बाद में ज्ञात हुआ कि ये नाले नहीं नहरें हैं जिससे अनुमान लगाया गया कि यहाँ प्राणी रहते हैं, यहाँ वनस्पति भी है। यह ग्रह शीघ्र .ठंडा हो गया होगा जिससे इसका विकास भी जल्दी हुआ होगा। इस पर मनुष्यों का जन्म भी पहले हुआ होगा। यहाँ अधिक बुद्धिमान् प्राणी रहते होंगे। फसलों को पानी देने के लिए इन्होंने ध्रुवों से नहरें निकाली होंगी। कुछ खगोल-शास्त्री इन रेखाओं को दरारें मानते हैं किन्तु ये अधिक सीधी हैं जिससे दरारें नहीं हो सकती। ध्रुवों पर सफेद धब्बे सम्भवतः बर्फ है जिनसे नहरों में पानी आता है। एरीजोना प्रान्त (यू०एस०ए०) की **लापेल वेधशाला** से किये गये निरीक्षणों से भी पता चला कि ये नहरें जल-मार्ग हैं जो ध्रुवों के पानी को ले जाती हैं। इनके आधार पर वैज्ञानिकों को विश्वास है कि इस ग्रह पर जन-जीवन है। 14 जुलाई 1965 को अमेरिका का एक अंतरिक्ष यान 'मोरिनर -4' मंगल के समीप होकर गुजरा। इसने 8000 कि०मी० की दूरी से कई चित्र भी लिये। यह यान 28 नवम्बर 1964 ई० को छोड़ा गया था जो 8 माह बाद वहाँ पहुँचा। इन चित्रों के आधार पर ज्ञात हुआ कि वहाँ पर्वतों का अभाव है तथा धरातल समतल रेगिस्तान है। जन-जीवन के कोई आसार दिखाई नहीं देते।

इस ग्रह के दो उपग्रह या चन्द्रमा हैं। एक का नाम 'फोबोस' और दूसरे का नाम 'डाइमोस' है। इनका पता 1877 ई० में अमेरिका निवासी **आसफहाज** ने लगाया था। योरोप में मंगल (Mars) को युद्ध का देवता माना जाता है जिसके दो कुत्ते हैं जिनका नाम 'फोबोस' और 'डाइमोस' है। इन्हीं के आधार पर इनका नाम रखा गया। 'फोबोस' का व्यास 16 कि०मी० है। यह मंगल से 5920 कि०मी० दूर है तथा

करीब 8 घंटे (7 घंटे 39 मिनिट) में इसकी परिक्रमा करता है। 'डाइमोस' का व्यास 8 कि०मी० है। यह मंगल से 20,000 कि०मी० दूरी में घूमता हुआ 30 घंटे 20 मिनिट में इसका चक्कर लगाता है। इनमें 'फोबोस' पश्चिम से उदय होकर 4.5 घंटे बाद पूर्व में अस्त हो जाता है तथा 'डाइमोस' पूर्व में उदय होकर 2 दिन व 2 रात आकाश में रहकर पश्चिम में अस्त हो जाता है। इनमें कलाएँ भी दिखाई देती हैं। 'फोबोस' मंगल के समीप होने से वहाँ सूर्य ग्रहणं भी दिखाई देता है किन्तु कभी भी खग्रास नहीं होता। 'डाइमोस' का ग्रहण 2 मिनिट रहता है जबकि 'फोबोस' का 19 सेकण्ड ही रहता है।

अवान्तर ग्रह (Asteroids)

मंगल से आगे बृहस्पति ग्रह है किन्तु इन दोनों के बीच का अन्तर 56 करोड़ कि०मी० (35 करोड़ मील) है जो अन्य ग्रहों की दूरी की अपेक्षा बहुत अधिक है। 17वीं शताब्दी में **केपलर** ने यह बताया कि इनके बीच में कोई ग्रह अवश्य होना चाहिए तथा गणितीय हिसाब लगाकर उसने सिद्धान्तानुसार उस ग्रह को मंगल से 16 करोड़ कि०मी० की दूरी पर स्थापित भी कर दिया।

जर्मनी के प्रसिद्ध खगोल-शास्त्री **बोडे** ने ग्रहों की दूरी के बारे में एक नियम बनाया। उसके अनुसार भी मंगल और बृहस्पति के बीच एक ग्रह अवश्य होना चाहिए। उसने उसका स्थान भी निश्चित कर दिया। 1 जनवरी 1801 में **पियाजी** नामक एक खगोल-शास्त्री ने दूरबीन से इसी निश्चित स्थान पर एक सितारा देखा। फिर ज्ञात हुआ कि यह चलता भी है। इसका नाम 'सेरेस' रखा जो **केपलर** और **बोडे** के नियमानुसार .ठीक स्थान पर पाया गया। इसका व्यास 770 कि०मी० (480 मील) है। इसके बाद 1802 ई० में दूसरे ग्रह 'पालास' का पता लगा जिसका व्यास 480 कि०मी० (300 मील) है। 1804 में तीसरे ग्रह 'जूनो' का पता चला जिसका व्यास 320 कि०मी० है तथा 1807 ई० में 'वेस्टा' का पता चला जिसका व्यास 400 कि०मी० है। इसके बाद 1845 में पाँचवें ग्रह 'अस्ट्राई' का पता चला, 1847 ई० में 'हेवे' नामक छठवाँ ग्रह भी देखा गया। इस प्रकार इन ग्रहों की संख्या निरन्तर बढ़ती रही। 1870 ई० तक 109 से अधिक ग्रह देखे गये तथा 1890 तक इनकी संख्या बढ़कर 300 से ऊपर पहुँच गई। 1932 ई० में 'अपोलो' ग्रह का पता चला तथा 1936 ई० में 'एडोनिस' का पता चला। आज तक इस प्रकार के 6000 लघु ग्रहों का पता लगाया जा चुका है जिनमें से 1600 की भ्रमण मार्ग की पूरी जानकारी प्राप्त हो चुकी है।

ये सभी छोटे-छोटे पिंड भी अन्य ग्रहों की ही भाँति सूर्य की परिक्रमा करते हैं इसलिए इन्हें 'अवान्तर ग्रह' या 'क्षुद्र ग्रह' कहा जाता है। ये अन्य ग्रहों की अपेक्षा काफी छोटे हैं जिससे काफी समय तक इनकी जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी। इन ग्रहों में कुछ विचित्रताएँ भी दिखाई देती हैं। ये ग्रह छोटे होने के कारण इनका आकर्षण भी कम है। ये मंगल और बृहस्पति के बीच ही रह कर सूर्य की परिक्रमा करते हैं किन्तु इनमें 'इरोस' का भ्रमण मार्ग इतना दीर्घ वृताकार है कि वह कभी सूर्य के बहुत समीप आ जाता है तथा मंगल की कक्षा के भी भीतर घुसकर पृथ्वी के बहुत समीप आ जाता है। उस समय यह पृथ्वी से 2 करोड़ 24 लाख कि०मी० ही दूर रह जाता है। यह ग्रह 1931 में पृथ्वी के समीप आया था, फिर 1975 ई० में आया। 'अपोलो' ग्रह भी पृथ्वी से 1 करोड़ 12 लाख कि०मी० निकट आ सकता है। 'एडोनिस' ग्रह भी इसी प्रकार पृथ्वी से 20 लाख 80 हजार कि०मी० दूर तक आ सकता है। 'हेर्मेस' ग्रह का व्यास 1.6 कि०मी० है। यह भी पृथ्वी से 7 लाख 68 हजार कि०मी० दूर तक आ सकता है तथा कभी यह चन्द्रमा और पृथ्वी के बीच से भी गुजर सकता है। सन् 1949 ई० में एक और लघु ग्रह 'इकारस' का पता लगा। यह भी सूर्य के अधिक समीप आ सकता है। उस समय यह सूर्य से 3 करोड़ 4 लाख कि०मी० दूर रहेगा तथा यह बुध की अपेक्षा सूर्य के अधिक समीप होगा। इसका व्यास 1.6 कि०मी० है। ऐसे करीब 34 ग्रह हैं जो मंगल की कक्षा को पार करके मंगल और पृथ्वी की कक्षा के बीच आते रहते हैं।

इनकी उत्पत्ति के बारे में विद्वानों का मत है कि मंगल और बृहस्पति के बीच कोई बड़ा ग्रह था जिसका विस्फोट होकर टुकड़े-टुकड़े हो गया जो लघु ग्रह बन गये। कुछ का कहना है कि जब अन्य ग्रहों की उत्पत्ति हुई उस समय मंगल और बृहस्पति के बीच जिस पिंड से एक ग्रह बनना चाहिए था वह बृहस्पति के आकर्षण के कारण न बन सका तथा छोटे-छोटे ग्रहों के रूप में घूमता रहा।

ये लघु ग्रह सूर्य से 39 करोड़ 52 लाख कि०मी० (24 करोड़ 70 लाख मील) की दूरी पर हैं। इनका व्यास 16 से 800 कि०मी० तक है।

बृहस्पति (Jupiter)

बृहस्पति का ज्ञान भारतवासियों को आदि काल से था। **'तैत्तिरीय ब्राह्मण'** में इसके जन्म का उल्लेख है, *"बृहस्पति प्रथम जायमानः। तिष्यं नक्षत्रमभिसंभूव॥"* (बृहस्पति प्रथम प्रकट हुआ। यह तिष्य (पुष्य) नक्षत्र के समीप था) महाभारत में भी इसका उल्लेख है।

यह अन्य ग्रहों में सबसे बड़ा है। इसका सार सौर-परिवार के सभी ग्रहों के आकार के दूने से भी अधिक है। इसका व्यास 1,42,000 कि०मी० (88,700 मील) है जो हमारी पृथ्वी के व्यास का 10 गुना है। इसका आयतन भी पृथ्वी से 1312 गुना अधिक है। यह ध्रुवों पर अधिक चपटा है। इसकी ध्रुवीय व्यास एवं विषुवतरेखीय व्यास में 9520 कि०मी० का अन्तर है। इस अधिक चपटेपन का कारण इसकी तीव्र गति है। इसका पिंड पृथ्वी से 317 गुना है तथा घनत्व 1.3 है जबकि पृथ्वी का 5.5 है। यह अन्य तारों से अधिक चमकीला दिखाई देता है। इसके चारों ओर घने बादलों का आवरण है तथा बीच में धारियाँ दिखाई देती हैं जिनका रूप बदलता दिखाई देता है। कुछ गुलाबी पीले रंग की दिखाई देती हैं। इस पर कहीं-कहीं लाल धब्बे भी दिखाई देते हैं। एक बार एक लाल धब्बा 75 वर्ष तक दिखाई दिया था जिसका नाम 'वृहद् रक्त चिन्ह' था जो 48 हजार कि०मी० लम्बा व 11,200 कि०मी० चौड़ा था। इसके धब्बे भूमध्य रेखा पर 9 घंटे 50 मिनिट, 26 सेकण्ड में एक चक्कर लगाते हैं तथा ध्रुवों के पास वाले धब्बे अपने चक्कर में 5 मिनिट अधिक लेते हैं। इसकी सतह पर कोई .ठोस वस्तु नहीं है तथा घनत्व भी कम है जिससे अन्दाज लगाया जाता है कि यह गैसों का बना हो किन्तु बाद में यह गलत सिद्ध हुआ। यहाँ के बादल सम्भवत: जमी हुई कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस के होंगे तथा भीतरी भाग .ठोस होगा जिसके ऊपर बर्फ की मोटी तह जमी है। इसके ऊपर वायुमण्डल है।

इसका तापमान -129 डिग्री से0 (-200 डिग्री फ०) है। वायुमण्डल में एमोनिया, मीथेन और मार्श गैसें हैं जिनकी मोटाई 16 हजार कि०मी० है। इस पर 27 हजार कि०मी० मोटी बर्फ की परत है।

यह ग्रह सूर्य से 77 करोड़, 32 लाख, 80 हजार कि०मी० (48 करोड़ 33 लाख मील) दूर है। इस पर प्राणियों की कोई सम्भावना नहीं है। यह ग्रह इतना विशाल होते हुए भी अपनी धूरीं पर 10 घंटे (9 घंटे 53 मिनिट) में घूम जाता है। इसी तीव्र गति के कारण इसका चपटापन अधिक है। यह सूर्य की परिक्रमा 12 वर्ष (11.86 वर्ष) में लगा लेता है। सूर्य की परिक्रमा में इसकी गति 13 कि०मी० (8.1 मील) प्रति सेकण्ड होती है। इसका विपलायन वेग 60 कि०मी० प्रति सेकण्ड है। बाहरी ग्रह होने से इसमें कलाएँ नहीं दिखाई देती।

उपग्रह—विशालता के कारण इसके 12 उपग्रह या चन्द्रमा है जिनमें से 4 का आकार हमारे चन्द्रमा के बराबर या इससे भी अधिक है। चन्द्रमा की अधिकता से इसमें ग्रहण अधिक लगते हैं। इन चार चन्द्रमाओं को सर्वप्रथम **गेलीलियो** ने अपनी

दूरबीन से 1610 में देखा था। ये हैं 'आइयो' 'युरोपा' 'गेनीमीड' और 'फेलिस्टो' 'आइयो' का व्यास 3696 कि०मी० है जो बृहस्पति का सबसे निकट का उपग्रह है जो इससे 4 लाख 19 हजार कि०मी० दूर है। यह बृहस्पति का चक्कर 1 दिन 18 घंटे 28 मिनिट में लगा लेता है।

दूसरे उपग्रह 'युरोपा' का व्यास 3120 कि०मी० है जो बृहस्पति से 6,66,560 कि०मी० दूर है। यह बृहस्पति का चक्कर 3 दिन 13 घंटे 14 मिनिट में लगाता है।

तीसरा उपग्रह 'गेनीमीड' इससे 10,62,720 कि०मी० दूर है तथा यह बृहस्पति की परिक्रमा 7 दिन 3 घंटे 43 मिनिट में लगाता है। इसका व्यास 5120 कि०मी० है।

चौथा 'केलिस्टो' है जिसका व्यास 5168 कि०मी० है तथा बृहस्पति से 18,70,400 कि०मी० दूर है। यह इसकी परिक्रमा 16 दिन 16 घंटे 32 मिनिट में करता है। पाँचवें उपग्रह 'एमाल्थिया' की खोज 1892 ई० में **बर्नार्ड** ने की थी। यह बृहस्पति से 1,80,160 कि०मी० दूर है। इसका व्यास 240 कि०मी० है तथा बृहस्पति की परिक्रमा 11 घंटे 57 मिनिट में लगाता है।

इनके बाद 1904 ई० से लेकर 1951 ई० तक 7 और उपग्रहों का पता लगाया गया जिनका व्यास 24 कि०मी० से 160 कि०मी० तक है। इनमें से चार उपग्रह ऐसे हैं जो अन्य उपग्रहों से विपरीत 'घड़ी की दिशा' (Clock wise) में घूमते हैं।

शनि (Saturn)

शनि ग्रह का ज्ञान प्राचीन भारतीयों को था। पहले सौर-मण्डल की सीमा शनि ग्रह तक ही मानी जाती थी। इसकी सूर्य से दूरी 1,41,88,47,480 कि०मी० (88 करोड़, 67 लाख, 79 हजार 900 मील) है। अधिक दूरी के कारण इसका तापमान -151 डिग्री से० (-240 डिग्री फ०) रहता है। इस पर सघन वायुमण्डल है जिसमें अमोनिया और मीथेन जैसी जहरीली गैसें हैं तथा चारों ओर बादलों की 25600 कि०मी० गहरी तह है। इस पर प्राणियों की कोई सम्भावना नहीं है।

पृथ्वी की ही भाँति इसके दोनों ध्रुव चपटे हैं। इसका व्यास पृथ्वी के व्यास का 9.5 गुना है। इसका विषुवतरेखीय व्यास 1,20,000 कि०मी० तथा ध्रुवीय व्यास 1,07,200 कि०मी० है। यह ग्रह पानी से भी हल्का है। इसका घनत्व 0.7 है। इसका विपलायन वेग 35.2 कि०मी० प्रति सेकण्ड है। इसका आयतन पृथ्वी से

700 गुना है किन्तु गैस तौल में पृथ्वी का 95 गुना ही है। इसका गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी के बराबर ही है।

यह ग्रह अपनी धुरी पर 10 घंटे 14 मिनिट में घूम जाता है तथा सूर्य की परिक्रमा 29.5 दिन में पूरी करता है। इसकी इस मन्द गति के कारण ही इसका नाम 'शनैःचर' अथवा 'शनिश्चर' रखा गया। भारतीय ज्योतिषी इसे अशुभ ग्रह मानते हैं। यह एक राशि पर 2.5 वर्ष रहता है तथा आगे और पीछे की राशियों को भी प्रभावित करता है। इस प्रकार 7.5 वर्ष तक यह अपना कुप्रभाव दिखाता है। इस ग्रह पर भी बृहस्पति के समान धारियाँ दिखाई देती हैं।

शनि ग्रह में एक और विचित्र बात दिखाई देती है। वह है उसके 'वलय' (Rings)। दूरबीन से देखने पर इसके चारों ओर 'वलय' दिखाई देते हैं। इन्हें
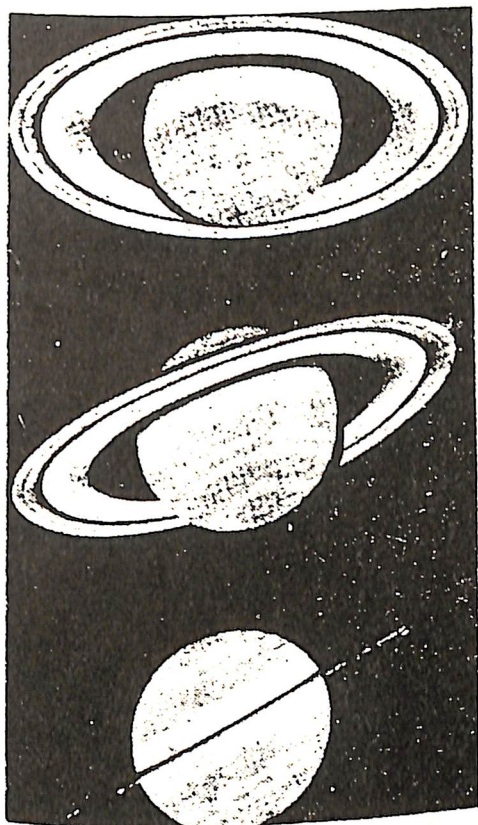
चित्र-13—शनि के वलय

सबसे पहले **गेलीलियो** ने 1610 ई० में देखा था। अठारहवीं शताब्दी में **लाप्लेस** ने बताया कि यह वलय .ठोस नहीं हो सकता। यह असंख्य वलयों का समूह होगा।

1857 ई० में **मेक्षवेज** ने सिद्ध किया कि यह वलय छोटे-छोटे रोड़ों का समूह हो सकता है। शनि के चारों ओर तीन वलय हैं। ये वलय कभी चौड़ी रेखा में तथा कभी लम्बी पट्टी के रूप में दिखाई देते हैं। ये छोटे-छोटे लघु चन्द्रों के बने हैं जिनका आकार नींबू के समान है। कुछ इससे भी छोटे हैं। ये सूर्य प्रकाश को अधिक प्रतिबिम्बित करते हैं। सम्भवतः ये किसी उपग्रह के टूटने से बने होंगे। भीतरी वलय 18400 किलोमीटर चौड़ा है तथा उसके और ग्रह के बीच की दूरी 14,400 कि०मी० है। बीच वाला वलय 25,600 कि०मी० चौड़ा है तथा भीतरी और मध्य वलय के बीच की दूरी 4800 कि०मी० है। बाहरी वलय 16 हजार कि०मी० चौड़ा है तथा बीच में 4800 कि०मी० खाली स्थान है। ये तीनों वलय पतले हैं जिनकी मोटाई 16 कि०मी० से अधिक नहीं है। ये वलय जब घूमते हैं तो 7 वर्ष बाद इनका दक्षिणी पक्ष पृथ्वी की ओर झुक जाता है तथा 14 वर्ष बाद फिर ये खड़े दिखाई देते हैं। सन् 1952 ई० में पता लगा कि शनि के बाहर एक चौथा वलय और है।

उपग्रह—शनि के 9 उपग्रह या चन्द्रमा है। 1905 ई० में **पिकरिंग** ने 10वें चाँद का भी पता लगाया जिसका नाम 'टेमिस' रखा किन्तु उसके बाद वह दुबारा देखा नहीं गया। ये उपग्रह सम्भवतः किसी बड़े चन्द्रमा के अधिक समीप आने के कारण उसमें तीव्र ज्वार उत्पन्न हुआ जिससे उसके खण्ड-खण्ड होने से ये बने हैं। ये नौ चन्द्रमा हैं—मीमांस, एलसेलाड्स, टोथिस, डायने, री, टायटन, हाइपेरियन, जेपेटस और फोबे। इनका विवरण निम्न प्रकार है—

क्र०	नाम उपग्रह	खोज का वर्ष	व्यास कि०मी० में	ग्रह से दूरी कि०मी० में	परिक्रमण की अवधि
1	मीमांस	1789 ई०	640	1,84,000	22 घंटे 37 मिनिट
2	एलसेलाड्स	1789 ई०	800	2,36,800	8 " 53 "
3	टोथिस	1684 ई०	1280	2,92,800	2 दिन 21 घंटे 18 मिनिट
4	डायने	1684 ई०	1600	3,74,400	2 " 17 " 4 "
5	री	1672 ई०	1760	5,23,200	4 " 12 " 25 "
6	टाइटन	1655 ई०	4160	12,14,400	15 " 12 " 41 "
7	हाइपेरियन	1848 ई०	480	14,72,000	21 " 6 " 38 "
8	जेपेटस	1671 ई०	2400	35,36,000	79 " 7 " 56 "
9	फोबे	1894 ई०	320	1,28,54,400	550 दिन

इन उपग्रहों में 'फोबे' सबसे छोटा उपग्रह है तथा यह अन्य ग्रहों के विपरीत दिशा (घड़ी की दिशा) में घूमता है।

अरुण (Uranus)

दूरदर्शी के आविष्कार से पूर्व मनुष्य को शनि ग्रहों तक का ही ज्ञान था जो कोरी आँख से दिखाई देते थे। भारत में प्राचीन काल में सूर्य और चन्द्रमा को भी ग्रह माना जाता था किन्तु पृथ्वी को ग्रह नहीं मानते थे। इस प्रकार उस समय 7 ही ग्रह माने जाते थे तथा 'राहु' और 'केतु' को भी ग्रह मानकर 9 ग्रह माने जाते थे। किन्तु वैदिक आर्यों को इन तीनों ग्रहों (अरुण, वरुण और यम) का ज्ञान था जिनका नाम 'अर्यमा', 'वरुण' और 'क्रत' का वेदों में उल्लेख है। बाद में सन् 1781 ई० तक यह कल्पना भी नहीं की गई थी कि शनि के बाद भी कोई ग्रह हो सकता है किन्तु 13 मार्च सन् 1781 ई० को **हर्सेल** ने सर्वप्रथम इस ग्रह का पता लगाया। **हर्सेल** इंग्लेण्ड का निवासी था। उसे 'सर' की पदवी मिली तथा 200 पौंड प्रतिवर्ष के वेतन पर राज्य ज्योतिषी बना दिया गया। उसकी मृत्यु सन् 1822 ई० में हुई। अरुण सूर्य से 2,85,28,00,000 कि०मी० दूर है। इसका व्यास 46,880 कि०मी० है तथा घनत्व 1.4 है जो पृथ्वी से कम है। इसका आयतन पृथ्वी से 64 गुना है। इसका प्रकाश पृथ्वी पर 3 घंटे में पहुँचता है। इसके धरातल का क्षेत्रफल भी पृथ्वी से 16 गुना है। पृथ्वी के समान ही यह ध्रुवों पर चपटा है। यह अपनी धुरी पर 10.75 घंटे (10 घंटे, 42 मिनिट) में घूम जाता है तथा सूर्य की परिक्रमा 84 वर्ष में पूर्ण करता है। इसका विपलायन वेग 20.8 कि०मी० प्रति सेकण्ड है। इस ग्रह का तापमान -190 डिग्री से० से भी नीचे रहता है। इसकी सतह पर 9600 कि०मी० **मोटी** बर्फ की पर्त है तथा इस पर 4800 कि०मी० मोटा वायुमण्डल है। वायुमण्डल में मीथेन, अमोनिया तथा हाइड्रोजन गैसों की प्रधानता है। इस पर प्राणियों की कोई संभावना नहीं है। इस ग्रह पर भी धारियाँ दिखाई देती हैं। इसकी धूरी 98 अंश के कोण पर झुकी हुई हैं जिससे यह लुढ़कते हुए फुटबाल जैसा घुमता है। इस ग्रह पर सूर्य तथा सभी उपग्रह पश्चिम में उदय होते हैं तथा पूर्व में अस्त होते हैं। (यह पूर्व से पश्चिम को घूमता है)

उपग्रह—इस ग्रह के 5 उपग्रह हैं जो निम्न प्रकार हैं—

क्र०	नाम उपग्रह	खोज का वर्ष	व्यास कि०मी० में	ग्रह से दूरी कि०मी० में	परिक्रमा का समय दिन	घंटे	मिनिट
1	मीरांडा	1948	320	1,29,600	1	9	56
2	एरियल	1851	960	1,90,400	2	12	29
3	अम्ब्रियल	1851	640	2,65,600	4	3	28
4	टिटानिया	1787	1600	4,35,200	8	16	56
5	ऑबेरान	1787	1440	5,80,400	13	11	7

वरुण (Neptune)

वरुण की खोज में ज्योतिर्विदों को अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। अरुण की खोज के बाद गणितीय नियमों के अनुसार उसकी कक्षा स्थिति में अन्तर दिखाई दिया जिससे गणितज्ञों को विश्वास हो गया कि अरुण के आगे भी कोई ग्रह होना चाहिए जो इसकी कक्षा को विचलित कर रहा है। सर्वप्रथम इसका पता फ्रांस के **लेपेरियर** तथा जर्मनी के **एडसन** ने लगाया तथा 23 सितम्बर 1846 ई० में **गालो** (जर्मनी) ने इसे खोज निकाला।

इस ग्रह का व्यास 44320 कि०मी० है तथा यह सूर्य से 4 अरब, 46 करोड़, 80 लाख किलोमीटर दूर है। यह अपनी धूरी पर 16 घंटे (15 घंटे 48 मिनिट) में घूम जाता है तथा सूर्य की परिक्रमा 165 वर्ष (164.75 वर्ष) में पूरी करता है। इसका घनत्व 1.6 है। यह नारंगी के समान चपटा है।

इसका तापमान -218 डिग्री से० से कम है। इस पर 960 कि०मी० मोटी बर्फ की पर्त है तथा उस पर 3200 कि०मी० वायुमण्डल है जिसमें मीथेन की प्रधानता है। थोड़ी हाइड्रोजन और हीलियम गैसें भी पाई जाती हैं। यह दूरदर्शी से हरे रंग का दिखाई देता है।

उपग्रह—इसके दो उपग्रह है—'ट्राइटन' और 'निरीड', 'ट्राइटन' का व्यास 4800 कि०मी० है। यह 6 दिन में ग्रह की परिक्रमा कर लेता है। यह परिक्रमा भी उल्टी दिशा (घड़ी की दिशा) में करता है। यह वरुण से 3,55,200 कि०मी० दूर है। इसका पता 1846 में लगा।

इसका दूसरा उपग्रह 'निरीड' है जिसका व्यास 320 कि०मी० है। यह वरुण से 56 लाख कि०मी० दूर है। यह अपने ग्रह की परिक्रमा एक वर्षमें (359 दि) में पूरी करता है। इसका पता **कुईपर** ने 1949 ई० में लगाया। इसकी कक्षा बहुत तिरछी है।

यम या कुबेर (Pluto)

सभी ग्रहों के विषय में वैज्ञानिकों का मत है कि इनकी उत्पत्ति सूर्य से हुई है किन्तु यम की उत्पत्ति संदिग्ध है। कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि 'यम' किसी अन्य सौर-मण्डल का सदस्य था किन्तु सूर्य की परिधि में आने से यह इसका सदस्य बन गया। एक प्रकार से यह सूर्य का 'दत्तक पुत्र' है। इस ग्रह का पता लगाने का श्रेय **पर्सिवल लावेल** को है। लावेल ने देखा कि अरुण की भाँति वरुण भी अपनी कक्षा में गणितीय नियमों के अनुसार नहीं घूम रहा है तथा उसकी कक्षा में अन्तर पड़ता है तो

उसको विश्वास हो गया कि इसकी कक्षा के बाहर भी कोई अन्य ग्रह होना चाहिए जो इसकी कक्षा को विकृत कर रहा है। अपने विश्वास के अनुसार **लावेल** 1905 ई० में इसकी खोज में लग गये। गणना के अनुसार **लावेल** ने यह निश्चय किया कि यह ग्रह सूर्य से 4 अरब मील की दूरी पर होना चाहिए तथा कुछ अजीब मार्ग से सूर्य की परिक्रमा 282 वर्ष में लगाता है। इसकी खोज का वृतान्त छप चुका था किन्तु उसने स्वयं इस ग्रह को देखा नहीं था। केवल गणितीय आधार पर इसकी स्थापना की थी। सन् 1916 ई० में **लावेल** की मृत्यु हो गई। लावेल के साथ इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए एरिजोना राज्य (यू०एस०ए०) में **लावेल वेधशाला** की स्थापना की गई तथा अन्य विद्वान् इस कार्य को पूरा करने में लग गये। निरन्तर प्रयत्न के बाद 21 जनवरी 1930 ई० को **टॉम्बे** ने इसका पता लगा लिया।

यह एक छोटा ग्रह है जिसका व्यास 5768 कि०मी० है। यह सूर्य से 5 अरब 92 करोड़ कि०मी० दूर है। यह सूर्य की परिक्रमा 250 वर्षों में लगा लेता है। यह अपनी धुरी पर 6 दिन 9 घंटे में घूम जाता है। इसका मार्ग बड़ा अजीब है। कभी-कभी यह ग्रह भ्रमण करता हुआ वरुण की कक्षा में चला जाता है। उस समय यह सूर्य से सबसे निकट रहता है किन्तु वरुण और यम की कक्षाएँ एक दूसरे से 17 अंश का कोण बनाती है जिससे इनके टकराने की कोई सम्भावना नहीं है। वैज्ञानिकों ने यह भी ज्ञात किया है कि यह ग्रह सूर्य के निकट जा रहा है। सन् 1969 ई० में 2009 ई० के बीच यह ग्रह वरुण की कक्षा के भीतर रहेगा तथा 1989 ई० में यह सूर्य से न्यूनतम दूरी पर रहेगा। इसके बाद 2113 ई० में यह सूर्य से अधिकतम दूरी पर रहेगा। **कुईपर** का यह मत है कि यह आरम्भ में वरुण का उपग्रह था।

यह ग्रह पृथ्वी से हल्का है। इसका वजन पृथ्वी का 0.9 है। इसका तापमान -2400 डिग्री से० है। इस पर भी अमोनिया, मिथेन गैसे हैं। इसके उपग्रह का अभी पता नहीं चला है।

दसवाँ ग्रह

अभी तक 'यम' को इस सौर-परिवार का अन्तिम ग्रह माना जाता है किन्तु प्रकाश पृथ्वी पर 5.5 घंटे में आ जाता है जबकि पृथ्वी का निकटतम सितारा 'अल्फा सेंटारी' इससे 4.34 प्रकाश वर्ष दूर है। अतः यम और नजदीकी सितारे के बीच में इतना अधिक खाली स्थान किस प्रकार रह सकता है। सम्भवतः इसके परे और भी कोई ग्रह हो। रूस के वैज्ञानिकों ने 11 फरवरी 1960 ई० को दावा किया था कि मकर राशि के तारक पुंजों का चित्र लेते समय वे अचानक एक ग्रह का पता लगा सके हैं। सन् 1957 ई० में भी मास्को विश्वविद्यालय के छात्र **एडवर्ड वेनीसुक** ने

वैज्ञानिकों का ध्यान इस ग्रह की ओर आकृष्ट किया था। (सौर-मण्डल का विवरण परिशिष्ट 2 में दिया गया है।)

उल्काएँ (Meteorites)

'उल्काएँ' जिनको 'टूटने वाले तारे' भी कहते हैं वस्तुत: तारे नहीं हैं। तारे कभी इस प्रकार टूटते नही तथा वे पृथ्वी से इतने दूर हैं कि ये टूट कर हमारी पृथ्वी पर नहीं गिर सकते। ये 'उल्काएँ' ऐसे छोटे-छोटे पिंड हैं जो अंतरिक्ष में भटकते रहते हैं। ये ठंडे होते हैं तथा जब कभी ये पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में प्रवेश करते हैं तो पृथ्वी के आकर्षण के कारण इनकी गति बढ़ जाती है तथा पृथ्वी की ओर तीव्र गति से बढ़ने लगते हैं। पृथ्वी के ऊपर के वायुमण्डल के सम्पर्क में आने से इनका घर्षण होता है जिससे ये गर्म हो जाते हैं और इनसे गैसें निकलने लगती हैं जिससे इनका प्रकाश पृथ्वी पर पहुँचता है अत: ये गिरती हैं। अधिकांश उल्काएँ मार्ग में ही नष्ट हो जाती हैं तथा इनकी आवाज भी पृथ्वी पर सुनाई देती है। कभी-कभी ये उल्काएँ मार्ग में नष्ट न होकर पृथ्वी पर गिर भी पड़ती हैं, तो यहाँ जोर से भूकंप जैसी ध्वनि होती है किन्तु ऐसा अवसर कम ही आता है। प्राचीन काल में कई देशों में इन उल्काओं को देवताओं का सन्देश वाहक माना जाता था तथा इनकी पूजा की जाती थी। सर्वप्रथम जर्मनी के दार्शनिक **कैल्डनी** ने साइबेरिया में गिरी हुई अनेक उल्काओं का अध्ययन करके बताया कि ये उल्काएँ वायुमण्डल में से गिरी हैं।

हमारे वायुमण्डल में प्रतिदिन करोड़ों उल्काएँ आती हैं जिनकी गति 64 कि०मी० प्रति सेकण्ड होती है। कभी-कभी यह गति बढ़कर 160 कि०मी० प्रति सेकण्ड से ऊपर पहुँच जाती है। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करने में 29 कि०मी० प्रति सेकण्ड की गति से आगे बढ़ रही है जिससे यदि कोई उल्का उसके सामने से पृथ्वी की ओर 64 कि०मी० प्रति सेकण्ड की गति से आती है तो उसकी गति बढ़कर 64 + 29 = 93 कि०मी० प्रति सेकण्ड हो जाती है तथा पृथ्वी के पीछे की ओर से आकर टकराने पर उसकी गति 64 - 29 = 35 कि०मी० प्रति सेकण्ड ही रह जाती है। पृथ्वी के वायुमण्डल में जितनी उल्काएँ प्रवेश करती हैं उनमें से केवल 1% ही प्रकाश के रूप में हमें दिखाई देती हैं। इन उल्का पिंडों में से, यह अनुमान किया गया है कि करीब 240 लाख उल्का पिंड पृथ्वी पर गिरते रहते हैं। इन उल्काओं के गिरने से पृथ्वी का वजन प्रति वर्ष 1 लाख टन बढ़ जाता है किन्तु पृथ्वी के आकार की तुलना में यह इतना कम है कि यदि इसी रफ्तार से ये उल्काएँ गिरती रहीं तो पृथ्वी की सतह को 1 इंच (2.5 सेण्टीमीटर) मोटा होने में करोड़ों वर्ष लग जायेंगे। गुरुत्वाकर्षण के नियम के अनुसार जब पृथ्वी का भार बढ़ता जा रहा है तो उसका

गुरुत्वाकर्षण भी बढ़ता जा रहा है तथा सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करने की अवधि भी बढ़ती जा रही है।

ये उल्काएँ अधिक ऊँचाई से नहीं आती हैं। इनका एक निश्चित क्षेत्र है। ये पृथ्वी से 80 से 112 कि०मी० की ऊँचाई पर पाई जाती हैं तथा निश्चित मार्ग में ही भ्रमण करती हैं। इसे 'उल्का पथ' कहते हैं। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती हुई जब इस उल्का पथ में प्रवेश करती है तो पृथ्वी पर सबसे अधिक उल्का वृष्टि होती है। खोज करने पर ज्ञात हुआ है कि अगस्त और नवम्बर महीने में पृथ्वी इसके मार्ग में होकर गुजरती है और तभी यहाँ सबसे अधिक उल्का वृष्टि होती है। इनमें भी 12 अगस्त और 16 नवम्बर को सबसे अधिक उल्काएँ देखी गई है। नवम्बर सन् 1833 ई० में पृथ्वी पर एक बार इतनी अधिक उल्का वृष्टि हुई कि मध्य रात्रि से सूर्योदय तक करीब 2.5 लाख उल्काओं को गिना गया था। इन उल्काओं से ज्ञात होता है कि शून्य में अपार छोटे-मोटे पदार्थ घूम रहे हैं तथा इन्हीं पदार्थों से उल्काओं का निर्माण हुआ है। पृथ्वी की कक्षा में जिस पथ पर सर्वाधिक उल्काएँ दिखाई देती हैं वहाँ सम्भवत: कोई धूमकेतु था जिसके टूटने से असंख्य कण शून्य में घूम रहे हैं जिससे वहाँ उल्का-पात अधिक होता है। ये उल्काएँ एक ही ब्रह्माण्डीय पिंड से उद्भूत हुई हैं। यह एक छोटा तारा था जो 40 करोड़ वर्ष पूर्व भयंकर टक्कर से टूट गया था जिसके कण उल्काओं के रूप में पृथ्वी पर गिरते रहते हैं। वैज्ञानिकों की यह भी मान्यता है कि सन् 1852 ई० में एक 'बीला' नामक धूमकेतु सूर्य के समीप आकर नष्ट हो गया जिससे आकाश में कई उल्काएँ बिखर गई। पृथ्वी जब इस मार्ग से होकर निकलती है तो भयंकर उल्का वृष्टि होती है।

ये उल्काएँ तीन प्रकार की होती हैं—

(1) कुछ उल्काएँ इतनी छोटी होती हैं कि ये वायुमण्डल के घर्षण के कारण मार्ग में ही टूटकर अदृश्य हो जाती हैं तथा इनका कोई भी भाग पृथ्वी पर नहीं पहुँचता। ऐसी उल्का को 'टूटता तारा' (Shooting Stars) कहते हैं।

(2) दूसरे प्रकार की उल्काएँ वे होती हैं जो मार्ग में नष्ट न होकर पृथ्वी तक पहुँच जाती है उसे 'उल्का प्रस्तर' (Neteorites) कहते हैं। पृथ्वी पर कई बार ऐसे उल्का प्रस्तर गिरे हैं जिनसे काफी क्षति हुई है।

(3) तीसरे प्रकार की उल्काएँ वे होती हैं जो गोल व काफी बड़ी होती हैं किन्तु आकाश में ही फटकर चूर-चूर हो जाती हैं। इन्हें 'अग्नि पिंड' (Fire Balls) कहते हैं। इनके गिरते समय काफी प्रकाश दिखाई देता है।

सामान्यतया इन उल्काओं से कोई हानि नहीं होती। प्राचीन काल में इनका

गिरना अशुभ का चिन्ह माना जाता था तथा किसी राजा या बड़े आदमी की मृत्यु का सूचक माना जाता था। जब कोई उल्का प्रस्तर पृथ्वी पर गिर पड़ता है तो उससे भारी क्षति होती है। एक बार 30 जून 1908 ई० को प्रात: 7 बजे साइबेरिया के येनिशाई प्रान्त में एक अत्यन्त प्रचण्ड उल्का गिरी जिससे भूकम्प जैसी ध्वनि हुई तथा पृथ्वी काँप उठी। इसके गिरने का पता 1927 ई० में लगा। जिस स्थान पर यह उल्का गिरी थी वहाँ घना वन था। उसके आसपास 80 कि०मी० तक सब मकान गिर गये तथा ज्वालामुखी के समान कई गड्ढे बन गये। आसपास की करीब 2560 वर्ग कि०मीं० की भूमि जल गई तथा अनेक मनुष्य व पशु मर गये जिनकी लाशों का भी पता न चल सका। इस उल्का प्रस्तर का वजन 130 टन था। अमेरिका के एरिजोना प्रान्त में एक ऐसा गड्ढा देखा गया जो सम्भवत: प्रस्तर के ही कारण बन गया हो। इस गड्ढे का व्यास करीब 1280 मीटर है तथा इसकी भीतरी दीवारें 174 मीटर ऊँची हैं। इसके आसपास कई छोटे-छोटे उल्का प्रस्तर मिले। इसे गिरे 700 वर्ष हो चुके हैं।

'बाइबल', **'रोमन'** तथा **'चीनी'** ग्रन्थों में भी पत्थर बरसने के वर्णन मिलते हैं। मक्का में भी एक बड़ा उल्का प्रस्तर रखा है जिसकी पूजा होती है। इसी प्रकार के कई उल्का प्रस्तर भारत में भी गिरे थे जो कलकत्ता के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। यहाँ

चित्र-14—उल्का वृष्टि

उल्काओं का संग्रह समस्त एशिया में अद्वितीय है। इस संग्रहालय का सबसे बड़ा टुकड़ा 56 किलोग्राम वजन का है। यह उल्का 30 अगस्त 1920 ई० को इलाहाबाद के समीप गिरी थी। सन् 1930 ई० में फ्रांस में एक बार दो-तीन हजार उल्का प्रस्तर

गिरे थे। इसी प्रकार पोलोण्ड में एक बार एक लाख पत्थर गिरे थे। कहीं-कहीं इन उल्काओं की झड़ी भी दिखाई देती है। सबसे बड़ा उल्का प्रस्तर न्यूयार्क के संग्रहालय में सुरक्षित है जिसका वजन 37 टन है। उत्तरी ध्रुव की खोज करने वाले **एडमिरल पियरी** ने ग्रीनलेण्ड में एक ऐसा ही उल्का प्रस्तर पड़ा देखा जिसका वजन 37 टन था। सन् 1938 ई० में हंगरी के डिवीना स्थान पर एक 11 किलोग्राम की उल्का गिरी थी। यूनान में डायना की मूर्ति इसी उल्का प्रस्तर की बनी हुई है। भारत में उत्तरप्रदेश के जालोन जिले में एक बड़ा उल्का-प्रस्तर गिरा जिसका वजन 2 टन के करीब था।

इन उल्का प्रस्तरों की खोज करने पर ज्ञात हुआ कि इनमें शुद्ध लोहा रहता है तथा कुछ प्रस्तर केवल पत्थर के ही होते हैं। कुछ लोहा और पत्थर दोनों के ही होते हैं। इनमें करीब-करीब वे ही पदार्थ पाये जाते हैं जो पृथ्वी पर मिलते हैं। इनमें 27 तत्त्व पाये जाते हैं जो स्पात से भी कड़े होते हैं।

धूमकेतु या पुच्छल तारे (Comets)

कभी-कभी आकाश में ऐसे सितारे भी दिखाई देते हैं जिनकी लम्बी पूंछ होती है तथा इसमें प्रकाश होता है। इस प्रकार के सितारों को 'पुच्छल तारा', 'केतु', 'धूमकेतु', 'झाड़ू' या 'बढ़नी' आदि कहते हैं। ये धूमकेतु कभी-कभी ही दिखाई देते हैं। प्राचीन काल में भी इन धूमकेतुओं को लोगों ने देखा था। चीन के प्राचीन लेखों से पता चलता है कि ईसा के 240 वर्ष पूर्व 15 मई को एक धूमकेतु उदय हुआ था। इन धूमकेतुओं को प्राचीन काल में किसी अनिष्ट या भारी विपत्ति का कारण माना जाता था। केतु का उदय होना किसी राजा की मृत्यु, महायुद्ध, अकाल, महामारी आदि माना जाता था और संयोग की बात कहिये या और कुछ कई बार ऐसा हुआ भी है। **'महाभारत'** में **व्यास जी** ने धृतराष्ट्र को युद्ध आरम्भ होने की सूचना धूमकेतु के द्वारा ही दी थी। उन्होंने कहा था, *"हे राजन ! कार्तिकी के बाद संग्राम आरम्भ होगा, क्योंकि उस समय महाभयंकर धूमकेतु पुष्य नक्षत्र के पार पहुँचेगा।"* **वराहमिहिर** ने भी छठी शताब्दी में **'वृहत संहिता'** में इन उल्काओं और धूमकेतुओं के कुप्रभावों का वर्णन किया है। सन् 1066 ई० में इंग्लेण्ड में एक धूमकेतु देखा गया और उसी समय **हेराल्ड युवराज** की मृत्यु हुई, सन् 1907 ई० में एक विशालकाय धूमकेतु का उदय हुआ था और उसी वर्ष **किंग एडवर्ड** की मृत्यु हुई, सन् 1913 ई० में एक दूसरा धूमकेतु उदय हुआ और 1914 ई० में प्रथम योरोपीय महायुद्ध छिड़ गया। इन घटनाओं को उद्धृत कर इन्हें अशुभ का चिन्ह माना जाता है। चीन के लोग इन्हें देवताओं का सन्देशवाहक मानते हैं जो भावी संकट की सूचना देने आते हैं किन्तु इन

घटनाओं व वार्ताओं पर वैज्ञानिक विश्वास नहीं करते।

सर्वप्रथम इन धूमकेतुओं का वैज्ञानिक विवेचन 17 वीं शताब्दी में किया गया। इसकी आरम्भिक खोज का श्रेय **एडमंड हेली** को है जिन्होंने 1682 ई० में प्रकट हुए एक धूमकेतु को देखा तथा हिसाब लगाकर बताया कि ये धूमकेतु नियत अवधि के उपरान्त आकाश में बार-बार दिखाई देते हैं। 'हेली' उस समय इंग्लेण्ड के प्रसिद्ध ज्योतिषी थे तथा **ग्रिनविच वेधशाला** के अध्यक्ष थे। उस धूमकेतु के बारे में उन्होंने बताया कि यही केतु पहले भी सन् 1607, 1531, 1456, 1378, 1301, 1145

चित्र-15—धूमकेतु

और 1066 ई० में भी दिखाई दिया था। इससे उसने यह सिद्ध किया कि यह केतु प्रति 75 वर्ष बाद दिखाई देता है। **हेली** ने इसे पहली बार, पहचाना था जिससे उसका नाम 'हेली का धूमकेतु' रखा। इसी गणना के आधार पर उसने भविष्यवाणी की कि यह केतु पुनः सन् 1759 ई० में फिर दिखाई देगा और वास्तव में यह उसी के अनुसार देखा भी गया।

इन धूमकेतुओं में कई तो काफी छोटे होते हैं जो बिना दूरबीन की सहायता के नहीं देखे जा सकते। सन् 1925 ई० तक करीब 900 धूमकेतु देखे गये थे। जिनमें 400 तो दूरबीन के आविष्कार के पूर्व ही देखे गये थे। शेष 16वीं शताब्दी के बाद देखे गये जिनमें प्रसिद्ध 'हेलीकेतु' था जो सन् 1835 ई० तथा 1910 ई० में देखा गया था। यह पुन: नियत अवधि के बाद 1986 ई0 में फरवरी माह में दिखाई दिया। सन् 1910 ई० में दो धूमकेतु दिखाई दिये थे जिनमें एक 'हेलीकेतु' था

ये धूमकेतु भी हमारे सौर-परिवार के सदस्य हैं। ये भी अपनी कक्षा में परिभ्रमण करते हुए कई तो सूर्य का चक्कर लगाकर लौट जाते हैं तथा कई ग्रहों का भी चक्कर लगाते हैं। 18 धूमकेतु बृहस्पति का चक्कर लगाते हैं जिनका भ्रमण काल 6 से 8 वर्ष है। 6 धूमकेतु शनि का चक्कर लगाते हैं। इसी प्रकार अरुण के 3 तथा वरुण के 8 धूमकेतु हैं। वरुण के धूमकेतु का परिक्रमा काल 70-80 वर्ष है। हेलीकेतु को वरुण के परिवार का सदस्य माना जाता है। इन धूमकेतुओं की कक्षा काफी बड़ी होती है जिससे इनका चक्कर कई वर्षों में पूरा होता है। जब ये पृथ्वी के समीप आते हैं तभी दिखाई देते हैं। ये दीर्घवृत्त में न चलाकर 'परिवलय' (Perabola) का मार्ग ग्रहण करते हैं।

केतु के तीन भाग स्पष्ट दिखाई देते हैं—

(1) नाभि या केन्द्र

(2) शिर या मुंड

(3) पूंछ

नाभि में हल्के उल्का प्रस्तर होते हैं तथा उसके चारों ओर हल्की गैस होती है जिससे उसका सिर बनता है। केतु का सिर काफी बड़ा होता है। इसका व्यास पृथ्वी के व्यास से चौगुने से बीस गुने तक होता है। सन् 1811 ई0 में एक केतु दिखाई दिया था जिसके सिर का व्यास 16 लाख किलोमीटर था किन्तु इनकी नाभियाँ 800 से 1600 कि०मी० की ही होती है। जिन धूमकेतुओं का मार्ग लम्बा होता है उनका आकार और चमक भी अधिक होती है। इन केतुओं में सबसे आश्चर्यजनक वस्तु इनकी पूंछ होती है। जब ये धूमकेतु सूर्य के समीप आते हैं तो इनकी पूंछ निकल आती है तथा दूर जाने पर विलीन हो जाती है। केतु की यह पूंछ किसी .ठोस वस्तु की बनी नहीं होती बल्कि छोटे-छोटे रोड़ों का समूह होती है। सूर्य की गर्मी लगने से इनसे प्रकाश व सूक्ष्म धूलि कण निकलते हैं जो बड़े हल्के होते हैं जिनका व्यास 1/10 लाख इंच से भी कम होता है जिससे ये किसी को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकते। इन केतुओं की पूँछ सदा सूर्य के विपरीत दिशा में दिखाई देती है तथा

सूर्य के समीप आने पर इनकी लम्बाई बढ़ती जाती है। इनकी पूँछ बनने के कारणों के विषय में आइन्स्टीन के सिद्धान्त से कुछ स्पष्टीकरण मिलता है। आइन्स्टीन ने प्रकाश को भी पदार्थ माना है। अन्य पदार्थों की भाँति इसमें भी भार होता है तथा यह भी स्थान घेरता है। पदार्थ और प्रकाश एक दूसरे में परिवर्तित हो सकते हैं अत: पदार्थ के सभी गुण-धर्म प्रकाश में भी विद्यमान हैं। प्रकाश के मार्ग में यदि उससे कोई हल्की वस्तु पड़ती है तो वह उसे दूर धकेल देता है। धूमकेतु के पदार्थ प्रकाश से भी हल्के हैं जिनका व्यास 1/10 लाख इंच से भी कम है जिससे प्रकाश के धक्के से ये कण सूर्य से दूर चले जाते हैं। इसी से इनकी पूंछ बनती है। जब ये सूर्य से दूर होते हैं तो इनकी पूंछ इसी में मिल जाती है। इन धूमकेतुओं की पूँछ भिन्न-भिन्न लम्बाई की होती है। सन् 1811 ई० में जो धूमकेतु देखा गया था उसकी पूंछ 20 करोड़ 80 लाख कि०मी० तक लम्बी थी। कभी-कभी यह लम्बाई बढ़कर 32 करोड़ किलोमीटर तक भी हो जाती है किन्तु इसकी चौड़ाई इसकी नाभि से अधिक नहीं होती। यह पूंछ कभी-कभी टेढ़ी भी दिखाई देती है। सामान्यतया पूंछ की लम्बाई 80 लाख कि०मी० होती है। सन् 1774 ई० में एक ऐसा धूमकेतु दिखाई दिया था जिसके छ: पूँछें थी। सन् 1843 ई० में देखे गये एक धूमकेतु की पूँछ 32 करोड़ कि०मी० लम्बी थी। कभी-कभी इन धूमकेतुओं की पूंछ में पृथ्वी आ जाती है किन्तु इससे पृथ्वी पर कोई हानि नहीं होती। सन् 1910 ई० में पृथ्वी 'हेलीकेतु' की पूँछ में पड़ गई थी। कभी-कभी इनका सिर सूर्य के अधिक समीप पहुँच जाता है तो वह पिघल जाता है और टुकड़े बाहर निकल आते हैं। इनकी पूंछ का घनत्व इतना कम होता है कि इनमें से तारे स्पष्ट दिखाई देते हैं। कभी-कभी इनका सिर पृथ्वी से टकरा सकता है उस समय पृथ्वी पर भयंकर उल्का वृष्टि होती है जिससे काफी क्षति होती है। ये धूमकेतु टूट भी जाते हैं। एक 'बीला' नामक धूमकेतु इसी प्रकार सूर्य के पास आकर सन् 1852 ई० में टूट गया था जिससे आकाश में कई उल्काएँ बिखर गई। पृथ्वी जब अपनी कक्षा भ्रमण में इस मार्ग से गुजरती है तब भयंकर उल्का वृष्टि होती है। नवम्बर महीने में अधिकाँश उल्का वृष्टि इसी कारण से होती है।

इन केतुओं का परिक्रमा काल भी काफी लम्बा होता है। 'हेलीकेतु' 75 वर्ष में एक परिक्रमा करता है। 'एंकेज' (Enckes) धूमकेतु 3.5 वर्ष में सूर्य की परिक्रमा कर लेता है। एक अन्य धूमकेतु 'डोनाटी' (Donati) को अपनी परिक्रमा में 200 वर्ष से भी अधिक लगते हैं। कुछ धूमकेतुओं का परिक्रमण काल 70-80 वर्ष का होता है। इस लम्बे मार्ग के कारण ही ये कभी-कभी ही दिखाई देते हैं।

आर्यों का ज्ञान—यदि हम आधुनिक विज्ञान की चकाचौंध से हटकर अपने ही

प्राचीनतम वेद साहित्य को देखें तो उसमें इनका पर्याप्त वर्णन एवं विवेचन मिलता है। इस वैदिक विज्ञान की जानकारी **पं० मधुसूदन ओझा** ने अपने ग्रन्थ **'कादम्बिनी'** में दी है। इसके अनुसार इन धूमकेतुओं की संख्या 1000 है जिनकी 19 जातियाँ हैं। **गर्ग, पाराशर** आदि ऋषियों ने इनका स्वरूप भी बताया है तथा इनसे भी अधिक केतु गिनाये हैं। इनकी पहचान के भी संकेत दिये गये हैं। इनकी जातियाँ व संख्या निम्न प्रकार दी गई हैं—

जातियाँ—किरण, आग्नेय, मृत्युद, पार्थिव, सोमज, ब्रह्मदण्ड, विसर्पक, तस्कर, कौंकुम, कीलक, विकच, कनक, अरुण, विश्वरूप, गणक, ब्रह्मज, कंक,. कबन्ध और विपुल। ये केतुओं की उन्नीस जातियाँ हैं।

संख्या—इन जातियों में धूमकेतुओं की संख्या निम्न प्रकार है—

(1) किरण, आग्नेय और मृत्युद—प्रत्येक 25 होते हैं = 75।

(2) पार्थिव 22, सौम्य 3, ब्रह्मदण्ड 1, विसर्पक 84, तस्कर 51, कौंकुम 60, कलिक 33, कनक 60, पिकच 65, अरुण 77, विश्वरूप 120, गणक 8, ब्रह्मज 204, कंक 32, कबन्ध 96, और विपुल 9 होते हैं अर्थात् 925। इस प्रकार इन जातियों में धूमकेतुओं की कुल संख्या (75 + 925) = 1000 होती है।

इनके स्वरुप का वर्णन करते हुए बताया गया है कि आग्नेय जाति वालों के शिखा नहीं होती, मृत्युद केतु बाँकी शिखा वाले होते हैं, पार्थिव भी बिना शिखा वाले होते हैं, ब्रह्मदण्ड तीन शिखा वाला, कनक केतु दो शिखा वाला, विकच बिना शिखा वाला, कौंकुम तीन शिखा वाला होता है। इनके अतिरिक्त भी केतु होते हैं जिन्हें जल केतु, चल केतु, उर्मि केतु, भट केतु, औद्यालक केतु, पछन केतु, काश्यय केतु, आवर्त केतु, रश्मि केतु इत्यादि कहते हैं। वसा केतु, कुमुद केतु, कपाल केतु, मणि केतु और काली केतु भी क्रम से प्रकट होते हैं।

चल केतु 115 वर्ष बाद, जल केतु 14 से 18 वर्ष बाद, उद्यालक केतु 110 वर्ष बाद, काश्यप केतु 115 वर्ष बाद, रश्मि केतु 100 वर्ष बाद, वसा केतु 130 वर्ष बाद, कपाल केतु 125 वर्ष बाद, रौद्र केतु 300 वर्ष 9 माह बाद, संवर्त केतु 1004 वर्ष बाद प्रकट होता है। इनकी आकृति, रूप, रंग, दिशा, किस नक्षत्र के पास दिखाई देता है आदि का भी वर्णन मिलता है। वैदिक साहित्य के अनुसंधान से कई वैज्ञानिक रहस्य प्रकट हो सकते हैं।

◆:◆:◆

7

ग्रह गतियाँ और उनकी पहचान

स्वच्छ रात्रि में यदि आकाश की ओर देखा जाय तो असंख्य टिमटिमाते हुए तारागण दिखाई देते हैं किन्तु ये सभी एक ही प्रकार के नहीं हैं। इनमें से कई अधिक चमकीले हैं तथा कई कम चमकीले हैं, कुछ पीत वर्ण के हैं, कुछ श्वेत, कुछ रक्त तथा कुछ नील वर्ण के हैं। कुछ ऐसे हैं जो अन्य सितारों के मध्य नियमित गति से निश्चित दिशा में चलते रहते हैं। इन चलने वाले पिंडों को 'ग्रह' कहते हैं तथा स्थिर पिंडों को 'सितारे' कहते हैं। आकाश में सितारों की पहचान आसान है क्योंकि एक बार उनकी आकृति तथा अन्य सितारों के सापेक्ष उनकी स्थिति पहचान लेने से उन्हें किसी भी समय पहचाना जा सकता है किन्तु निरन्तर घूमते रहने के कारण ग्रहों को पहचानना कठिन होता है। यदि आज रात्रि को 9 बजे किसी ग्रह विशेष को सिर पर देखा है तो वह छः महीने बाद कहाँ दिखाई देगा तथा किस समय दिखाई देगा यह बिना उसकी गति का ज्ञान किये देखना कठिन है। ग्रहों की स्थिति को जानने की श्रेष्ठ विधि पंचांग है। कोरी आँख से बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति तथा शनि इन पाँच ग्रहों को देखा जा सकता है।

ग्रहों की गतियाँ

ग्रहों की गतियों का ज्ञान निरन्तर वेध करके प्राप्त किया जाता है। सभी ग्रह नियमित रूप से सूर्य की परिक्रमा घड़ी की उल्टी दिशा में करते हैं। ये कितने समय में परिक्रमा करते हैं यह पहले बताया जा चुका है किन्तु इनकी गति सम नहीं है। सूर्य से दूरी का इनकी गति पर प्रभाव पड़ता है जिससे कभी इनकी गति तेज होती है तथा कभी धीमी सूर्य की सम्पूर्ण प्रदक्षिणा काल को 'भगण' कहते हैं। यह 'भगण' काल इनकी 'मध्यम गति' होती है किन्तु प्रतिदिन की गति इससे भिन्न होती है। उदाहरण के रूप में बृहस्पति 12 वर्ष में सूर्य की परिक्रमा करता है तो एक वर्ष में 30 अंश ही चलेगा अर्थात् 1 दिन में उसकी गति 5 कला ही होगी (60 कला की 1 अंश होती है) यह उसकी मध्यम गति है। किन्तु कभी यह 5 कला से भी अधिक चल जाता है यानि 15 कला भी चल जाता है तथा कभी 1 कला प्रतिदिन ही चलता है।

दूसरा प्रभाव पृथ्वी का पड़ता है। हम पृथ्वी के सापेक्ष इनकी गतियों को देखते हैं जो स्वयं सूर्य की परिक्रमा कर रहा है इससे जब दोनों विपरीत दिशा में होते हैं तो ये तीव्र गति से भागते दिखाई देते हैं तथा सूर्य के एक ही ओर होने पर पृथ्वी आगे

निकल जाती है जिससे सितारों के सापेक्ष में पूर्व की ओर जाते हुए भी पश्चिम में जाते दिखाई देते हैं। पंचांगों में इसे 'वक्री गति' (Retrograde motion) कहते हैं। वास्तव में कोई भी ग्रह 'वक्री' (उल्टा जाता नहीं है) होता नहीं किन्तु पृथ्वी की गति के कारण उल्टा जाता दिखाई देता है। इसे 'आभासी गति' (Apparent motion) कहते हैं। अन्य समय में जब ये सितारों के मध्य पश्चिम से पूर्व की ओर जाते दिखाई देते हैं तो इनकी गति 'मार्गी गति' (Direct motion) कहते हैं। इस कारण से भारतीय ज्योतिषियों ने इस आभासी गति के अनुसार इन ग्रहों की आठ प्रकार की गतियाँ निर्धारित की हैं—वक्र, अनुवक्र, विकला, शीघ्र, शीघ्रतर, मन्द, मन्दतर तथा समासम। किन्तु पंचांगों में मार्गी तथा वक्री दो ही गतियों का उल्लेख मिलता है। इससे यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि कोई ग्रह पूर्व में चलता हुआ वापस पश्चिम में कैसे चलने लग गया। वह पश्चिम में चलता नहीं है। किन्तु पृथ्वी की पूर्व गति के कारण वह सितारों के सापेक्ष पश्चिम में जाता दिखाई देता है। भारतीय पंचांग इसी आभासी गति के कारण उसे 'वक्री' कहते हैं। इन गतियों के आधार पर किसी ग्रह की तारों के मध्य स्थिति स्पष्ट की जाती है। मध्यम गति द्वारा लाई हुई स्थिति को 'मध्यम स्थिति' कहते हैं तथा आकाश में ग्रहों की जो स्पष्ट स्थिति दिखाई देती है उसे 'स्पष्ट स्थिति' कहते हैं। इस स्पष्ट स्थिति के आधार पर ही उन्हें आकाश में पहचाना जा सकता है। यह पंचांगों में दी होती है तथा गणित से भी इसे ज्ञात किया जा सकता है।

भारतीय गणनानुसार सूर्य और ग्रहों की दैनिक मध्यम गति निम्न प्रकार है—

क्र०	सूर्य एवं ग्रह	अंश	कला	विकला	प्रविकला	पराविकला
1	सूर्य	0	59	8	10	21
2	चन्द्र	13	10	34	35	0
3	बुध	4	5	32	18	9
4	शुक्र	1	36	7	44	35
5	मंगल	0	31	26	28	7
6	बृहस्पति	0	4	59	9	9
7	शनि	0	2	0	22	51
8	अरुण	0	0	42	13	48
9	वरुण	0	0	21	31	48
10	यम	0	0	14	12	12

(60 पराविकला = 1 प्रविकला। 60 प्रविकला = 1 विकला। 60 विकला = 1 कला। 60 कला = 1 अंश।)

ग्रहों की स्पष्ट गति उनका अपनी कक्षा में भ्रमण तथा पृथ्वी के परिभ्रमण दोनों का ही परिणाम है। इनके भ्रमण के कारण ये ग्रह पृथ्वी से भिन्न-भिन्न स्थितियों में दिखाई देते हैं, जिनके भिन्न-भिन्न नाम दिए गए हैं। जब कोई ग्रह, सूर्य और पृथ्वी की सीध में होता है तो उस स्थिति को 'युति' (Conjunction) कहते हैं। जब कोई ग्रह सूर्य से परे होता है तो उसकी 'दूर संयुति' (Superior Conjunction) होती है तथा जब वह पृथ्वी और सूर्य के मध्य होता है तो उनकी 'निकट संयुति' (Inferior Conjunction) होती है। निकट संयुति में केवल भीतरी ग्रह (बुध और शुक्र) ही आते हैं अन्य दूर के ग्रह केवल 'दूर संयुति' में ही आते हैं। किन्तु जब वे पृथ्वी से सूर्य की विपरीत दिशा में होते हैं तो उसे 'युद्ध' (Opposition) की स्थिति क़ही जाती है। भीतरी ग्रह कभी इस स्थिति में नहीं आते। जब वे ग्रह पृथ्वी तथा सूर्य की सीध में न होकर किसी कोण पर होते हैं तो इसे 'कोणियान्तर अवस्था' (Elongation) कहते हैं। जब किसी दूर ग्रह का 'कोणियान्तर' 90 अंश होता है। तब वह ग्रह अपनी 'समकोणियान्तर अवस्था' (Quadeature) में कहा जाता है। यह अवस्था दूर ग्रहों की ही होती है। भीतरी ग्रहों की 'पूर्वीय' अथवा 'पश्चिमी कोणियान्तर अवस्था' होती है। जब कोई ग्रह पृथ्वी के निकटतम होता है तो उसे 'शीघ्रोच्च' (Perigee) तथा दूरतम होने पर 'मंदोच्च' (Apogee) कहते हैं।

ग्रहों का उदयास्त

ग्रहों की गति के कारण जब इनकी सूर्य के साथ 'युति' होती है तो वे नहीं दिखाई देते जिससे उन्हें 'अस्त' माना जाता है। जब ये घूमते हुए पुनः सूर्य से कुछ दूरी पर हो जाते हैं तो पुनः दिखाई देने लगते हैं। इन्हें ग्रहों का 'उदय' कहते हैं। कभी ये ग्रह सूर्यास्त के बाद पश्चिम में तथा कभी सूर्योदय से पहले पूरब में दिखाई देते हैं। पृथ्वी की परिक्रमा के कारण सितारों की भी सूर्य के साथ युति होती है जिससे वे भी उदय और अस्त होते हैं। भारतीय फलबित ज्योतिष में इन उदयास्त का विशेष महत्व है। शुक्र और बृहस्पति के अस्त होने पर धार्मिक कृत्य नहीं होते। ग्रहों के उदय और अस्त होने के लिए आवश्यक है सूर्य और ग्रह के नित्योदय काल में निश्चित अन्तर हो। इस अन्तर के कम होने पर वह ग्रह अस्त माना जाता है तथा अधिक होने पर उसे उदय माना जाता है।

प्राचीन ज्योतिषियों ने भिन्न-भिन्न ग्रहों के लिए यह परिणाम भिन्न-भिन्न निश्चित किया है। उदाहरणार्थ बृहस्पति और सूर्य के निष्पोदयस्त में 110 पहर (44 मिनट) का अन्तर पड़ने पर बृहस्पति का उदयास्त होता है। इस 44 मिनट के उदयास्त में अन्तर का कारण है कि इस स्थिति में वह सूर्य से 11 अंश दूर हो जाता है। इसी

प्रकार अन्य ग्रहों का उदयास्त निम्न अन्तर पर होता है—

क्र०	ग्रह	अंश	क्र०	ग्रह	अंश
1	चन्द्रमा	12^0	4	बृहस्पति	11^0
2	मंगल	17^0	5	शुक्र	9^0
3	बुध	13^0	6	शनि	15^0

ग्रहों का उदयास्त पंचांगों में दिया रहता है किन्तु इस अन्तर पर उनका दिखाई देना आवश्यक नहीं है। ग्रहों का दिखाई देना उनकी तेजस्विता, स्थलभेद, वायुमण्डल की स्वच्छता संधि प्रकाश (Twilight) की अवधि, चन्द्र प्रकाश, क्षितिज के समीप की रक्तिम आभा, दृष्टा की मन्द व तीक्ष्ण दृष्टि, मेघों की उपस्थिति आदि का भी प्रभाव पड़ता है।

ग्रहों की 'युति'

सभी ग्रहों की कक्षा की लम्बाई भिन्न-भिन्न होने से ये **सूर्य** की परिक्रमा भिन्न-भिन्न अवधि में पूरी करते हैं। किन्तु साथ ही पृथ्वी के भी गतिमान होने के कारण उनकी 'युति' का समय लम्बा हो जाता है। जैसे **बुध** का परिक्रमा काल 44 दिन है किन्तु इस अवधि में पृथ्वी अपनी कक्षा में आगे निकल जाने के कारण इसकी 'संयुति' 116 दिन है किन्तु इसकी 'संयुति' 584 दिन बाद होती है। **मंगल** का परिक्रमण काल 687 दिन है, इसकी 'संयुति' 771 दिन बाद होती है। **बृहस्पति** का परिक्रमा काल 12 वर्ष है। यह प्रतिवर्ष एक राशि का अतिक्रमण करता है। सन् 1953 ई० में यह वृष राशि में कृतिका नक्षत्र के समीप था तथा पुनः 1965 ई० में इसी नक्षत्र के समीप आ गया। इसके बाद यह 1977 ई० में आया फिर 1989 ई० में आया। इस समय अप्रैल 1992 ई० में यह सिंह राशि में था, जिसमें उसने 17 अगस्त 1991 को प्रवेश किया था।

शनि मन्द गति ग्रह है। इसका परिक्रमण काल 29.5 वर्ष है। यह 2.5 वर्ष में एक राशि का अतिक्रमण करता है। 1956 ई० में यह धनु राशि में था फिर 1966 ई० में यह मीन राशि में था। मार्च 1967 ई० में यह मेष राशि में आया। इस समय 10 अप्रैल 1992 ई० को यह मकर राशि में 22 अंश पर है।

दृश्य ग्रहों की पहचान

जो ग्रह कोरी आँख से दिखाई देते हैं उन्हें आकाश में अन्य सितारों एवं राशियों के मध्य उनकी स्थिति को ज्ञात करके पहचाना जा सकता है। इसके लिए

पंचांग देखकर उनकी स्थिति ज्ञात करना चाहिए।

इन ग्रहों को पहचानने के लिए सर्वप्रथम पंचांग से उसकी स्थिति ज्ञात करिये कि वह किसी राशि में कितने अंश पर चमक रहा है। इसके बाद तारामण्डलों के मानचित्र संख्या 1,2,3,4 में उस राशि को देखिये कि वह किस स्थान पर है। इस मानचित्र के नीचे तिथियाँ लिखी हुई हैं जिनसे ज्ञात हो सकता है कि अमुक राशि किस तारीख को रात्रि को 9.00 बजे याम्योत्तर रेखा पर होती है। उस तारीख के अनुसार उस राशि को देखकर उसमें उस ग्रह की स्थिति ज्ञात की जा सकती है।

इन ग्रहों को पहचानने कि लिए निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

(1) बुध—यह ग्रह बहुत छोटा है तथा उसकी चमक भी बहुत कम है। यह सूर्य से अधिक समीप रहने के कारण आसानी से नहीं पहचाना जा सकता। पहले पंचांग देखकर यह ज्ञात करना चाहिए कि सूर्य और उसके राशि योग में कितना अन्तर है। जब यह अन्तर 15 अंश हो तो उस समय इसे पूर्व या पश्चिम में केवल आधा घंटे के लिए देखा जा सकता है। अधिक से अधिक इसका राशि योग का अन्तर 28 अंश ही होता है तथा सामान्यता 23 अंश होता है।

(2) शुक्र—यह ग्रह बड़ा तेजस्वी ग्रह है। यह आकाश में सबसे चमकीला दिखाई देता है। इसका वर्ण श्वेत है। यह सूर्योदय से पूर्व अथवा सूर्यास्त के बाद दो घंटे तक दिखाई दे सकता है। सूर्य से इसका अधिकतम अन्तर 30 अंश तक होता है। इसका सूर्य से राशि योग अन्तर 45 अंश तक होता है। यह सूर्य से 9 अंश दूर होने पर ही दिखाई देने लगता है।

(3) मंगल—यह लाल रंग का ग्रह है। यह भी तेजस्वी दिखाई देता है। सूर्य और इसके राशि योग में 17 अंश का अन्तर होने पर यह दिखाई देता है।

(4) बृहस्पति—यह भी काफी तेजस्वी ग्रह है। यह सूर्य से 11 अंश दूर होने पर दिखाई देता है।

(5) शनि—यह कुछ नीले रंग का दिखाई देता है। यह कम तेजस्वी है किन्तु इसके रंग के कारण इसे पहचाना जा सकता है।

ग्रहों की युतियाँ

घूमते हुए ग्रह कभी-कभी एक दूसरे से अधिक समीप आ जाते हैं। ग्रहों के इस सान्निध्य को 'युति' या 'योग' कहते हैं। युति की अवस्था में इनका पूर्व पश्चिम अन्तर नहीं रहता, उत्तर दक्षिण अन्तर रह सकता है अर्थात् ये एक ही देशान्तर या याम्योत्तर रेखा पर आ जाते हैं। जब दो ग्रहों के बिम्ब परस्पर स्पर्श कर लेते हैं तो

उसे 'उल्लेख' कहते हैं तथा परस्पर मिल जाने को 'भेद' कहते हैं । ऐसी स्थिति बहुत ही कम आती है । **प्रथम आर्यभट्ट** के सिद्धान्तानुसार वर्तमान कलियुग के आरम्भ में सब ग्रह एक स्थान पर थे । उनका मध्यम योग शून्य (0 अंश) था । किन्तु **ब्रह्मगुप्त** तथा **द्वितीय आर्यभट्ट** के अनुसार ये ग्रह केवल कल्पारंभ में ही एक स्थान पर आते हैं । कलियुग के आरम्भ से ये तीन चार अंशों के भीतर रहते हैं ।

वर्तमान कलियुग का आरम्भ ईसा के 3101 वर्ष पूर्व माना जाता है जिसके 3 अप्रेल 1992 ई० (चैत्र कृष्णा अमावस्या संवत् 2048 ई० तक) तक 5092 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं । कलियुगारम्भ में सभी ग्रह रेवती नक्षत्र के पास थे किन्तु ये एक सीधी रेखा में नहीं थे । पृथ्वी से देखने पर ये 15 अंश के अन्तर पर थे । योरोप के प्रसिद्ध ज्योतिषी **वेली** ने उल्टी गणना करके यह घोषणा की कि ईसा से 3102 वर्ष पूर्व 20 फरवरी को 2 बजकर 27 मिनिट और 30 सेकण्ड पर ग्रहों की यह दशा थी तभी से कलियुग का आरम्भ हुआ । यह काल महाभारत काल था । (इसका विशेष विवरण 'कालगणना' अध्याय में दिया गया है ।)

8

राशि चक्र (Zodiac Circle)

स्वच्छ रात्रि में आकाश की ओर देखने पर अनगिनत तारे दिखाई देते हैं किन्तु इनको ध्यानपूर्वक देखने पर ज्ञात होता है कि इनमें से कई सितारे समूह में दिखाई देते हैं जिनकी विशेष प्रकार की आकृति बनती है। ऐसे तारा समूहों को 'तारा समूह' 'तारा पुंज' या 'तारा मण्डल' (Constellations) कहते हैं। इन सितारों द्वारा बनाई गई विशेष प्रकार की आकृतियों के आधार पर इनके विशेष नाम रख दिये गये हैं। सितारों का इस प्रकार समूहों में बाँटकर अध्ययन करने से इनको पहचानने में सुविधा होती है। इस प्रकार से अध्ययन करने का कार्य प्राचीन काल से किया जा रहा है।

सर्वप्रथम उत्तरी अक्षांशों पर दिखाई देने वाले 48 तारामण्डलों की सूची **टॉलमी** ने तैयार की थी तथा इनके प्रकाशवान सितारों का नामकरण भी किया था। 17वीं शताब्दी में **बायर** नामक पाश्चात्य ज्योतिषी ने प्रकाश के अनुसार ग्रीक वर्णमाला के अक्षरों में उनका नामकरण किया। इन असंख्य तारों में विशिष्ट तारामण्डलों को उनकी आकृति तथा पारम्परिक स्थिति से ही पहचाने जा सकते हैं। इनकी आकृतियाँ परिचित पशु-पक्षी तथा अन्य देवी-देवताओं के नामों के आधार पर निश्चित कर इनके वैसे ही नाम दिये गये हैं। भारत में तथा पाश्चात्य देशों में इनका सम्बन्ध पौराणिक कथाओं से भी जोड़ा गया जिससे लोक जीवन में इनको स्थान मिला।

टॉलमी की सूची के बाद वाले ज्योतिर्विदों ने कई संशोधन कर 88 तारामण्डल माने जिनको प्रत्येक देश में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। भारतीय ज्योतिष ग्रन्थों में यद्यपि इन तारामण्डलों की स्पष्ट सूची नहीं मिलती किन्तु पौराणिक कथाओं के आधार पर तथा अन्य प्राप्त ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि भारतीयों को इन तारामण्डलों का अच्छा ज्ञान था जिनका पौराणिक कथाओं में विशेष स्थान दिया गया। जिन तारामण्डलों का ज्ञान आधुनिक समय में हुआ है उनके नाम पाश्चात्य ही हैं। उनके भारतीय नाम नहीं मिलते। नामकरण की यह परम्परा भारत तथा पाश्चात्य देशों में काफी समानता लिये हुए है जिससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में भी ज्योतिष शास्त्र का पूर्व व पश्चिम देशों के मध्य आदान-प्रदान हुआ है।

इन समस्त तारामण्डलों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—राशियाँ और अन्य तारामण्डल तथा इनमें पाये जाने वाले सितारों के भी दो वर्ग किये जा

सकते हैं—नक्षत्र और अन्य सितारे। इनका अलग-अलग अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है जिनकी आकृति तथा स्थिति का ज्ञान प्राप्त करके इन्हें आकाश में पहचाना जा सकता है।

राशियों का विभाजन

पृथ्वी की सूर्य की परिक्रमा के कारण सूर्य जिस मार्ग से सितारों के मध्य पश्चिम से पूर्व की चलता दिखाई देता है उस मार्ग को 'क्रान्ति वृत्त' कहते हैं। सूर्य इस पूरे क्रान्ति वृत्त का चक्कर एक वर्ष में पूरा कर लेता है। भारतीय ज्योतिषियों ने इस पूरे 'क्रान्ति वृत्त' (360 अंश) को 12 भागों में विभक्त किया है। इस प्रत्येक भाग को 'राशि' कहा गया है जो 30 अंश की होती है जिसको सूर्य अपनी मध्यम गति से एक माह में पार करता है। ये राशियाँ पश्चिम से पूर्व की ओर मानी गई है तथा इनका आरम्भ स्थान मेष राशि है। प्रत्येक 30 अंश के कोण के मध्य कुछ विशेष तारासमूह इस 'क्रान्ति वृत्त' में पड़ते हैं जिनकी विशेष प्रकार की आकृति के आधार पर इन राशियों का नामकरण किया गया।

इन राशियों के भारतीय एवं पाश्चात्य नाम निम्न प्रकार हैं—

क्र०	राशि	पाश्चात्य नाम	क्र०	राशि	पाश्चात्य नाम
1	मेष	Aries	2	वर्ष	Taurus
3	मिथुन	Gemini	4	कर्क	Cancer
5	सिंह	Leo	6	कन्या	Virgo
7	तुला	Libra	8	वृश्चिक	Scorpio
9	धनु	Sagittarius	10	मकर	Capricornus
11	कुंभ	Acquarius	12	मीन	Pisces

संक्रान्ति

पृथ्वी की वार्षिक गति के कारण सूर्य प्रतिमाह भिन्न-भिन्न राशियों में दिखाई देता है। जब सूर्य एक राशि को पार करके दूसरी राशि में प्रवेश करता है तो उसे 'सक्रान्ति' (संक्रमण) कहते हैं। जैसे 'मकर संक्रान्ति' का अर्थ है सूर्य ने मकर राशि में प्रवेश किया है। प्रत्येक राशि 30 अंश की होती है जिसमें सूर्य एक माह रहता है। पृथ्वी की परिक्रमा के कारण सूर्य प्रतिदिन 1 अंश पश्चिम से पूर्व की ओर चलता दिखाई देता है। इसी प्रकार 'तुला संक्रान्ति' का अर्थ है सूर्य ने कन्या राशि को पार करके तुला राशि में प्रवेश किया है। इस प्रकार बारह राशियों की 12 संक्रान्तियाँ होती हैं। ये संक्रान्तियाँ अंग्रेजी मास के मध्य में पड़ती हैं जैसे—

1	मेष	13	अप्रैल	2	वृष संक्रान्ति	14	मई
3	मिथुन संक्रान्ति	15	जून	4	कर्क संक्रान्ति	16	जुलाई
5	सिंह संक्रान्ति	17	अगस्त	6	कन्या संक्रान्ति	17	सितम्बर
7	तुला संक्रान्ति	17	अक्टूबर	8	वृश्चिक संक्रान्ति	16	नवम्बर
9	धनु संक्रान्ति	15	दिसम्बर	10	मकर संक्रान्ति	14	जनवरी
11	कुंभ संक्रान्ति	12	फरवरी	12	मीन संक्रान्ति	14	मार्च
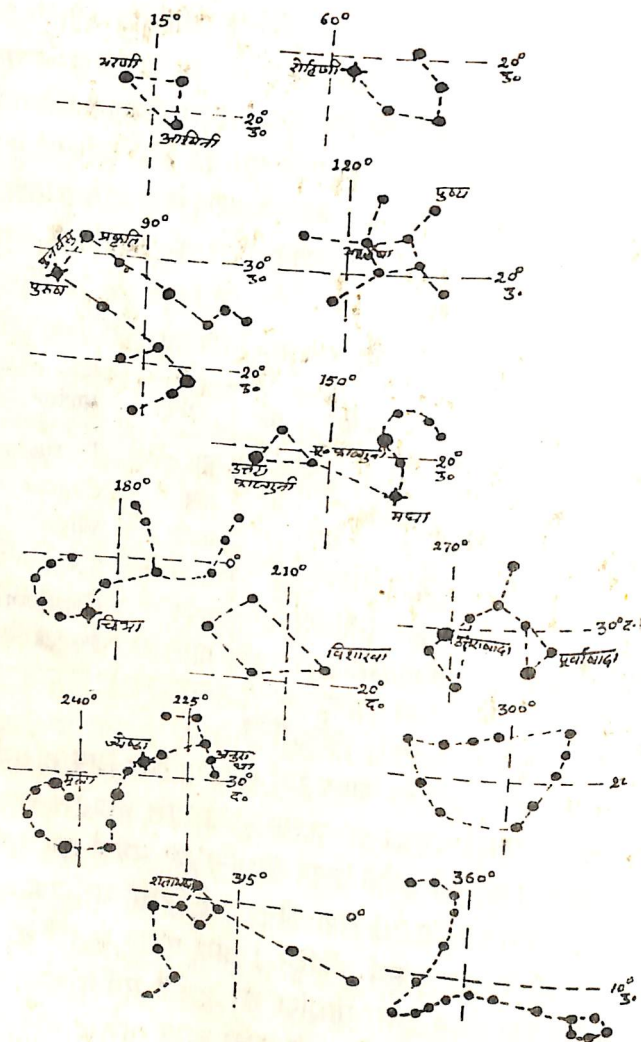
चित्र-16—राशि की आकृतियाँ

मकर संक्रान्ति—14 जनवरी को सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है। राशियों की दृष्टि से इसी राशि से सूर्य का उत्तरायण होना माना जाता है। इस संक्रान्ति का भारत में विशेष महत्व है। सूर्य के उत्तरायण की स्थिति में शरीर त्याग करने पर पुनर्जन्म नहीं होता ऐसी मान्यता है। भीष्म पितामह को इसी कारण महाभारत युद्ध की समाप्ति पर सूर्य के उत्तरायण की स्थिति के लिए दो सप्ताह तक शर-शैया पर पड़ा रहकर प्रतीक्षा करनी पड़ी। **स्कन्द पुराण** के अनुसार 'मकर संक्रान्ति' के दिन हमारी पृथ्वी सूर्य से अलग हुई। इसी कारण इसे सृष्टि सम्वत् मानकर विशेष रूप से मनाते हैं। भारतीय पंचांगों के अनुसार इस समय (1992 ई० तक) 1,95,58,85,0,93 वर्ष सृष्टि की आयु के व्यतीत हो चुके हैं। इसका विशेष वर्णन 'कालगणना' में किया गया है।

राशियों की पहचान

आकाश में राशियों की पहचान के लिए निम्न बातों की पूर्व जानकारी आवश्यक है—

(1) राशि की आकृति—सभी 12 राशियाँ भिन्न-भिन्न आकृति वाली है। इनकी आकृति के अनुसार ही इनके नाम पशु-पक्षियों, जानवरों आदि के नाम से रखे गये हैं। चित्र-17 में प्रत्येक राशि की आकृति दी गई है जिसे देखकर इन्हें आकाश में देखा जा सकता है। देखें चित्र- **16** राशियों की आकृतियाँ।

(2) राशियों का स्थान—ये राशियाँ मेष से आरम्भ होकर मीन तक हैं। प्रत्येक राशि 30 अंश के कोण की दूरी पर पश्चिम से पूर्व की ओर दिखाई देती है। किसी एक राशि को आकाश में देखकर उसके 30 अंश के कोण की दूरी पर पूर्व या पश्चिम में अन्य राशियों को देखा जा सकता है। जैसे सिंह राशि मध्य आकाश में दिखाई दे रही है तो कन्या राशि इसके पूर्व में 30 अंश के कोण पर दिखाई देगी तथा 60 अंश पूर्व में तुला राशि होगी किन्तु 30 अंश पश्चिम में कर्क राशि तथा 60 अंश पश्चिम में मिथुन राशि होगी। इस प्रकार एक साथ पाँच राशियाँ देखी जा सकती हैं। ये सभी राशियाँ सूर्य के 'क्रान्ति वृत्त' के आसपास ही हैं किन्तु सीधी पूर्व-पश्चिम रेखा पर नहीं है। प्रथम छः राशियाँ (मेष, वृष, मिथुन, कर्क और सिंह तथा मीन राशि) विषुवत रेखा से 30 अंश उत्तरी अक्षांश के मध्य हैं तथा शेष पाँच (तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ) विषुवत रेखा से दक्षिण में हैं। इनमें वृश्चिक तथा धनु राशियाँ 40 अंश दक्षिणी अक्षांश तक फैली है। बाकी की 30 अंश दक्षिणी अक्षांश के मध्य ही है। अतः इनकी अक्षांशीय स्थिति देखकर हमारी अक्षांशीय स्थिति के आधार पर इनका स्थान निश्चित कर लेना चाहिए कि ये हमारे शिरोबिन्दु से कितने अंश उत्तर या दक्षिण
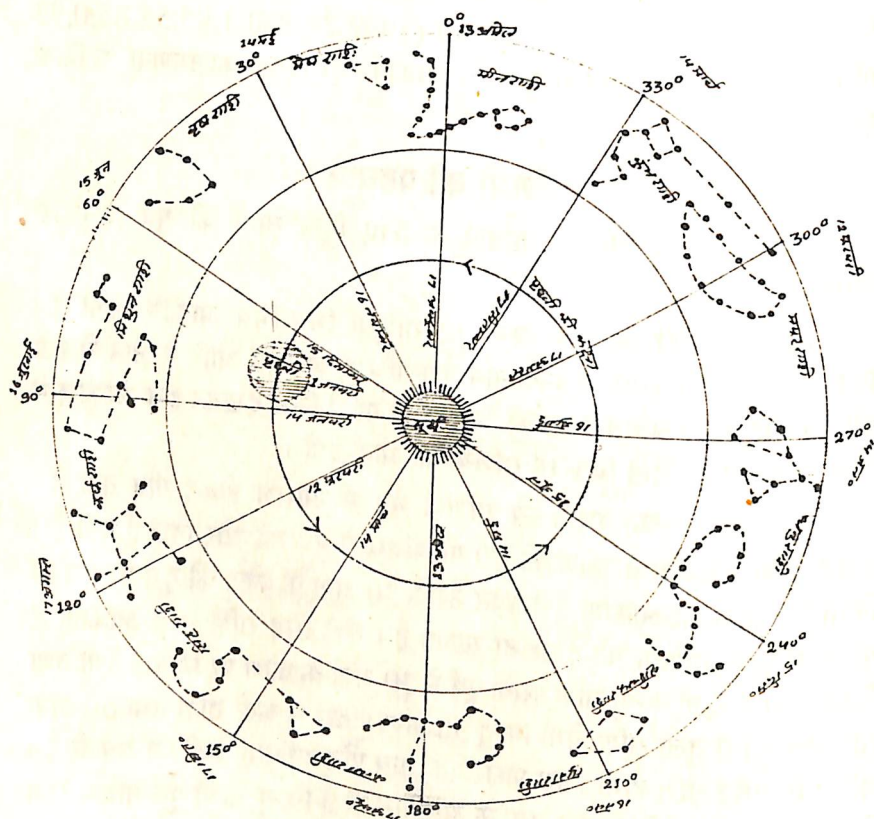
चित्र-17—राशि चक्र

में दिखाई देगी। उदाहरण के रूप में कोई व्यक्ति उदयपुर से इन राशियों को देखता है तो वह 24.5 अंश उत्तरी अक्षांश पर खड़ा है। उसे मेष, कर्क, सिंह राशि सिर पर दिखाई देगी। किन्तु वृश्चिक तथा धनु राशि 55 अंश दक्षिण में दिखाई देगी। इसी प्रकार अन्य अक्षांशों से इनकी उत्तर-दक्षिण स्थिति ज्ञात करके देखना चाहिए।

(3) देखने का समय—राशियों के देखने का समय भी ज्ञात होना चाहिए कि कौन सी राशि किस समय दिखाई देगी। उसी समय आकाश में देखने पर वह राशि वहीं दिखाई देगी। पृथ्वी की दैनिक गति के कारण सभी राशियाँ पूर्व में उदय होकर पश्चिम में अस्त होती ज्ञात होती है। चूँकि 24 घंटे में 12 राशियों का उदयास्त हो जाता है अतः प्रत्येक राशि 2 घंटे बाद उदय होती है। यदि कोई राशि सिर पर दिखाई दे रही है तो दो घंटे बाद उसके आगे की राशि सिर पर आ जाएगी तथा वह राशि पश्चिम की ओर चली जाएगी। उदाहरण के तौर पर यदि रात्रि 9 बजे सिंह राशि सिर पर दिखाई दे रही है तो 11 बजे कन्या राशि सिर पर आ जायेगी, 1 बजे तुला राशि तथा 3 बजे वृश्चिक राशि सिर पर होगी। इस प्रकार एक ही राशि में 9 राशियाँ आसानी से देखी जा सकती हैं तथा एक ही समय में 5 राशियाँ देख सकते हैं।

(4) सूर्य एवं चन्द्रमा की स्थिति—राशियों को देखने के लिए पहले यह ज्ञात कर लेना चाहिए कि उस समय सूर्य किस राशि में है। यह 'संक्रान्ति' से ज्ञात किया जा सकता है। सूर्य जिस राशि में चमक रहा है वह तथा उसके आसपास की दो राशियाँ उसके प्रकाश के कारण नहीं दिखाई देगी। उसके आगे की राशियाँ क्रमशः पश्चिम से पूर्व की ओर 30-30 अंश के कोण पर दिखाई देंगी। उदाहरण के रूप में यदि आप 15 अप्रैल को राशियाँ देख रहे हैं तो उस दिन सूर्य मेष राशि में है। तो आपको मीन और वृष राशियाँ नहीं दिखाई देंगी। किन्तु सूर्यास्त के बाद मिथुन राशि पश्चिम में दिखाई देगी, सिंह राशि सिर पर होगी, वृश्चिक राशि पूर्व में उदय हो रही होगी। रात्रि को 12 बजे तुला राशि सिर पर आ जायेगी। इसी प्रकार कुंभ राशि सूर्योदय से पूर्व दिखाई देगी। इस प्रकार अन्य राशियों का समय ज्ञात करके देखना चाहिए।

सूर्य के साथ-साथ चन्द्रमा की स्थिति का भी ध्यान रखना चाहिए। यदि चन्द्रमा आकाश में है तो कुछ राशियों के सितारे कम चमकीले होने से नहीं दिखाई देंगे। अतः अँधेरी रात्रि में ही इन्हें देखना चाहिए। शहर से बाहर तथा किसी पहाड़ी पर चढ़कर यदि इन्हें देखा जाए तो ये अधिक साफ दिखाई देंगी।

(5) मानचित्र से स्थिति ज्ञात करना—मानचित्र की सहायता से इन राशियों को आकाश में देखकर पहचानना आसान हो जाता है। मानचित्र के अध्ययन के लिए

निम्न ब्रातों की जानकारी आवश्यक है—

(i) ये राशियाँ मध्य आकाश में ही दिखाई देती हैं। मध्य आकाश का मानचित्र 4 भागों में दिया गया है—शीत, बसन्त, ग्रीष्म तथा पतझड़ ऋतुओं में दिखाई देने वाले तारामण्डल इनमें दिखाये गये हैं। प्रत्येक में 90 अंश देशान्तर का क्षेत्र आता है। मानचित्र पृष्ठ 108 से 111 तक देखें।

(ii) मानचित्र में जो खड़ी रेखाएँ हैं वे देशान्तर रेखाएँ हैं जिन्हें 'याम्योत्तर रेखाएँ' (Meridians) कहते हैं। ये रेखाएँ उत्तर-दक्षिण रेखाएँ हैं जो दर्शक के सिर से होकर गुजरती हैं। इनका आरम्भ स्थान मेष राशि से है जिसे 0 अंश देशान्तर कहते हैं। भारतीय ज्योतिष के अनुसार यहीं से राशियों एवं नक्षत्रों की गणना आरम्भ होती है।

(iii) ये रेखाएँ पश्चिम से पूर्व की ओर 15-15 अंश के अन्तर पर उत्तर-दक्षिण की ओर खींची गई हैं। 30-30 अंश के बीच का भाग एक 'राशि' कहलाता है जैसे 0 अंश से 30 अंश तक मेष, 30 अंश से 60 अंश तक वृष आदि जो मानचित्र के नीचे लिखा है। एक मानचित्र में 3 राशियाँ दिखाई गई हैं। इस प्रकार चारों मानचित्रों में मिलकर 12 ही राशियाँ आ जाती हैं। इस 30 अंश का पूरा भाग एक राशि माना जाता है जिसे उस विशेष तारामण्डल की सहायता से पहचाना जा सकता है।

(iv) पृथ्वी की दैनिक गति के कारण ये सभी राशियाँ 24 घंटे में एक बार इस याम्योत्तर रेखा का उल्लंघन करती हैं अर्थात् प्रति 2 घंटे में नई राशि याम्योत्तर रेखा पर आ जाती है। जैसे आज रात्रि को 9 बजे मिथुन राशि याम्योत्तर रेखा पर है तो 11 बजे कर्क राशि याम्योत्तर पर आ जाएगी। मानचित्र में 15-15 अंश के अन्तर पर याम्योत्तर रेखाएँ दी गई हैं जो एक-एक घंटे के अन्तर को प्रकट करती हैं।

(v) चित्र के नीचे प्रत्येक माह की तारीखें दी गई हैं। इन्हीं तारीखों पर इसके ऊपर की देशान्तर रेखा रात्रि को 9.00 बजे याम्योत्तर रेखा होगी। उस समय इस रेखा पर दिखाई देने वाली राशियाँ याम्योत्तर रेखा पर दिखाई देगी। उदाहरण के रूप में यदि आप इस मानचित्र को 21 अप्रैल को देख रहे हैं तो इस तारीख को रात्रि 9 बजे 'सिंह राशि' याम्योत्तर रेखा पर यानि आपके सिर के ऊपर दिखाई देगी।

(vi) यदि आप 21 अप्रैल को अन्य राशियाँ भी देखना चाहते हैं तो प्रत्येक 15 देशान्तर पर एक घंटे के अन्तर से पूर्व की ओर की राशियाँ याम्योत्तर रेखा पर दिखाई देगीं। जैसे 21 अप्रैल के 9 बजे सिंह राशि सिर पर है, 11 बजे कन्या राशि, 1 बजे तुला राशि, 3 बजे वृश्चिक राशि याम्योत्तर पर आ जाएगी। इसी प्रकार अन्य राशियाँ देखी जा सकती हैं।

(vii) याम्योत्तर रेखा से इनकी पूर्व पश्चिम स्थिति तो जानी जा सकती है किन्तु इनकी उत्तर-दक्षिण स्थिति का ज्ञान अक्षांश रेखाओं की सहायता से किया जाता है। जहाँ आप खड़े हैं वहाँ इस याम्योत्तर रेखा पर आपके सिर के ऊपर का स्थान 'शिरो बिन्दु' (Zenith) कहलाता है तथा जहाँ पृथ्वी और आकाश मिलते हुए दिखाई देते हैं उसे 'क्षितिज' (Horizon) कहते हैं। उक्त तिथियों में दिखाई गई राशियाँ याम्योत्तर रेखा पर तो होती हैं किन्तु ये आपके शिरोबिन्दु से उत्तर या दक्षिण में भी हो सकती है। इस उत्तर-दक्षिण स्थिति का ज्ञान अक्षांश रेखाओं द्वारा किया जा सकता है। आप जिस शहर से देख रहे हैं पहले उस स्थान का अक्षांश परिशिष्ट-1 (अ,ब) से ज्ञात करिये। यह अक्षांश आपका शिरोबिन्दु है। फिर मानचित्र में जिस राशि को आप देखना चाहते हैं वह किस अक्षांश पर है यह मानचित्र में देखिये। इन दोनों के बीच के अन्तर के अनुसार ही यह आपके शिरोबिन्दु से उत्तर या दक्षिण में दिखाई देगी। उदाहरण के रूप में आप उदयपुर 24.5 अंश उत्तरी अक्षांश से सिंह राशि को देखना चाहते हैं तो यह 21 अप्रैल को आपके सिर पर ही दिखाई देगी किन्तु वृश्चिक राशि 21 जुलाई को आपके शिरोबिन्दु से 24.5 + 30 = 54.5 अंश दक्षिण में दिखाई देगी। ज्येष्ठा नक्षत्र 15 जुलाई को 54.5 अंश दक्षिण में दिखाई देगा। इसी प्रकार अपने स्थान का अक्षांश देखकर इनकी उत्तर-दक्षिण स्थिति ज्ञात करनी चाहिए।

(viii) इन मानचित्रों में दाहिनी ओर पश्चिम तथा बाँई ओर पूर्व दिशा दी गई है। मानचित्र के ऊपर उत्तर तथा नीचे की ओर दक्षिण है। इस मानचित्र को अपने सिर के ऊपर उल्टा करके इस प्रकार रखिये कि इनकी रेखाएँ पृथ्वी की दिशाओं के अनुरूप आ जाये। आप अपना मुँह उत्तर या दक्षिण में उस तरफ रखिये जिस तरफ की राशियाँ देखनी हो तथा आप जिस अक्षांश पर खड़े हैं उस अक्षांश को अपना शिरोबिन्दु मानकर उसके अनुसार उत्तर-दक्षिण की राशियाँ देखिये। ये उसी स्थान पर दिखाई देंगी।

(ix) इन राशियों को देखने के लिए मध्य आकाश के चार मानचित्र का उपयोग करें जो पृष्ठ 108 से 111 तक दिये गये हैं।

(x) मानचित्र में दी गई तिथियों के अलावा अन्य तिथियों या अन्य समय में देखने पर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पृथ्वी की वार्षिक गति के कारण सभी सितारे प्रतिदिन 4 मिनिट पहले ही याम्योत्तर रेखा पर आ जाते हैं। जैसे आज रात्रि को 9 बजे वृष राशि का रोहिणी नक्षत्र याम्योत्तर रेखा पर दिखाई दे रहा है तो दूसरे दिन वह 8.56 पर ही उस रेखा पर आ जाएगा। इसका भी ध्यान रखना चाहिए।

मानचित्र-18—शीत ऋतु के तारामण्डल (1)

मानचित्र-19—बसन्त ऋतु के तारामण्डल (2)

मानचित्र-20—ग्रीष्म ऋतु के तारामण्डल (3)

मानचित्र-21—पतझड़ ऋतु के तारामण्डल (4)
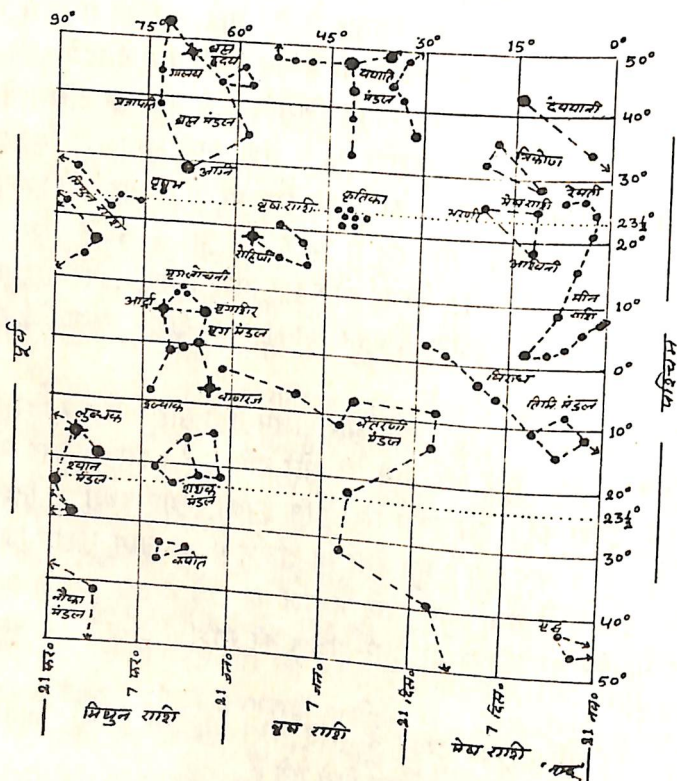
राशियों की पहचान

इन बातों का ध्यान रखकर पहले मानचित्र में उस राशि की स्थिति देखकर नीचे दी गई तारीखों व समय तथा स्थान को ज्ञात करिये कि आप की स्थिति किस अक्षांश पर है तथा किस तारीख को आप देख रहे हैं। उस तारीख को वह राशि आपके शिरोबिन्दु से कितनी उत्तर या दक्षिण में दिखाई देगी। इसके अनुसार आकाश में देखने पर वह राशि उसी स्थान पर दिखाई देगी। नीचे राशियों की पहचान दी गई है—

(1) मेष राशि—मेष का अर्थ है 'मेंढ़ा'। इस राशि की आकृति मेंढ़े जैसी होने से इसे यह नाम दिया गया। इस राशि का विभाग सीमा 0 अंश से 30 अंश तक है। इस विभाग में यह राशि 15 अंश देशान्तर पर तथा 23.5 अंश उत्तरी अक्षांश पर दिखाई देती है जिसे चित्र संख्या 20 से देखकर इसे आकाश में देखा जा सकता है। इसमें तीन मुख्य सितारे हैं जो एक त्रिभुज बनाते हैं। ये तीनों सितारे मन्द प्रकाश वाले हैं। इसके दो सितारे 'अश्विनी' तथा 'भरणी' नक्षत्र कहलाते हैं। यह राशि 7 दिसम्बर को रात्रि 9 बजे याम्योत्तर रेखा पर होती है तथा उस दिन उदयपुर, डुंगरपुर, बाँसपाड़ा आदि के अक्षांशों से शिरोबिन्दु पर दिखाई देती है। सूर्य इस राशि में 13 अप्रैल को प्रवेश करता है।

(2) वृष राशि—इस राशि की विभाग सीमा 30 अंश से 60 अंश तक है। वृष का अर्थ 'बैल' होता है। इस राशि की आकृति बैल जैसी होने से इसे 'वृष' नाम दिया गया। चित्र संख्या 20 में यह राशि 60 अंश देशान्तर तथा 20 अंश अक्षांश पर दिखाई गई है। इसमें मुख्य 5 सितारे हैं जो अंग्रेजी के V (वी) के समान की आकृति बनाते हैं। इसका एक सितारा सबसे चमकीला है जो प्रथम श्रेणी का सितारा है। यह 'रोहिणी' नक्षत्र कहलाता है। यह राशि 15 जनवरी को रात्रि को 9 बजे याम्योत्तर रेखा पर होती है तथा यह उस दिन जयपुर आदि के अक्षांशों से 10 अंश दक्षिण में दिखाई देती है। सूर्य इसमें 14 मई को प्रवेश करता है।

(3) मिथुन राशि—इसकी युगल आकृति है। अंग्रेजी में इसे 'जेमिनी' कहते हैं जिसका अर्थ है 'जुड़वाँ' (Twins) है। चित्र संख्या 20 तथा 21 में इसकी स्थिति 90 अंश देशान्तर तथा 20 अंश उत्तरी अक्षांश पर दिखाई गई है। इसके अन्तर के दो सितारे अधिक चमकीले हैं जिसमें उत्तर की ओर के सितारे को 'प्रकृति' (Castor) तथा दक्षिण की ओर वाले को 'पुरुष' (Pollux) कहते हैं। अन्य सितारे मन्द प्रकाश वाले हैं। यह राशि पूर्व से पश्चिम की ओर फैली हुई दिखाई देती है। इस राशि की विभाग सीमा 60 अंश से 90 अंश तक है किन्तु यह इस सीमा से आगे

तक फैली है । ये दो सितारे 'पुनर्वसु' नक्षत्र कहलाते हैं । इस राशि को 21 फरवरी को रात्रि को 9 बजे याम्योत्तर रेखा पर देखा जा सकता है तथा जयपुर के अक्षांशों पर शिरोबिन्दु पर रहती है । दक्षिण की ओर का 'पुरुष' सितारा प्रथम श्रेणी का है । सूर्य इस राशि में 15 जून से प्रवेश करता है ।

(4) कर्क राशि—इसकी आकृति 'केकड़े' जैसी दिखाई देती है । यह चित्र संख्या 21 में यह 120 अंश देशान्तर तथा 20 अंश उत्तरी अक्षांश पर दिखाई गई है । इसके सभी तारे मन्द प्रकाश वाले हैं जिससे अँधेरी रात्रि में ही इन्हें देखा जा सकता है । इसके पश्चिम की ओर का सितारा 'पुष्य' तथा पूर्व की ओर का 'आश्लेषा' नक्षत्र कहलाता है । यह मिथुन राशि से पूर्व की ओर स्थित है । यह राशि 21 मार्च को याम्योत्तर रेखा पर रात्रि को 9 बजे आती है । इस राशि की प्रदेश सीमा 90 अंश से 120 अंश तक है । यह उदयपुर, बाँसवाड़ा आदि अक्षांशों से उस दिन शिरोबिन्दु पर दिखाई देती है । सूर्य 16 जुलाई को इस राशि में प्रवेश करता है । कुछ ज्योतिषी इस कर्क मंडल को इसके नीचे की ओर फैले 'वासुकी मण्डल' (Hydra) में ही मानते हैं जिससे 'पुष्य' का पाश्चात्य नाम (Delta Hydra) तथा 'आश्लेषा' का (Geta Hydra) रख दिया गया ।

(5) सिंह राशि—इसकी आकृति सिंह जैसी दिखाई देती है जिसका मुँह पश्चिम की ओर तथा पृष्ठ भाग पूर्व की ओर होता है । चित्र संख्या 21 में इसे 150 अंश देशान्तर तथा 20 अंश अक्षांश पर देखा जा सकता है । इसमें 6 सितारे मिलकर एक चाप बनाते हैं जो इसका मुँह है । इसमें दक्षिण की ओर का सितारा अधिक प्रकाश वाला है । यह 'मघा' नक्षत्र कहलाता है । यह 'मघा' सूर्य से 130 गुना तेजस्वी है तथा पृथ्वी से 67 प्रकाश वर्ष दूर है । यह भी प्रथम श्रेणी का सितारा है । इस चाप के पूर्व की ओर तीन सितारे एक त्रिभुज बनाते हैं जो इसका पृष्ठ भाग है । इसमें दक्षिण की ओर दो सितारे हैं जिनमें पश्चिम की ओर वाला 'पूर्वा फाल्गुनी' तथा पूर्व की ओर वाला 'उत्तरा फाल्गुनी' नक्षत्र हैं । यह राशि 21 अप्रैल को याम्योत्तर रेखा पर होती है तथा जयपुर आदि के अक्षांशों से 7 अंश दक्षिण में दिखाई देती है । इसकी प्रदेश सीमा 120 अंश से 150 अंश तक है । सूर्य इसमें 17 अगस्त को प्रवेश करता है ।

(6) कन्या राशि—इस राशि की आकृति कन्या जैसी दिखाई देती है । यह सिंह राशि के दक्षिण पूर्व में है तथा चित्र 21 में 180 अंश देशान्तर तथा 0 अंश अक्षांश के पास मानचित्र संख्या 2 व 3 में दिखाई गई है । इस राशि के दक्षिण में एक अति चमक वाला सितारा है जिसे 'चित्रा' नक्षत्र कहते हैं । यह भी प्रथम श्रेणी का सितारा है जिसकी तेजस्विता सूर्य से 440 गुनी है । यह पृथ्वी से 120 प्रकाश वर्ष

दूर है। यह राशि 21 मई को रात्रि को 9 बजे याम्योत्तर रेखा पर होती है तथा जयपुर आदि से करीब 30 अंश दक्षिण में दिखाई देती है। इसकी प्रदेश सीमा 150 अंश से 180 अंश तक है। सूर्य इस राशि में 17 सितम्बर को प्रवेश करता है।

(7) तुला राशि—चित्र संख्या 22 में कन्या राशि के दक्षिण-पूर्व में 'तुला' राशि दिखाई देती है। इसमें चार सितारे तराजू की भाँति दिखाई देते हैं। ये सभी सितारे मन्द प्रकाश वाले हैं किन्तु पश्चिम वाले दो सितारे अधिक चमक वाले हैं। इनमें एक 'विशाखा' नक्षत्र है। यह राशि 21 जून को 'याम्योत्तर रेखा' पर होती है तथा जयपुर आदि स्थानों से 47 अंश दक्षिण में दिखाई देती है। इसकी प्रदेश सीमा 180 अंश से 210 अंश तक है। सूर्य इस राशि में 17 अक्टूबर को प्रवेश करता है।

(8) वृश्चिक राशि—तुला राशि के दक्षिण-पूर्व में यह राशि आकाश के बड़े भाग में फैली हुई है। इसकी आकृति बिच्छू जैसी है। चित्र संख्या 22 में यह राशि 240 अंश देशान्तर तथा 30 अंश दक्षिण अक्षांश के आसपास दिखाई देती है। इसमें तीन मुख्य सितारे या नक्षत्र हैं। पश्चिम में 'अनुराधा' मध्य में 'ज्येष्ठा' तथा इसकी दुम के पास 'मूला' नक्षत्र है। 'ज्येष्ठा' नक्षत्र को 'पारिजात' भी कहते हैं। यह सबसे चमकीला तथा प्रथम श्रेणी का सितारा है। यह सूर्य से 1900 गुना तेजस्वी है तथा पृथ्वी से 250 प्रकाश वर्ष दूर है। यह राशि 21 जुलाई को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होती है तथा जयपुर के अक्षांश से करीब 60 अंश दक्षिण में दिखाई देती है। यह ज्येष्ठा नक्षत्र इतना बड़ा है कि इसमें 7 नील पृथ्वियाँ समा सकती हैं। इसका व्यास सूर्य के व्यास का 450 गुना है जिसमें हमारा सौर-मण्डल समा सकता है। यह लाल रंग का दिखाई देता है जो मंगल ग्रह के रंग से मिलता है इसलिए इसे प्रतिद्वन्द्वी (Antares) कहते हैं। इस राशि की प्रदेश सीमा 210 अंश से 240 अंश तक है। सूर्य इसमें 16 नवम्बर को प्रवेश करता है।

(9) धनु राशि—इसकी आकृति ऐसी दिखाई देती है जैसे कोई योद्धा धनुष लिये खड़ा हो। यह वृश्चिक के ठीक पूर्व में दिखाई देती है। हमारी आकाश-गंगा का मार्ग इसी से होकर जाता है। वैज्ञानिकों के अनुसार यही 'धनु राशि' हमारी आकाश-गंगा का केन्द्र है जिसके चारों और हमारा सूर्य अपने पूरे सौर-मण्डल को साथ लिए 200 मील प्रति सेकण्ड की गति से परिक्रमा कर रहा है। चित्र संख्या 22 व 23 में यह 270 अंश देशान्तर तथा 30 अंश दक्षिणी अक्षांश पर दिखाई देती है। इसके पश्चिम की ओर का सितारा 'पूर्वाषाढ़ा' तथा पूर्व की ओर का 'उत्तराषाढ़ा' नक्षत्र कहलाता है। यह राशि 21 अगस्त को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होती है तथा जयपुर आदि अक्षांशों से 57 अंश दक्षिण में दिखाई देती है। इसकी प्रवेश सीमा

240 अंश से 270 अंश तक है। सूर्य इस राशि में 15 दिसम्बर को प्रवेश करता है।

(10) मकर राशि—इसकी आकृति मकर जैसी दिखाई देती है। यह धनु राशि के उत्तर-पूर्व में है जिसे चित्र संख्या 23 में 300 अंश देशान्तर तथा 20 अंश दक्षिणी अक्षांश पर दिखाया गया है। इसके सभी सितारे मन्द प्रकाश वाले हैं। यह 21 सितम्बर को रात्रि को 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होती है तथा जयपुर आदि से 50 अंश दक्षिण में दिखाई देती है। इसकी प्रदेश सीमा 270 अंश से 300 अंश तक है। सूर्य इस राशि में 14 जनवरी को प्रवेश करता है। इस 'मकर संक्रान्ति' का विशेष महत्व है।

(11) कुंभ राशि—मकर राशि के उत्तर-पूर्व में कुंभ राशि है। चित्र संख्या 23 में यह 320 अंश देशान्तर तथा 0 अंश अक्षांश पर दिखाई देती है। इसकी आकृति सिर पर कुंभ लिये हुए महिला जैसी है। इसका सबसे चमकीला सितारा 'शतभिषा' नक्षत्र है जो 'विषुव वृत्त्' पर दिखाई देता है। यह राशि 21 अक्टूबर को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होती है तथा जयपुर आदि अक्षांशों से 27 अंश दक्षिण में दिखाई देती है। प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों के अनुसार इसमें 100 तारे हैं इसलिए इसे 'शतभिषा' कहते हैं। इसकी प्रदेश सीमा 300 अंश से 330 अंश तक है। सूर्य इस राशि में 13 फरवरी को प्रवेश करता है।

(12) मीन राशि—इसकी आकृति मछली के समान है तथा चित्र संख्या 23 में यह 360 अंश अथवा 0 अंश देशान्तर तथा 10 अंश उत्तरी अक्षांश के आसपास दिखाई देती है। यह राशि कुंभ राशि के उत्तर-पूर्व में बड़े आकार में फैली हुई है। इसके दुम के पास एक सितारा है जिसे 'रेवती' नक्षत्र कहते हैं। राशियों तथा नक्षत्रों की गणना यहीं से आरम्भ होती है तथा अन्तिम राशि 'मीन' तथा अन्तिम नक्षत्र 'रेवती' की यहीं समाप्ति होती है। यह 21 नवम्बर को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होती है तथा जयपुर के अक्षांशों से करीब 10 अंश दक्षिण में दिखाई देती है। इसकी प्रदेश सीमा 330 अंश से 360 अंश तक है। सूर्य इस राशि में 14 मार्च को प्रवेश करता है।

राशियों की अन्य विशेषताएँ

वैज्ञानिक कहते हैं कि हमारे सौर-मण्डल के बाहर से ऐसे घोल आ रहे हैं जिनसे यहाँ की रेडियो तरंगों में बाधा उत्पन्न हो रही है। इनका ये पता नहीं लगा पाये हैं किन्तु हमारे ज्योतिर्विदों के अनुसार ये इन राशियों से आ रहे हैं। भारतीय ज्योतिष

में इन राशियों के विषय में कहा गया है कि मेष, वृष, मिथुन तथा धनु राशियाँ अति शब्द वाली है, कर्क, मीन, वृश्चिक तथा तुला शब्द रहित है तथा कन्या, कुंभ, मकर अर्द्ध शब्द वाली हैं। इससे ज्ञात होता है कि जिनमें विस्फोट हो रहा है वे अति शब्द उत्पन्न करती हैं, जहाँ निर्माणावस्था है वहँ अर्द्ध शब्द है तथा जहाँ सृष्टि क्रम आरम्भ हो चुका है वहाँ शब्द हीनता है।

इसके अतिरिक्त भारतीय ज्योतिषियों ने इन राशियों का जब किसी ग्रह विशेष से योग होता है तब उसका पृथ्वी पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका भी पता लगाया जिसके आधार पर ही फलित ज्योतिष का आरम्भ हुआ। अभी वैज्ञानिक इस प्रभाव को ज्ञात नहीं कर पाये हैं।

◆:◆:◆

9

नक्षत्र मण्डल

नक्षत्र परिचय

प्राचीन काल में सभी सितारों के लिए 'नक्षत्र' शब्द का प्रयोग होता था किन्तु धीरे-धीरे यह उन सितारों के लिए ही प्रयुक्त होने लगा जो चन्द्रमा के मार्ग में पड़ते हैं। चन्द्रमा चूँकि पृथ्वी का एक चक्कर 27 दिन 7 घंटे में लगा लेता है जिससे यह प्रति दिन 13 अंश पश्चिम से पूर्व की ओर हटता जाता है। चन्द्रमा की इस दैनिक गति के अनुसार इस पूरे मार्ग को 27 भागों में बाँटा गया। इससे प्रत्येक भाग का मध्यान्तर 13 अंश, 20 कला होता है (13 अंश 20 कला x 27 = 360 अंश)। इस 13 अंश 20 कला के विभाग को एक 'नक्षत्र' कहा जाता है जिसे चन्द्रमा एक दिन में पार करता है। जिस प्रकार राशि का मध्यान्तर 30 अंश होता है उसी प्रकार नक्षत्र का मध्यान्तर 13 अंश 20 कला होता है जिससे प्रत्येक राशि में 2.25 नक्षत्र आ जाते हैं। चन्द्रमा को एक राशि को पार करने में 2.25 दिन लगते हैं। इस नक्षत्र भाग के मध्य पड़ने वाले किसी चमकीले सितारे के नाम से इनके 27 नाम रख दिये जिन्हें 'नक्षत्र' कहतेहैं। ये नक्षत्र कुछ तो राशियों में किसी चमकीले तारे के ही हैं तथा कुछ अन्य तारामण्डलों के सितारे हैं जो इस सीमा में या इसके आसपास पड़ते हैं। इन नक्षत्रों का ज्ञान भारतीयों को वैदिक काल से था। करीब 2500 ई0 पूर्व नक्षत्रों की चर्चा भारतीय ग्रन्थों में मिलती है। इन नक्षत्रों का आरम्भ स्थान 'अश्विनी नक्षत्र' से होता है। मेष राशि तथा अश्विनी नक्षत्र का आरम्भ स्थान एक ही है। इस बिन्दु से चलकर पश्चिम से पूर्व की ओर नक्षत्रों का क्रम निम्न प्रकार है जिनकी दूरी 13 अंश 20 कला है।

संख्या एवं नाम

1.अश्विनी (B. Arities)
2.भरणी (Mu Arities)
3.कृतिका (Plliades)
4.रोहिणी (Aldebaran)
5. मृगशिरा (Lamdaorion)
6. आर्द्रा (Betelguese)
7.पुनर्वसु (Pollux)
8. पुष्य (D. Hydra)
9. आश्लेषा (Geta Hydra)
10.मघा (Regulus)
11.पूर्वा फाल्गुनी (Theta Heouis)
12.उत्तरा फाल्गुनी (Denabola)

13.हस्त (Corvus)
14.चित्रा (Spica)
15.स्वाति (Arctaurus)
16.विशाखा (Libra)
17.अनुराधा (D. Scorpii)
18.ज्येष्ठा (Antares)
19.मूला (Shaula)
20.पूर्वाषाढ़ा(L. Sagittarius)
21.उत्तराषाढ़ा (To Sagittarices)
22.श्रवण (Altair)
23. धनिष्ठा (Ollphimi)
24.शतभिषा (L. Aquarius)
25.पूर्वाभाद्रपद्र (Markeb)
26.उत्तराभाद्रपद्र (Algenib)
27. रेवती (J. Piscium)

पृथ्वी की दैनिक गति के कारण सभी नक्षत्र 24 घंटे में एक बार पूर्व से उदय होकर पश्चिम में अस्त हो जाते हैं। इनके उदय होने में 52 मिनिट का अन्तर होता है। यदि कोई नक्षत्र आज रात्रि को 9 बजे याम्योत्तर रेखा पर है तो 52 मिनिट के बाद अगला नक्षत्र उस स्थान पर आ जाएगा।

राशियों से सम्बन्ध

एक राशि 30 अंश की होती है तथा एक नक्षत्र 13 अंश 20 कला का होता है जिससे एक राशि में 2.25 नक्षत्र होते हैं। इसलिए प्रत्येक नक्षत्र को चार भागों में बाँटा गया। प्रत्येक भाग को 'पाद' या 'चरण' (Quadrant) कहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक राशि में नक्षत्रों की संख्या निम्नानुसार होती है—

क्र०	राशि		नक्षत्र और पाद संख्या		
1	मेष	—	अश्विनी, 4	भरणी, 4	कृतिका, 1
2	वृष	—	कृतिका, 3	रोहिणी, 4	मृगशिर, 2
3	मिथुन	—	मृगशिर, 2	आर्द्रा, 4	पुनर्वसु, 3
4	कर्क	—	पुनर्वसु, 1	पुष्य, 4	अश्लेषा, 4
5	सिंह	—	मघा, 4	पू० फाल्गुनी, 4	उ० फाल्गुनी, 1

6	कन्या	—	उ० फाल्गुनी, 3	हस्त, 4	चित्रा, 2
7	तुला	—	चित्रा, 2	स्वाति, 4	विशाखा, 3
8	वृश्चिक	—	विशाखा, 1	अनुराधा, 4	ज्येष्ठा, 4
9	धनु	—	मूला, 4	पूर्वाषाढ़ा, 4	उत्तराषाढ़ा, 1
10	मकर	—	उत्तराषाढ़ा, 3	श्रवण, 4	घनिष्ठा, 2
11	कुंभ	—	घनिष्ठा, 2	शतमिषा, 4	पू० भाद्रपद, 3
12	मीन	—	पू० भाद्रपद, 1	उ० भाद्रपद, 4	रेवती, 4

नक्षत्रों की सीमा और योग तारे

कई नक्षत्रों में एक ही सितारा है तथा कई समूह में भी होते हैं जैसे अश्विनी में 3, कृतिका में 6, मूला में 11, रोहिणी में 5, श्रवण में 3 आदि । इन समूहों में जिस सितारे को मुख्य नक्षत्र मानकर गणना की जाती है उसे 'योग तारा' कहते हैं । रेवती नक्षत्र से आरम्भ करके प्रत्येक नक्षत्र की सीमा 13 अंश 20 कला निर्धारित की गई है किन्तु आवश्यक नहीं कि ये 27 ही नक्षत्र उसी सीमा में आ जाये । कहीं-कहीं एक ही नक्षत्र प्रदेश में दो नक्षत्रों के योग तारे आ जाते हैं और किसी में एक भी नहीं आता ।

नक्षत्रों का महीनों से सम्बन्ध

भारतीय पंचांगों में चान्द्र महीनों के नाम इन्हीं नक्षत्रों तथा चन्द्रमा की इनमें गति के आधार पर रखे गये हैं जिससे इन नक्षत्रों को देखकर महीनों, तिथि तथा समय का ज्ञान आसानी से किया जा सकता है । ऐसी गणितीय पद्धति अन्य किसी पंचांग में नहीं मिलती । पूर्णिमा के दिन जब सूर्य अस्त होता है तो चन्द्रमा पूर्व में उदय होता है । उस दिन चन्द्रमा जिस नक्षत्र में उदय होता है उसी नक्षत्र के नाम का महीना समाप्त होता है । (इसका वर्णन 'कालगणना' अध्याय में किया गया है ।)

तिथि ज्ञान

इन नक्षत्रों और चन्द्रमा के बीच की दूरी से तिथि का भी ज्ञान हो जाता है। जैसे ज्येष्ठ महीने में चन्द्रमा रेवती नक्षत्र में दिखाई दे रहा है तो यह ज्ञात किया जा सकता है कि वैशाख की पूर्णिमा को चन्द्रमा विशाखा नक्षत्र में था। अब यह रेवती नक्षत्र में आया है जो विशाखा से 11 नक्षत्र आगे का है। चन्द्रमा की गति प्रतिदिन एक नक्षत्र होती है। अतः 11 नक्षत्र पार करने में उसे 11 दिन लगे जिससे उस दिन ज्येष्ठ मास की एकादशी तिथि है। इसी प्रकार वर्ष में किसी भी दिन यह देख लीजिये कि चन्द्रमा किस नक्षत्र में चमक रहा है तथा महीना कौन सा है। यदि वह फाल्गुन महीना है और चन्द्रमा ज्येष्ठा नक्षत्र में है तो इसका अर्थ है माघ की पूर्णिमा को चन्द्रमा मघा नक्षत्र में था तथा अब यह उससे 8 नक्षत्र आगे ज्येष्ठा में है, तो उस दिन की तिथि अष्टमी होगी।

नक्षत्रों की पहचान

आकाश में इन नक्षत्रों को पहचानने के लिए विशिष्ट तारापुंज तथा राशियों की सहायता ली जाती है। ये नक्षत्र किसी राशि अथवा अन्य तारामण्डल के विशिष्ट सितारे हैं जो चन्द्रमा के मार्ग में पड़ते हैं। दो नक्षत्रों के बीच करीब 13 अंश 20 कला का अन्तर होता है तथा इनके उदयास्त में 52 मिनिट का अन्तर होता है। ये नक्षत्र मेष राशि से आरम्भ होते हैं तथा रेवती नक्षत्र अन्तिम नक्षत्र है। जो नक्षत्र अधिक चमक वाले हैं उन्हें आसानी से पहचाना जा सकता है। इनकी पहचान के लिए मध्य आकाश के तारा मण्डलों के चार मानचित्र दिये गये हैं जिनकी सहायता से इन्हें आकाश में पहचाना जा सकता है। इसकी विधि निम्न प्रकार है—

(1) अश्विनी तथा भरणी—शीत ऋतु के मानचित्र संख्या 1 में 15 अंश देशान्तर तथा 23.5 उत्तरी अक्षांश पर 'मेष' राशि दिखाई देती है। इस राशि में तीन सितारे हैं जो एक त्रिभुज बनाते हैं। इसी त्रिभुज का दक्षिण की ओर का सितारा ही 'अश्विनी' नक्षत्र कहलाता है तथा पूर्व की ओर का सितारा 'भरणी' नक्षत्र है। इनके पाश्चात्य नाम 'बीटा एरटिसि' तथा 'म्यू एरीटीस' है। ये मन्द प्रकाश वाले हैं। अश्विनी नक्षत्र की प्रदेश सीमा 13 अंश 20 कला तक तथा भरणी की 26 अंश 40 अंश तक है किन्तु ये दोनों नक्षत्र इस प्रदेश सीमा से आगे हैं। अश्विनी 14 अंश 6 कला पर तथा भरणी 27 अंश 4 कला पर है। ये क्रमशः 3 दिसम्बर तथा 10 दिसम्बर को रात्रि 9 बजे याम्योत्तर रेखा पर दिखाई देते हैं तथा उदयपुर, डूँगरपुर, बाँसपाड़ा आदि के अक्षांशों पर .ठीक सिर पर दिखाई देते हैं।

(2) कृत्तिका—इसी के ठीक पूर्व की ओर करीब 20 अंश के अन्तर पर सात हारों का एक गुच्छा दिखाई देता है। यही 'कृतिका' नक्षत्र है। कार्तिक महीने की पूर्णिमा को चन्द्रमा इसी नक्षत्र में उदय होता है। इस नक्षत्र की प्रदेश सीमा 40 अंश 0 कला है किन्तु यह भी इस सीमा से आगे 40 अंश 7 कला पर है। यह नक्षत्र 28 दिसम्बर को रात्रि 9 बजे याम्योत्तर रेखा पर दिखाई देता है तथा उदयपुर, डूँगरपुर, बाँसपाड़ा के अक्षांशों पर यह ठीक सिर पर होता है। यह नक्षत्र 'वृष' राशि का ही नक्षत्र माना जाता है। इस कृत्तिका को दीप पुंज का प्रतीक मानकर दीपावली के अवसर पर दीपक जलाकर इसकी पूजा की जाती है। ज्योतिर्विदों को यह विश्वास है कि 'संपात' (Equinox) में गति है। यह प्रति वर्ष 50 विकला पीछे हटता जा रहा है। वैदिक काल में 'बसंत संपात' इसी कृतिका नक्षत्र के पास था। इस समय यह 'रेवती' नक्षत्र के पास है।

(3) रोहिणी—इसी मानचित्र में कृतिका के दक्षिण पूर्व की ओर करीब 15 अंश की दूरी पर पाँच सितारे दिखाई देते हैं जो अंग्रेजी के V के आकार के हैं। यही 'वृष' राशि है। इसका पूर्व की ओर का एक चमकीला सितारा है जिसे 'रोहिणी' नक्षत्र कहते हैं। रोहिणी नक्षत्र की सीमा 53 अंश 20 कला तक है तथा यह सितारा इसी सीमा में 49 अंश 55 कला पर है। यह 18 जनवरी को रात्रि 9 बजे याम्योत्तर रेखा पर होता है। जयपुर के अक्षांश शिरोबिन्दु से 7 अंश दक्षिण में दिखाई देता है। यह सूर्य से 91 गुना तेजस्वी है तथा पृथ्वी से 53 प्रकाश वर्ष दूर है। यह प्रथम श्रेणी का सितारा है।

(4) मृगाशिर और आर्द्रा—इस रोहिणी नक्षत्र के दक्षिण पूर्व में एक बड़ा तारामण्डल दिखाई देता है जिसे 'मृग मण्डल' या 'हिरणी' कहते हैं। मानचित्र संख्या 1 में इसकी आकृति 70 अंश देशान्तर तथा 0 अंश अक्षांश पर देखकर इसे आकाश में पहचाना जा सकता है। इसे 'अग्रहायण मण्डल' भी कहते हैं। इसके सिर के पास तीन सितारों का एक समूह है तथा इसके कन्धों के पास दो सितारे हैं इनमें पश्चिम की ओर का सितारा 'मृगशिर' तथा पूर्व की ओर का 'आर्द्रा' नक्षत्र है। मृगशिर नक्षत्र की सीमा 66 अंश 40 कला तथा आर्द्रा की 80 अंश 0 कला है। ये दोनों ही नक्षत्र अपनी सीमा में ही क्रमश: 62 अंश 18 कला पर तथा 67 अंश 6 कला पर हैं। इनमें मृगशिर 28 जनवरी को तथा आर्द्रा 3 फरवरी को रात्रि 9 बजे याम्योत्तर रेखा पर होते हैं तथा जयपुर, जोधपुर, अजमेर के अक्षांशों के शिंरोबिन्दु से करीब 20 अंश दक्षिण में दिखाई देते हैं। इस मण्डल के उत्तर की ओर के तीन सितारों में सबसे उत्तर वाला सितारा 'मृग लोचनी' (Belatrix) कहलाता है। इसके पायों की ओर दो चमकीले

सितारे दिखाई देते हैं जिनमें पश्चिम की ओर का सितारा 'वाणरज' (Regel) तथा पूर्व की ओर वाला 'इल्वाक' (Alrilam) है। वाणराज को 'मृग पद' भी कहते हैं। इस मण्डल के बीच में तीन सितारे हैं जो एक सीधी रेखा में दिखाई देते हैं वे विषुण वृत्त पर हैं। 'आर्द्रा' नक्षत्र प्रथम क्षेणी का सितारा है। यह सूर्य से 3600 गुना तेजस्वी है तथा पृथ्वी से यह 300 प्रकाश वर्ष दूर है। यह नक्षत्र सूर्य से 3 करोड़ गुना बड़ा है। इसका व्यास सूर्य के व्यास से 300 गुना अधिक है। 'मृगशिर' नक्षत्र पृथ्वी से 1200 प्रकाश वर्ष दूर है तथा 'वाणरज' 540 प्रकाश वर्ष की दूरी पर है। वाणरज भी प्रथम श्रेणी का सितारा है। जो सूर्य से 2100 गुना तेजस्वी है। यह भी 28 जनवरी को रात्रि 9 बजे याम्योत्तर रेखा पर आता है।

(5) पुनर्वसु—मृग मंडल के उत्तर-पूर्व में 90 अंश देशान्तर तथा 30 अंश उत्तरी अक्षांश पर मिथुन राशि दिखाई देती है। इसके पूर्व की ओर के दो सितारे सबसे चमकीले हैं जो 'बसन्त ऋतु के तारामण्डल' चित्र संख्या 2 में दिखाये गये हैं। इन दोनों सितारों में उत्तर की ओर का सितारा 'प्रकृति' (Castor) तथा दक्षिण की ओर का 'पुरुष' (Pollux) कहलाता है। यह 'पुरुष' सितारा ही 'पुनर्वसु' नक्षत्र है। इस नक्षत्र प्रदेश की सीमा 93 अंश 20 कला तक ही है जबकि यह सितारा 93 अंश 22 कला पर होने से इस सीमा से आगे है। यह 28 फरवरी को रात्रि को 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा जयपुर के अक्षांश से शिरोबिन्दु पर दिखाई देता है। इसमें 'पुरुष' सितारा प्रथम श्रेणी का है जो सूर्य से 25 गुना तेजस्वी है। यह पृथ्वी से 29 प्रकाश वर्ष दूर है।

(6) पुष्य तथा आश्लेषा—इस 'पुरुष' सितारे के ही पूर्व में कर्क राशि दिखाई देती है। इस राशि के पश्चिम की ओर का सितारा जो 'पुरुष' से ठीक पूर्व में करीब 15 अंश की दूरी पर दिखाई देता है वही 'पुष्य' नक्षत्र है। यह मन्द प्रकाश वाला है। उसके दक्षिण-पूर्व की ओर इसी राशि का दूसरा सितारा 'आश्लेषा' नक्षत्र है। 'पुष्य' की नक्षत्र सीमा 106 अंश 40 कला तक है तथा यह सितारा 108 अंश 50 कला पर होने से इस सीमा से आगे है तथा 'आश्लेषा' की सीमा 120 अंश 0 कला तक है तथा यह सितारा 111 अंश 0 कला पर होने से इस सीमा के भीतर ही है। 'पुष्य' 14 मार्च को तथा 'आश्लेषा' 21 मार्च को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होते हैं तथा उदयपुर, डूँगरपुर, बाँसवाडा के अक्षांशों से शिरोबिन्दु पर दिखाई देते हैं।

(7) मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी—कर्क राशि के ठीक पूर्व की ओर ही 'सिंह' राशि है जिसे बसन्त ऋतु के तारामण्डल के चित्र संख्या 2 में 150 अंश देशान्तर तथा 20 अंश अक्षांश पर देखा जा सकता है। इस राशि का मुँह पश्चिम की

ओर रहता है जो अर्द्ध-वृत्ताकार है तथा पूर्व की ओर इसी दुम के पास तीन सितारे हैं। इसके मुँह के दक्षिण की ओर का सितारा सबसे चमकीला है। यही 'मघा' नक्षत्र है तथा दुम के तीन सितारों में पश्चिम की ओर का सितारा 'पूर्वा फाल्गुनी' तथा पूर्व की ओर का 'उत्तरा फाल्गुनी' नक्षत्र है। इस राशि के सभी तारे चमकीले हैं। इन तीनों की नक्षत्र सीमा क्रमश 133 अंश 20 कला, 146 अंश 40 कला, तथा 160 अंश 0 कला है। ये तीनों सितारे इसी सीमा में क्रमश: 129 अंश 58 कला, 143 अंश 32 कला तथा 151 अंश 45 कला पर है। ये क्रमश: 7 अप्रैल, 24 अप्रैल तथा 3 मई को रात्रि को 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होते हैं तथा जयपुर आदि के अक्षांशों से करीब 10 अंश दक्षिण में दिखाई देते हैं। 'मघा' प्रथम श्रेणी का सितारा है जो सूर्य से 130 गुना तेजस्वी है तथा पृथ्वी से 67 प्रकाश वर्ष दूर है।

(8) हस्त—'उत्तरा फाल्गुनी' नक्षत्र के करीब 35 अंश दक्षिण में चतुर्भुज की आकृति के चार सितारे दिखाई देते हैं। यही 'हस्त नक्षत्र' है। इस नक्षत्र की सीमा 173 अंश 20 कला तक है तथा इसा योग तारा 173 अंश 35 कला पर है जो इसकी सीमा से आगे है। यह 14 मई को रात्रि को 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा उदयपुर के अक्षांश से करीब 40 अंश दक्षिण में दिखाई देता है। इस मण्डल को 'काग' भी कहते हैं।

(9) चित्रा—उत्तरा-फाल्गुनी तथा हस्त नक्षत्र के बीच में 'कन्या राशि' दिखाई देती है जो 180 अंश देशान्तर तथा 0 अंश अक्षांश पर है। इसके पूर्वी भाग में एक चमकीला सितारा दिखाई देता है यही 'चित्रा' नक्षत्र है जो ग्रीष्म ऋतु के तारामण्डल के चित्र संख्या 3 में दिखाया गया है। इस नक्षत्र की अन्तिम सीमा 186 अंश 40 कला तक है तथा यह सितारा 183 अंश 58 कला पर होने से यह इसी नक्षत्र सीमा में है। यह 28 मई को रात्रि को 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा जयपुर, जोधपुर आदि के अक्षांशों से यह 37 अंश दक्षिण में दिखाई देता है। यह प्रथम श्रेणी का सितारा है जिसकी तेजस्विता सूर्य से 440 गुनी है। यह पृथ्वी से 120 प्रकाश वर्ष दूर है।

(10) स्वाति—सिंह राशि के ठीक पूर्व में करीब 60 अंश की दूरी पर 'भूतेश मण्डल' (Bootes) है जिसके दक्षिण की ओर एक सबसे चमकीला सितारा है। यही 'स्वाति' नक्षत्र है। यह चित्रा से उत्तर में दिखाई देता है तथा मानचित्र में इसकी स्थिति 195 अंश देशान्तर तथा 20 अंश उत्तरी अक्षांश पर है। इसकी पहचान 'सप्तर्षि मण्डल' द्वारा भी की जा सकती है। सप्तर्षि की दुम की ओर एक अन्तिम दो सितारों (वशिष्ठ और मारिचि) को मिलाते हुए यदि एक सीधी रेखा खींची जाय तो

यह सीधी स्वाति नक्षत्र से मिलेगी। इसकी प्रदेश सीमा 200 अंश 0 कला तक है। यह नक्षत्र 184 अंश 22 कला पर ही है जिससे यह इस प्रदेश सीमा से पीछे है। यह 9 जून को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा जयपुर आदि के अक्षांशों से 7 अंश दक्षिण में दिखाई देता है। यह भी प्रथम श्रेणी का सितारा है जिसकी तेजस्विता सूर्य से 83 गुनी है। यह पृथ्वी से 38 प्रकाश वर्ष दूर है।

(11) **विशाखा**—'स्वाति' नक्षत्र के .ठीक दक्षिण की ओर करीब 40 अंश की दूरी पर तथा 'चित्रा' नक्षत्र के पूर्व की ओर चार सितारे दिखाई देते हैं। यह 'तुला' राशि है। इसके पश्चिम की ओर का सितारा ही 'विशाखा' नक्षत्र है। मानचित्र संख्या 3 में इसकी स्थिति 210 अंश देशान्तर तथा 20 अंश दक्षिणी अक्षांश के पास है। यह सितारा भी अधिक चमकीला है। 'विशाखा' की नक्षत्र सीमा 213 अंश 20 कला है तथा यह सितारा इसी सीमा में 211 अंश 8 कला पर है। यह 21 जून को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा जयपुर आदि के अक्षांसों से 47 अंश दक्षिण में दिखाई देता है।

(12) **अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला**—तुला राशि के पास ही दक्षिण-पूर्व की ओर एक बड़ा 'वृश्चिक मण्डल' या 'वृश्चिक राशि' है जिसकी आकृत्ति बिच्छू के समान है। यह राशि मानचित्र में 225 अंश देशान्तर से 255 अंश देशान्तर तथा 30 अंश दक्षिणी अक्षांश पर फैली हुई है। इसके मुँह की ओर पाँच चमकीले सितारे हैं जिनमें दक्षिण की ओर चौथे नम्बर का सितारा 'अनुराधा नक्षत्र' है। इसके दक्षिण-पूर्व की ओर तीन सितारे हैं जिनमें एक सबसे चमकीला है यह 'ज्येष्ठा' नक्षत्र है तथा आगे इसकी घुमावदार पूँछ है जिसके अन्तिम सितारे के पहले का सितारा 'मूल' नक्षत्र है। इनकी नक्षत्र सीमा क्रमशः 226 अंश 40 कला, 240 अंश 0 कला तथा 253 अंश 20 कला है। ये तीनों नक्षत्र इनकी सीमा में ही हैं जो क्रमशः 223 अंश 19 कला, 223 अंश 19 कला, 229 अंश 53 कला तथा 243 अंश 26 कला देशान्तरों पर हैं। ये क्रमशः 28 जून, 14 जुलाई तथा 28 जुलाई को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होते हैं तथा जयपुर के अक्षांशों से 50 अंश से 65 अंश के मध्य दिखाई देते हैं।

(13) **पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा**—वृश्चिक राशि के .ठीक पूर्व में 'धनु राशि' है। यह मानचित्र संख्या 3 में 270 अंश देशान्तर तथा 30 अंश दक्षिण अक्षांश पर दिखाई गई है। इसके पश्चिम की ओर का सितारा 'पूर्वाषाढ़ा' तथा पूर्व की ओर का 'उत्तराषाढ़ा' नक्षत्र है। इनकी नक्षत्र सीमा क्रमशः 266 अंश 40 कला तथा 280 अंश है। इनमें 'पूर्वाषाढ़ा' नक्षत्र तो इसकी सीमा में ही 254 अंश 52 कला पर है किन्तु 'उत्तराषाढ़ा' 260 अंश 18 कला पर ही है जो इस सीमा से पीछे है। ये क्रमशः

14 अगस्त तथा 21 अगस्त को 'याम्योत्तर रेखा' पर होते है तथा जयपुर के अक्षांश से 57 अंश दक्षिण में दिखाई देते हैं।

(14) श्रवण—धनु राशि के उत्तर में 'गरुड मण्डल' (Aquila) है जो पतझड़ ऋतु के मानचित्र संख्या 4 में 285 अंश देशान्तर तथा 0 अंश अक्षांश पर दिख़ाया गया है। इसके उत्तर की ओर एक चमकीला सितारा है जिसे 'श्रवण' नक्षत्र कहते हैं। इसकी नक्षत्र सीमा 293 अंश 20 कला है तथा यह नक्षत्र 281 अंश 52 कला पर होने से इसकी सीमा में ही है। यह 28 अगस्त को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा उदयपुर के अक्षांश से 15 अंश दक्षिण में दिखाई देता है। 'श्रवण' प्रथम श्रेणी का सितारा है जिसकी तेजस्विता सूर्य से 10 गुनी है। यह पृथ्वी से 157 प्रकाश वर्ष दूर है।

(15) धनिष्ठा—श्रवण नक्षत्र के उत्तर-पूर्व की ओर पाँच तारों की आकृति का 'धनिष्ठा मण्डल' है। ये मन्द प्रकाश वाले हैं। इसके पूर्व की ओर का सितारा इसका 'योग तारा' है जो 297 अंश 30 कला पर दिखाई देता है जो इसकी सीमा 306 अंश 40 कला के भीतर ही है। मानचित्र में यह 300 अंश देशान्तर तथा 10 अंश अक्षांश पर दिखाया गया है। यह 14 सितम्बर को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा जयपुर से 17 अंश दक्षिण में दिखाई देता है। इसे 'उपूली' भी कहते हैं।

(16) शतभिषा—गरुड़ मण्डल के .ठीक पूर्व में करीब 40 अंश की दूरी पर 'कुंभ' राशि है जो मानचित्र संख्या 4 में 320 अंश देशान्तर तथा 0 अंश अक्षांश पर दिखाई गई है। इसके सबसे ऊपर का सितारा ही 'शतभिषा' नक्षत्र है। इसकी नक्षत्र सीमा 320 अंश 0 कला है तथा यह नक्षत्र 321 अंश 42 कला पर होने से इस सीमा से आगे है। यह 14 अक्टूबर को रात्रि को 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा जयपुर के अक्षांश से 27 अंश दक्षिण में दिखाई देता है।

(17) पूर्वाभाद्रपद व उत्तराभादप्रद—इस कुंभ राशि के उत्तर-पूर्व में 'भाद्रपद मण्डल' (Square of Pegasus) है। मानचित्र संख्या 4 में यह 340 अंश देशान्तर तथा 20 अंश उत्तरी अक्षांश पर दिखाया गया है। इसके दक्षिण-पश्चिम का सितारा 'पूर्वा भाद्रपद' तथा पूर्व की ओर का 'उत्तरा भाद्रपद' कहलाता है। इन्हें 'मारकेब' तथा 'एलजानिब' भी कहते हैं। इस 'एलाजानिब' के उत्तर की ओर का सितारा 'एलाफरेज' (Alpheratz) है। इन नक्षत्रों की सीमा 333 अंश 20 कला तथा 346 अंश 40 कला है। इनमें 'पूर्वा भाद्रपद' 333 अंश 36 कला पर होने से इस सीमा से आगे है तथा 'उत्तरा भाद्रपद' 354 अंश 13 कला पर होने से यह भी सीमा से आगे हैं। ये क्रमशः 21 अक्टूबर तथा 10 नवम्बर को रात्रि को 9 बजे

'याम्योत्तर रेखा' पर होते हैं तथा जयपुर के अक्षांश से 15 अंश दक्षिण में दिखाई देते हैं।

(18) रेवती—इस भाद्रपद वर्ग के पूर्व की ओर 'मीन राशि' है जो मानचित्र में 0 अंश देशान्तर तथा 0 अंश अक्षांश से 30 अंश उत्तरी अक्षांश तक फैली है। इस राशि के दुम की ओर का एक सितारा ही 'रेवती' नक्षत्र है। यह मन्द प्रकाश वाला है। इसकी नक्षत्र सीमा 360 अंश 0 कला तक है तथा यह नक्षत्र भी 360 अंश 0 कला पर ही स्थित है। नक्षत्रों और राशियों का आरम्भ स्थान यही नक्षत्र है। यह 21 नवम्बर को रात्रि को 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर दिखाई देता है तथा जयपुर के अक्षांश के शिरोबिन्दु पर ही दिखाई देता है।

नोट—1. मानचित्र में नक्षत्रों की स्थिति पूर्ण पैमाने के अनुसार नहीं है।

2. भारत के अन्य नगरों से इनकी स्थिति देखने के लिये परिशिष्ट-1 ब में दी गई अक्षांश देशान्तर की सूची देखकर अपने स्थान के अक्षांश को देखकर इन नक्षत्रों की अपने शिरोबिन्दु से उत्तर-दक्षिण स्थिति ज्ञात करके इन्हें देखना चाहिए।

◆:◆:◆

10

अन्य तारामण्डल (Other Constellations)

पूर्व में 12 राशियों के अन्तर्गत 12 तारामण्डलों का वर्णन किया जा चुका है जिनमें मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ तथा मीन राशियाँ हैं। ये सभी राशियाँ तारामण्डल ही हैं। इसके साथ नक्षत्र मण्डल के अन्तर्गत इन राशियों के अतिरिक्त 7 तारामण्डलों का वर्णन किया जा चुका है जिनमें कृत्तिका, मृग, हस्त, भूतेश, गरुड़, घनिष्ठा तथा भाद्रपद् वर्ग हैं। ये सभी तारामण्डल 40 अंश उत्तरी अक्षांश से 40 अंश दक्षिणी अक्षांश के मध्य आ जाते हैं। इन अक्षांशों के बीच 23 और तारामण्डल हैं जो इस मध्य आकाश में ही दिखाई देते हैं जिन्हें चार मानचित्रों में दिखाया गया है। मानचित्र को देखकर इनकी स्थिति को आकाश में पहचाना जा सकता है। इसके बाद मानचित्र संख्या 5 में उत्तरी आकाश के 5 तारामण्डल तथा मानचित्र संख्या 6 में दक्षिणी आकाश के 3 तारामण्डल दिये गये हैं। राजस्थान से उत्तरी-आकाश के तारामण्डलों को तो आसानी से देखा जा सकता है। किन्तु दक्षिणी आकाश के तारामण्डलों में 60 अंश दक्षिण के तारामण्डलों को नहीं देखा जा सकता किन्तु जानकारी के लिए उन्हें दे दिया गया है। इस प्रकार जिज्ञासुओं को कुल 50 तारामण्डलों का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। पहले मध्य आकाश के अन्य तारामण्डलों का परिचय कराया जा रहा है।

मध्य आकाश के तारामण्डल

(1) शीत ऋतु के तारामण्डल—मानचित्र संख्या 1 में शीत ऋतु में दिखाई देने वाले तारामण्डल दिये गये हैं जो 21 नवम्बर से 21 फरवरी के मध्य रात्रि को 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर आते हैं। पहले मानचित्र में इनकी स्थिति व समय देखकर फिर इन्हें आकाश में उसी के अनुसार देखा जाय तो वे उसी स्थान व समय पर अवश्य दिखाई देंगे। मुख्य-मुख्य तारामण्डल निम्न प्रकार हैं—

(i) देवयानी मण्डल (Androsucda) – मानचित्र संख्या 1 में मेष राशि के उत्तर में 40 अंश उत्तरी अक्षांश के पास 'देवयानी' निहारिका दिखाई गई है। यह हमारी पृथ्वी की सबसे नजदीकी निहारिका है जो पृथ्वी से 15 लाख प्रकाश वर्ष दूर है। यह जयपुर के शिरोबिन्दु से 13 अंश उत्तर में दिखाई देती है तथा 7 दिसम्बर को रात्रि को 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होती है।

(ii) त्रिकोण मण्डल (Triangulum) – मेष राशि तथा देवयानी के मध्य तीन सितारों का एक त्रिकोण बनता है जिसे 'त्रिकोण मण्डल' कहते हैं। यह मेष राशि से 10 अंश उत्तर में दिखाई देता है तथा मेष राशि के साथ ही 'याम्योत्तर रेखा' पर आता है।

(iii) ययाति मण्डल (Perseus) – मेष राशि के उत्तर-पूर्व में 'ययाति मण्डल' है। इसके अन्य भारतीय नाम 'वराह मण्डल' 'परशु मण्डल' तथा 'पारसीय' भी हैं। यह 40 अंश देशान्तर तथा 50 अंश उत्तरी अक्षांश पर मानचित्र में दिखाया गया है। यह 14 जनवरी को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर दिखाई देता है। यह मण्डल 'कृत्तिका मण्डल' के .ठीक उत्तर में करीब 20 अंश पर दिखाई देता है।

(iv) ब्रह्म मण्डल (Aurigal) – ययाति मण्डल के .ठीक पूर्व की ओर करीब 15 अंश की दूरी पर 'ब्रह्म मण्डल' है। इसके अन्य भारतीय नाम 'काल पुरुष' तथा 'रथी' भी हैं। इसका सबसे चमकीला सितारा 'ब्रह्म हृदय' (Capella) है जो प्रथम श्रेणी का सितारा है। इसे 'अल्का ऑरिगे' भी कहते हैं। यह सूर्य से 150 गुना तेजस्वी है तथा पृथ्वी से 42 प्रकाश वर्ष दूर है। इस ब्रह्म हृदय के पूर्व का सितारा 'गालप' कहलाता है! गालप के दक्षिण का सितारा 'प्रजापति' है तथा सबसे दक्षिण का 'अग्नि' कहलाता है। वृष राशि के अन्तिम सितारे से यदि एक सीधी रेखा खींची जाए तो वह 'अग्नि' सितारे से मिलेगी तथा 'रोहिणी' नक्षत्र से दूसरी सीधी रेखा खींची जाय तो वह इससे नीचे की ओर के सितारे से मिलेगी जिसे 'वृषभ' कहते हैं। यह 'ब्रह्म हृदय' सितारा 46 अंश उत्तरी अक्षांश पर दिखाई देता है तथा 28 फरवरी को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है। 'प्रजापति' 7 फरवरी को 'याम्योत्तर रेखा' पर आता है।

(v) तिमि मण्डल (Cetus) – इसे 'जलकेतु मण्डल' भी कहते हैं। यह मेष राशि से 30 अंश दक्षिण में दिखाई देता है तथा मेष राशि के साथ ही 'याम्योत्तर रेखा' पर आता है। इसका एक सितारा 'विराध' (Algol) मानचित्र संख्या 1 में विषुवत रेखा के पास दिखाया गया है तथा दूसरा सितारा मानचित्र संख्या 4 में 15 अंश दक्षिणी अक्षांश पर दिखाया गया है जिसे 'मीरा' (Mera) कहते हैं। ये दोनों सितारे अधिक तेजस्वी हैं।

(vi) वैतरणी मण्डल (Eradani) – यह एक विस्तृत तारामण्डल है जिसका आरम्भ 'मृग मण्डल' के पश्चिम से विषुवत रेखा के पास से होकर दक्षिण-पश्चिम में बढ़ता हुआ 58 अंश दक्षिणी अक्षांश तक चला गया है। इसका अन्तिम सितारा 'नदी मुख' या 'वैतरणी अन्त' (Archerner) कहलाता है। यह

सितारा दक्षिणी आकाश के मानचित्र संख्या 6 में दिखाया गया है। यह भी प्रथम श्रेणी का सितारा है जो सूर्य से 280 गुना तेजस्वी है तथा पृथ्वी से 70 प्रकाश वर्ष दूर है। यह 7 दिसम्बर को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होना है। राजस्थान से यह दिखाई नहीं देगा।

(vii) गृद्ध मण्डल (Phoenix) — इसे 'काक भुशुण्डि' भी कहते हैं। यह रेवती नक्षत्र के ठीक दक्षिण में जयपुर के अक्षांश से करीब 70 अंश दक्षिण में दिखाई देता है। इसका आधा भाग मानचित्र संख्या 1 में तथा आधा भाग मानचित्र संख्या 4 में दिखाया गया है। यह 21 नवम्बर को रात्रि को 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है।

(viii) शशक मण्डल (Lepus) — मृग मण्डल के 'वाणरज' सितारे के दक्षिण में करीब 15 अंश की दूरी पर यह मण्डल दिखाई देता है। इसमें छः सितारे है जो मन्द प्रकाश वाले हैं। मानचित्र में 20 अंश दक्षिण अक्षांस पर इसकी स्थिति दिखाई गई है। स्वच्छ रात्रि में इन्हें देखा जा सकता है। यह भी 'मृग मण्डल' के साथ ही 28 जनवरी को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर आता है।

(x) कपोत मण्डल (Columba) — शशक मण्डल के दक्षिण में 15 अंश की दूरी पर 'कपोत मण्डल' है। इसमें तीन सितारे एक त्रिभुज-सी आकृति बनाते हैं। यह भी 'मृग मण्डल' के साथ ही 'याम्योत्तर रेखा' पर आता है।

(xi) श्वान मण्डल (Canis Major) — 'मृग मण्डल' के दक्षिण-पूर्व में यह मण्डल है जिसका सबसे चमकीला सितारा 'लुब्धक' (Sirius) है जो आकाश में सबसे चमकीला है। यह भी प्रथम श्रेणी का सितारा है जिसकी तेजास्विता सूर्य से 30 गुनी है। यह पृथ्वी से 86 प्रकाश वर्ष दूर है। मानचित्र में यह 15 अंश दक्षिणी अक्षांश तथा 85 अंश देशान्तर पर दिखाया गया है। यह जयपुर के अक्षांश से 42 दक्षिण में दिखाई देता है। 17 फरवरी को रात्रि 9 बजे यह 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है। इसका थोड़ा-सा भाग मानचित्र संख्या 2 में दिखाया गया है। इस श्वान मण्डल के अन्य भारतीय नाम 'मृग व्याघ मण्डल' तथा 'महाश्वान मण्डल' भी हैं।

यह 'लुब्धक' एक युगल सितारा है। इसका जोड़ीदार सितारा 'वामन तारा' (Dwarb Star) है जिसका घनत्व 50,000 है। पृथ्वी पर पाये जाने वाला सबसे भारी द्रव्य प्लेटिनम है जिसका घनत्व 21.4 है, सोने का घनत्व 19.5 है तथा शीशे का 11.0 है। इनकी तुलना में इस वामन तारे का घनत्व कितना अधिक है। अंगूठी में रखे जाने वाले नग के बराबर इसके टुकड़े का भार 8 मन होता है। यदि 10 सेर पानी आने वाली बाल्टी में इसकी मिट्टी भर दी जाय तो इसका वजन 225 टन होगा।

शीत ऋतु के इन तीन महीनों में मध्य आकाश के इन 10 तारामण्डलों को देखकर पहचाना जा सकता है।

राशियों तथा नक्षत्रों के अन्तर्गत मेष, वृष, कृत्तिका, मृग तथा मिथुन का वर्णन पहले किया जा चुका है। इस प्रकार कुल 15 तारामण्डल इसी ऋतु में एक ही समय रात्रि 9 बजे देखे जा सकते हैं।

(2) बसन्त ऋतु के तारामण्डल—मानचित्र संख्या 2 में बसन्त ऋतु के तारामण्डल दिखाये गये हैं जो 21 फरवरी से 21 मई के मध्य रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर आते हैं। इनमें मुख्य-मुख्य तारामण्डल निम्नानुसार हैं—

(i) पुलोमा मण्डल (Lynx) – 'ब्रह्म मण्डल' के पूर्व में 105 अंश देशान्तर तथा 50 अंश उत्तरी अक्षांश पर मानचित्र में यह तारामण्डल दिखाया गया है। इसे 'विडाल मण्डल' भी कहते हैं। इसका थोड़ा-सा भाग उत्तरी आकाश के तारामण्डलों में किया गया है। यह 7 मार्च को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर दिखाई देता है तथा जयपुर के अक्षांश के शिरोबिन्दु से 20 अंश उत्तर में रहता है। यह पुनर्वसु नक्षत्र के ठीक उत्तर में दिखाई देता है।

(ii) शुनि मण्डल (Canis Minor) – 'मिथुन राशि' के दक्षिण के तारों के पूर्व में एक चमकीला सितारा दिखाई देता है जिसके पास ही एक मन्द सितारा है। ये दोनों सितारे मिलकर 'शुनि मण्डल' कहलाते हैं। इस चमकीले सितारे को 'प्रभास' (Procyon) कहते हैं। यह भी प्रथम श्रेणी का सितारा है जिसकी तेजस्विता सूर्य से 7 गुनी है तथा यह पृथ्वी से 11 प्रकाश वर्ष दूर है। यह 8 अंश उत्तरी अक्षांश तथा 105 अंश देशान्तर पर दिखाई देता है। जयपुर से यह 28 फरवरी को रात्रि 9 बजे शिरोबिन्दु से 20 अंश दक्षिण में दिखाई देता है। इसका दूसरा छोटा सितारा 'अधारा' (Adhara) कहलाता है।

(iii) नौका मण्डल (Argo Navis) – 'मिथुन राशि' के दक्षिण में 70 अंश की दूरी पर 'नौका मण्डल' दिखाई देता है। यह मानचित्र संख्या 1 व 2 में तथा 6 में दिखाया गया है। इसका आकार बड़ा विस्तृत है। यह 40 अंश दक्षिण अक्षांश से 70 अंश दक्षिणी अक्षांश तथा 85 अंश देशान्तर तक फैला है। इसे 'नौका पुंज' (Argo या Argus) भी कहते हैं। इसका सबसे चमकीला सितारा 'अगस्त्य' (Canopus) है जो 75 अंश देशान्तर तथा 53 अंश दक्षिणी अक्षांश के पास स्थित है। यह प्रथम श्रेणी का सितारा है जो सूर्य से 1900 गुना तेजस्वी है तथा पृथ्वी से 100 प्रकाश वर्ष दूर है। भारतीय ज्योतिषियों को प्राचीन काल से इसका ज्ञान था। यह सितारा अक्टूबर मास में सूर्यास्त के समय पूर्व में उदय होता है। भारत में यह

समय वर्षा ऋतु की समाप्ति का है अत: इसका उदय होना वर्षा के अन्त का सूचक है। तुलसी दास जी ने लिखा है, *"उदित अगस्त्य पथ जल शोषा, जिमि लोभहि शोषे संतोषा।"* यह सितारा 7 फरवरी को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा जयपुर के अक्षांश से 80 अंश दक्षिण में दिखाई देता है।

(iv) वासुकी मण्डल (Hydra) – यह मण्डल बड़े विस्तार में दिखाई देता है। कर्क मण्डल के दक्षिण में करीब 20 अंश की दूरी पर पाँच सितारों का एक समूह है जो इसका मुँह है तथा इसकी दुम 195 अंश देशान्तर तथा 25 अंश दक्षिणी अक्षांश तक चली गई है जिसे मानचित्र संख्या 2 एवं 3 में दिखाया गया है। कुछ ज्योतिषी 'कर्क मण्डल' को भी 'वासुकी मण्डल' में ही मानते हैं। इसके अन्य भारतीय नाम 'जलासर्प' तथा 'जलिका' भी है। इसका मुँह वाला भाग 14 मार्च को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा जयपुर के अक्षांश से 20 अंश दक्षिण में दिखाई देता है।

बसन्त ऋतु में उपरोक्त 4 तारामण्डल तथा कर्क सिंह तथा कन्या राशियाँ एवं नक्षत्रों के अन्तर्गत हस्तमण्डल इस प्रकार एक ही समय में 8 तारामण्डल देखे जा सकते हैं।

(3) ग्रीष्म ऋतु के तारामण्डल—मानचित्र संख्या 3 में ग्रीष्म ऋतु में दिखाई देने वाले तारामण्डल दिखाये गये हैं जिनका विस्तार 180 अंश देशान्तर से 270 अंश देशान्तर तक है। इसमें तुला, वृश्चिक तथा धनु राशियाँ तथा नक्षत्रों के अन्तर्गत भूतेश मण्डल का वर्णन पहले किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त इस ऋतु में 21 मई से 21 अगस्त तक निम्न 6 तारामण्डल और दिखाई देते हैं। इस प्रकार इस ऋतु में 10 तारामण्डलों को देखा जा सकता है।

(i) नराश्य मण्डल (Centaurus) – यह तारामण्डल हस्त तथा चित्रा नक्षत्र के दक्षिण में वासुकी मण्डल के नीचे है जो मानचित्र संख्या 2 तथा 3 में 45 अंश दक्षिणी अक्षांश पर दिखाया गया है। यह मण्डल मानचित्र संख्या 6 में 60 अंश दक्षिणी अक्षांश तक फैला हुआ है। इसके अन्य भारतीय नाम 'किन्नर' तथा 'बड़वानल' भी हैं। इसका सबसे चमकीला सितारा 'जय' (Alpha Centauri या Proxinea Centauri) है जो 61 अंश दक्षिणी अक्षांश पर दिखाई देता है। यह हमारी पृथ्वी से सबसे समीप का सितारा है जो यहाँ से 4.3 प्रकाश वर्ष दूर है। हमारे सौर-मण्डल के अन्तिम ग्रह 'यम' और इसके बीच का स्थान रिक्त है जहाँ कोई आकाशीय पिंड नहीं है। यह प्रथम श्रेणी का सितारा है जिसकी तेजस्विता सूर्य से 1.3 गुनी है। यह 16 जून को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा जयपुर

के अक्षांश से 87 अंश दक्षिण में दिखाई देता है किन्तु इसे देखना कठिन होता है। दक्षिण भारत से यह स्पष्ट दिखाई देता है।

इसी 'जय' के पास दूसरा चमकीला सितारा है जिसे 'विजय' (Beta Centauri) कहते हैं। यह भी प्रथम श्रेणी का सितारा है जिसकी तेजस्विता सूर्य से 1400 गुना है तथा सूर्य से 190 प्रकाश वर्ष दूर है। यह 7 जून को रात्रि को 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है।

(ii) सिंहक मण्डल (Lepus) – इस नराश्य मण्डल के पूर्व में तथा तुला राशि के दक्षिण में मानचित्र में 210 अंश देशान्तर तथा 50 अंश दक्षिणी अक्षांश के पास यह तारामण्डल दिखाया गया है। इसमें 4 सितारे हैं जो मन्द प्रकाश वाले हैं। यह 23 जून को रात्रि को 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा जयपुर के अक्षांश से 75 अंश दक्षिण में दिखाई देता है।

(iii) सुनीति मण्डल (Coronis) – मानचित्र संख्या 3 में 'भूतेश मण्डल' के पूर्व में 7 सितारों का अर्द्ध वृत्ताकार एक तारामण्डल दिखाया गया है जिसे 'सुनीति मण्डल' कहते हैं। यह 225 अंश देशान्तर तथा 30 अंश उत्तरी अक्षांश पर स्थित है। इसमें एक सितारा अधिक चमकीला है जिसे 'उत्तर किरीट' (Corona Borealis) कहते हैं। अन्य सितारे सामान्य प्रकाश वाले हैं। यह मण्डल बीकानेर के अक्षांश से शिरोबिन्दु पर दिखाई देता है तथा 28 जून को रात्रि को 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है।

(iv) शौरी मण्डल (Hercules or Dosanius) – इस 'सुनीति मण्डल' के पूर्व में 6 बड़े आकार में फैला 'शौरी मण्डल' है जो मानचित्र में 240 अंश देशान्तर तथा 30 अंश अक्षांश पर दिखाया गया है। इसके अन्य भारतीय नाम 'दशानन मण्डल', 'भीम मण्डल' तथा 'द्वितीय मिथुन' भी हैं। यह 20 अंश उत्तरी अक्षांश से 50 अंश उत्तरी अक्षांश तक फैला है। यह 21 जुलाई को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा बीकानेर आदि के अक्षांशों से शिरोबिन्दु पर दिखाई देता है।

(v) बीणा मण्डल (Lyrae) – शौरी मण्डल के पूर्व में पाँच सितारों का यह मण्डल 'बीणा मण्डल' कहलाता है जिसकी आकृति बीणा के समान है। मानचित्र में यह 270 अंश देशान्तर तथा 35 अंश अक्षांश पर दिखाया गया है। इसके उत्तर की ओर का सितारा सबसे चमकीला है जिसे 'अभिजित' (Vega) कहते हैं। भारतीय ज्योतिष में इसे भी 28वाँ नक्षत्र माना जाता है। यह नक्षत्र 38 अंश उत्तरी अक्षांश पर दिखाई देता है जो 14 अगस्त को रात्रि को 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा

जयपुर आदि के अक्षांशों के शिरोबिन्दु से 10 अंश उत्तर में दिखाई देता है। यह भी प्रथम श्रेणी का सितारा है जो सूर्य से 63 गुना तेजस्वी है तथा पृथ्वी से 27 प्रकाश वर्ष दूर है। आज से 12000 वर्ष पूर्व हमारी पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव इस 'अभिजित' नक्षत्र की ओर था जो आज 'ध्रुव तारे' की ओर है तथा 12000 वर्ष बाद पुनः इसी ओर होगा। उस समय इसी को 'ध्रुव तारा' माना जाएगा।

(vi) सर्पमाल मण्डल (Ophiucus) – इसका अन्य नाम 'सर्पधर' भी है। यह बड़े आकार में फैला है जो मानचित्र में संख्या 3 के मध्य भाग में दिखाया गया है। यह 'शौरी मण्डल' के दक्षिण में फैला है। इसका मुँह 'सुनीति मण्डल' के दक्षिण में करीब 5 अंश की दूरी पर है जिसमें 4 सितारे हैं। यह 7 जुलाई को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा उदयपुर, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा आदि के अक्षांशों से शिरोबिन्दु पर दिखाई देता है।

(4) पतझड़ ऋतु के तारामण्डल—मानचित्र संख्या 4 में पतझड़ ऋतु में दिखाई देने वाले 9 तारामण्डल दिखाये गये हैं जिनमें मकर, कुंभ और मीन राशियाँ तथा नक्षत्र मण्डल के अन्तर्गत 'गरुड', 'कनिष्ठा' तथा 'भाद्रपद वर्ग' का वर्णन पहले किया जा चुका है। शेष तीन मण्डलों का वर्णन नीचे किया जा रहा है।

(i) हंस मण्डल (Cygnus) – 'बीणा मण्डल' के पूर्व की ओर 25 अंश की दूरी पर 'हंस मण्डल' है जो मानचित्र में 290 अंश देशान्तर तथा 40 अंश उत्तरी अक्षांश पर दिखाया गया है। इसकी आकृति उड़ते हंस जैसी है। इसे 'खगेश मण्डल' तथा 'राजहंस मण्डल' भी कहते हैं। इसके उत्तर की ओर वाला सितारा 'हंस पुच्छ' (Deneb) कहलाता है। यह इस मण्डल का सबसे चमकीला एवं प्रथम श्रेणी का सितारा है जो सूर्य से 4800 गुना तेजस्वी है तथा पृथ्वी से 400 प्रकाश वर्ष दूर है। यह 45 अंश उत्तरी अक्षांश पर दिखाई देता है तथा 17 सितम्बर को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है। यह जयपुर आदि अक्षांशों के शिरोबिन्दु से 20 अंश उत्तर में दिखाई देता है।

(ii) दक्षिण मीन (Pixes Australis) – कुंभ राशि के दक्षिण में 30 अंश की दूरी पर दो सितारों का यह 'दक्षिण मीन' मण्डल है जो मानचित्र में 330 अंश देशान्तर तथा 30 अंश दक्षिणी अक्षांश पर दिखाया गया है। इसे 'याम मत्स्य' भी कहते हैं। इसका एक सबसे चमकीला सितारा 'मीनास्य' या 'मत्स्य मुख' (Homalhant) है जो प्रथम श्रेणी का है। यह सूर्य से 16 गुना तेजस्वी है तथा पृथ्वी से 23 प्रकाश वर्ष दूर है। यह 21 अक्टूबर को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा जयपुर आदि के शिरोबिन्दु से 57 अंश दक्षिण में दिखाई देता है।

(iii) सारस मण्डल (Grus)—इस 'दक्षिण मीन' के 20 अंश दक्षिण में तीन सितारों का एक मण्डल है जिसे 'सारस मण्डल' कहते हैं। इसके अन्य नाम 'वक' तथा 'क्रौंच' भी है। मानचित्र में यह 320 अंश देशान्तर तथा 45 अंश दक्षिणी अक्षांश पर दिखाया गया है। यह 14 अक्टूबर को रात्रि को 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा जयपुर आदि के अक्षांशों से 70 अंश दक्षिण में दिखाई देता है। इसका एक चमकीला सितारा 'अलनेयर' (Alnair) है।

उत्तरी आकाश के तारामण्डल

मानचित्र संख्या 5 में 50 अंश उत्तरी अक्षाश से उत्तरी ध्रुव (90 अंश उत्तरी अक्षांश) तक के तारामण्डल दिखाये गये हैं। पृथ्वी की दैनिक गति के कारण ये सभी सितारे इस ध्रुव बिन्दु का चक्कर लगाते ज्ञात होते हैं तथा पृथ्वी की वार्षिक गति के कारण ये पूर्व से पश्चिम की ओर अपनी स्थिति बदलते ज्ञात होते हैं। मुख्य-मुख्य तारामण्डल निम्न हैं—

(1) लघु सप्तर्षि मण्डल (Ursa Minor)—यह तारामण्डल 75 अंश उत्तरी अक्षांश से उत्तरी ध्रुव तक फैला है जो मानचित्र में 225 अंश देशान्तर पर दिखाया गया है। इसके अन्य भारतीय नाम 'शिशुमार चक्र', 'लघु ऋक्ष' (Little Bear), 'ध्रुव मत्स्य' तथा 'ऋक्षिका' भी है। इसमें सात सितारे हैं जिनमें चार सितारे एक चतुर्भुज की आकृति बनाते हैं तथा तीन सितारे इसकी दुम बनाते हैं। इन चार सितारों में प्रथम दो सितारे 'जय' (Beta Ursa Minor) तथा 'विजय' (Gama Ursa Minor) हैं जो 210 अंश देशान्तर तथा 75 अंश अक्षांश पर दिखाई देते हैं। ये 21 जून को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होते हैं। उदयपुर के अक्षांश से 50 अंश उत्तर में दिखाई देते हैं। इसके दुम की ओर का अन्तिम सितारा 'ध्रुव तारा' (Pole Star) कहलाता है। इनमें 'जय' और 'विजय' अधिक चमकीले दिखाई देते हैं अन्य मन्द प्रकाश वाले हैं। अँधेरी स्वच्छ रात्रि में इन्हें देखा जा सकता है। 'जय' द्वितीय श्रेणी का सितारा है।

(2) ध्रुव तारा (Pole Star)—यदि पृथ्वी के उत्तरी-ध्रुव पर खड़े होकर देखें तो 'ध्रुव तारा' शिरोबिन्दु पर दिखाई देगा। विषुवत रेखा से देखने पर यह उत्तरी क्षितिज पर दिखाई देता है। दक्षिणी गोलार्द्ध से यह दिखाई नहीं देता है। उत्तरी गोलार्द्ध में जिस अक्षांश से देखा जाय यह क्षितिज से उतने ही अंश ऊँचा दिखाई देता है। जयपुर के अक्षांश से देखने पर यह क्षितिज से 27 अंश ऊँचा दिखाई देगा। यह ध्रुव तारा सदा पृथ्वी के भौगोलिक उत्तर की ओर ही दिखाई देता है जिससे इसका सहायता से दिशा ज्ञान किया जा सकता है। प्राचीन काल में यात्री इसी की
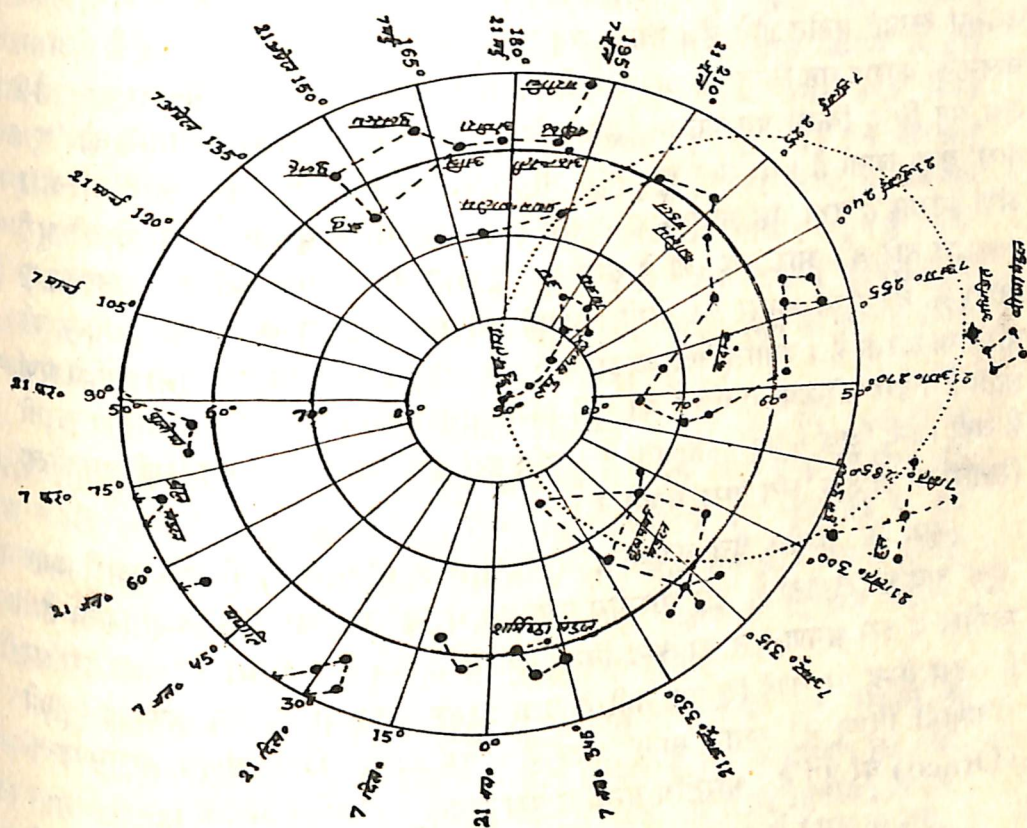
चित्र-22—उत्तरी आकाश के तारा मण्डल

सहायता से दिशा का ज्ञान करते थे। पृथ्वी की दैनिक गति के कारण सभी सितारे पूर्व में उदय होकर पश्चिम में अस्त होते ज्ञात होते हैं किन्तु यह सदा स्थिर रहता है। इसी स्थिरता के कारण इसका नाम महात्मा ध्रुव के नाम से 'ध्रुव तारा' रखा गया।

यह 'ध्रुव तारा' पृथ्वी से 47 (46.6) प्रकाश वर्ष दूर है तथा सूर्य से 2500 गुना तेजस्वी है। तेजस्विता में यह द्वितीय श्रेणी का सितारा है। इसका नाम 'ध्रुव तारा' इसलिए पड़ा कि यह पृथ्वी के ध्रुव के शिरोबिन्दु पर दिखाई देता है। 'ध्रुव' (Polaris) एक ऐसा गणितीय बिन्दु है जिसके चारों ओर आकाश के सभी नक्षत्र चक्कर लगाते प्रतीत होते हैं। किन्तु यह 'ध्रुव' भी कोई स्थिर बिन्दु नहीं है। अयन चलन के कारण यह बिन्दु भी आकाश में सितारों कें मध्य धीरे-धीरे चलता रहता है। जब यह बिन्दु किसी प्रकाशवान सितारे के समीप होता है तो उस सितारे को 'ध्रुव तारा' कहा जाता है। वर्तमान ध्रुव तारा भी .ठीक खगोलीय ध्रुव पर नहीं है बल्कि 1 अंश हटकर है तथा यह भी एक छोटे वृत्त (1 अंश में) में घूमता है। पृथ्वी की धुरी इस ध्रुव तारे की ओर बढ़ रही है तथा सन् 2102 ई० में यह धुरी 28 कला (1/2 अंश) के कोण के अन्तर पर होगी। पृथ्वी की धुरी सितारों के सापेक्ष खगोल की परिक्रमा करती है। ज्योतिर्विदों के अनुसार यह सम्पूर्ण परिक्रमा 25,800 वर्ष में पूर्ण होती है। इस परिक्रमा में पृथ्वी की धुरी खगोल के जिस बिन्दु की ओर निर्देश करती है वही बिन्दु 'ध्रुव स्थान' कहलाता है। यदि इस ध्रुव स्थान के समीप कोई चमकीला सितारा हो तो उसे 'ध्रुव तारा' कहते हैं।

सूर्य के 'क्रान्ति वृत्त का केन्द्र' (Ecliptic Centre) जिसके चारों ओर 'ध्रुव' चक्कर लगाता है उसे भारतीय ज्योतिष में 'कदम्ब' या 'मेरु' कहा जाता है। खगोल के इस भ्रमण-वृत्त का केन्द्र बिन्दु सूर्य के क्रान्ति वृत से 90 अंश की दूरी पर है। इस केन्द्र पर कोई सितारा नहीं है तथा इसके आकाश का रंग कृष्ण है। यही शेषशायी विष्णु का स्थान माना जाता है। इस केन्द्र को 'कालिय तारामण्डल' (Draco) घेरे हुए है। भारतीय ग्रन्थों में इस रूपक का विशेष अर्थ है।

ध्रुव के घूमने के कारण भिन्न-भिन्न समयों में भिन्न-भिन्न सितारे इसकी सीध में आते रहते हैं जिससे उन्हीं को 'धवु तारा' कहा जाता है। मानचित्र संख्या 5 में 'कालिय कदम्ब' तथा वृत्ताकार मार्ग में ध्रुव के घूमने का मार्ग दिखाया गया है। इसके अनुसार 2780 ई० पू० में 'प्रथम कालिय' (Alpha Draconis) नामक सितारा ध्रुव के समीप था जिससे इसी को 'ध्रुव तारा' कहा जाता था। यह समय मिश्र के पिरामिडों का काल था। उस समय से 250 वर्ष तक वह इसके समीप रहा। 2000 ई० पू० से 500 ई० पू० तक कोई भी सितारा ध्रुव के समीप नहीं था। 1300

ई० पू० में एक सितारा ध्रुव के समीप आया था। किन्तु वह भी 5 अंश दूर था। आज के 2500 वर्ष पूर्व 'लघु सप्तर्षि' तारामण्डल के 'जय' सितारे के समीप खगोल का उत्तर ध्रुव था तथा **'विष्णु पुराण'** लिखने के समय वर्तमान 'ध्रुव तारा' खगोलीय ध्रुव की सीध में आ गया। **'विष्णु पुराण'** में इसका उल्लेख है। अब 12000 वर्ष बाद यह 'ध्रुव' 'बीणा तारामण्डल' के 'अभिजित' नक्षत्र की ओर होगा। उस समय 'अभिजित नक्षत्र' ध्रुव तारा कहलाएगा।

(3) कालिय मण्डल (Draco)—लघु सप्तर्षि के चारों ओर 'कालिय मण्डल' है। इसकी आकृति कुंडली मारे हुए सर्प जैसी है इसी कारण से इसे 'कालिय' कहा गया है। इसके अन्य भारतीय नाम 'शेषनाग', 'अजगर' तथा 'अनंत मण्डल' भी हैं। इसके पाश्चात्य नाम 'ड्रेको' या 'ड्रेगन' (Dragon) हैं। भारतीय संस्कृति में शेषनाग को अनन्त का प्रतीक माना जाता है। उत्तर दिशा में भगवान विष्णु का स्थान माना जाता है तथा शेषनाग भगवान विष्णु का आधार स्थान है। इसी की कुंडली के मध्य में सूर्य के क्रान्ति वृत्त का केन्द्र है जिसे 'कदम्ब' (Pole of ecliptic) या 'मेरु' कहा जाता है। ध्रुव के चारों ओर लिपटे रहने के कारण समुद्र मन्थन के समय इससे रज्जु का कार्य लेने की कथा जुड़ी हुई है।

इस मण्डल का सबसे चमकीला सितारा 'प्रथम कालिय' (Alpha Draconis) है, जो इसकी पूंछ के पास मानचित्र में 195 अंश देशान्तर तथा 65 अंश उत्तरी अक्षांश पर दिखाया गया है। यह सितारा 7 जून को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है। इसकी आँख के पास चार चमकीले सितारे हैं जो मानचित्र संख्या 5 में 225 अंश देशान्तर तथा 52 अंश अक्षांश पर दिखाये गये हैं। ये सितारे 7 अगस्त को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होते हैं।

(4) सप्तर्षि मण्डल (Ursa Major)—लघु सप्तर्षि के 'जय' सितारे के दक्षिण में 'कालिय मण्डल' की दुम के पास तीन सितारे हैं जिनके दक्षिण की ओर सात तारों का एक मण्डल है जिसे 'सप्तर्षि मण्डल' कहते हैं जिसे मानचित्र में 65 अंश देशान्तर तथा 60 अंश अक्षांश के आसपास दिखाया गया है। इसकी आकृति भालू तथा हल के समान होने से इसे 'वृहद् ऋक्ष' (Great Bear) अथवा 'प्लो' (Plough) भी कहते हैं। चीन में इसे 'स्वर्ग का मन्त्रिमण्डल' कहा जाता है। ये सितारे सबसे चमकीले दिखाई देते हैं जिससे इन्हें आसानी से पहचाना जा सकता है। इस मण्डल का ज्ञान मनुष्य को प्राचीन काल से ही था। भारत में **'ऋक् संहिता'** में ऋक्ष (सप्तर्षि) की चर्चा है। इसमें सात तारे हैं। भारतीय ग्रन्थों में इनके नाम 'पुलह', 'क्रतु', 'पुलस्त्य', 'अत्रि', 'अंगिरा', 'वशिष्ठ' तथा 'मरीचि' है। ये सातों नाम सात

ऋषियों के नाम से रखे गये हैं। वशिष्ठ तारे के समीप एक मन्द तारा है जिसे 'अरुन्धति' (वशिष्ठ की पत्नी) कहते हैं। इन नामों को निम्न श्लोक से याद रखा जा सकता है—

मरीचिरंगिरा अत्रिः पुलस्त्य पुलह कृतुः।
सारुन्धति वशिष्ठाश्च एते सप्तर्षियः स्मृताः॥

इस तारामण्डल में 'कृतु' (Dubhe) सबसे चमकीला सितारा है। यह पृथ्वी से 90 प्रकाश वर्ष दूर है तथा मानचित्र में यह 62 अंश उत्तरी अक्षांश तथा 150 अंश देशान्तर पर दिखाया गया है। यह जयपुर के अक्षांश से 35 अंश उत्तर में दिखाई देता है तथा 21 अप्रैल को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है।

दूसरा सितारा 'पुलह' है जो पृथ्वी से 75 प्रकाश वर्ष दूर है। यह मानचित्र में 57 अंश उत्तरी अक्षांश तथा 150 अंश देशान्तर पर दिखाया गया है। यह जयपुर के अक्षांश से 30 अंश उत्तर में दिखाई देता है। यह भी 21 अप्रैल को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है। 'कृतु' और 'पुलह' के बीच 5 अंश का अन्तर है। इन दोनों सितारों को 'निर्देशक' (Pointer) कहते हैं। यदि इन दोनों को मिलाते हुए एक कल्पित रेखा उत्तर की ओर खींची जाय तो वह 'ध्रुव तारे' से जाकर मिलेगी। 'कृतु' से 'ध्रुव तारा' 28 अंश की दूरी पर है।

तीसरा सितारा 'पुलस्त्य' है जो पृथ्वी से 100 प्रकाश वर्ष दूर है तथा 57 अंश उत्तरी अक्षांश तथा 165 अंश देशान्तर पर मानचित्र में दिखाया गया है। यह जयपुर के अक्षांश से 30 अंश उत्तर में दिखाई देता है तथा 7 मई को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है।

चौथा सितारा 'अत्रि' है जो मानचित्र में 58 अंश उत्तरी अक्षांश तथा 165 अंश देशान्तर के पास दिखाया गया है। यह 7 मई को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा जयपुर के अक्षांश से 31 अंश उत्तर में दिखाई देता है।

पाँचवा सितारा 'अंगिरा' है। यह भी 58 अंश उत्तरी अक्षांश पर ही दिखाई देता है। यह 21 मई को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है। यह 'अत्रि' से पश्चिम में 5 अंश की दूरी पर दिखाई देता है।

इसका छठवाँ सितारा 'वशिष्ठ' है जो मानचित्र में 190 अंश देशान्तर तथा 58 अंश उत्तरी अक्षांश पर दिखाया गया है। यह पृथ्वी से 80 प्रकाश वर्ष दूर है। इसके पास ही एक छोटा सितारा दिखाई देता है जिसे 'अरुन्धति' कहते हैं। यह वशिष्ठ से 90 दिन दूर है। यह 17 जून को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा जयपुर के अक्षांश से 31 अंश उत्तर में दिखाई देता है।

इस मण्डल का अन्तिम सितारा 'मरीचि' (Benetnasch) है जो मानचित्र में 190 अंश देशान्तर तथा 50 अंश उत्तरी अक्षांश पर दिखाया गया है। यह जयपुर के अक्षांश से 23 अंश उत्तर में दिखाई देता है तथा 7 जून को 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है।

इस सप्तर्षि मण्डल की सहायता से अन्य सितारों को पहचाना जा सकता है जैसे—वशिष्ठ और मरीचि को मिलाते हुए एक सीधी रेखा दक्षिण की ओर खींची जाय तो वह 'स्वाति' नक्षत्र से जाकर मिलेगी, अत्रि और पुलस्त्य की सीध में 'मेघा' नक्षत्र है। रात्रि में दिशा एवं समय ज्ञान के लिए इस तारामण्डल का उपयोग किया जाता है।

(5) शर्मिष्ठा मण्डल (Bassiopeia) – सप्तर्षि मण्डल के विपरीत दिशा में 'शर्मिष्ठा मण्डल' दिखाई देता है जो मानचित्र में 0 अंश देशान्तर तथा 60 अंश उत्तरी अक्षांश पर दिखाया गया है। जब सप्तर्षि मण्डल पूर्व में उदय होता है तो यह पश्चिम में अस्त होता दिखाई देता है। यह 21 नवम्बर को रात्रि को 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा जयपुर के अक्षांश से 30 अंश उत्तर में दिखाई देता है। इसकी आकृति अंग्रेजी के W जैसी होती है जिसमें पाँच सितारे हैं। इसके अन्य भारतीय नाम 'काश्यपीय' और 'हिरण्याक्ष' भी हैं। इससे भी ध्रुव का ज्ञान होता है। इसके दो अन्तिम सितारों के मध्य से एक रेखा उत्तर की ओर बढ़ाई जाय तो वह ध्रुव तारे से जाकर मिलेगी।

(6) वृष पर्वा मण्डल (Cepheus) – शर्मिष्ठा के पश्चिम में 30 अंश की दूरी पर यह मण्डल दिखाई देता है जिसे मानचित्र में 315 अंश देशान्तर तथा 60 अंश उत्तरी अक्षांश पर दिखाया गया है। इसे 'कार्य मण्डल' भी कहते हैं। इसके दो सितारे 21000 ई० पू० तथा 19000 ई० पू० ध्रुव तारे रहे हैं। उस समय खगोल का उत्तरी ध्रुव इनके समीप था तथा अब 5500 तथा 7500 ई० में यह ध्रुव फिर इनके समीप होगा। यह तारामण्डल 7 अक्टूबर को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा जयपुर के अक्षांश से 35 अंश उत्तर में दिखाई देता है।

दक्षिणी आकाश के तारामण्डल

किसी भी समय अँधेरी स्वच्छ रात्रि में आकाश की देखने पर मध्य आकाश के सितारे तो स्पष्ट दिखाई देते हैं किन्तु क्षितिज के पास के सितारे वायुमण्डल की सघनता के कारण कम संख्या में तथा स्पष्ट नहीं दिखाई देते। केवल अधिक तेजस्वी सितारों को ही देखा जा सकता है। दर्शक की स्थिति का भी प्रभाव पड़ता है। पृथ्वी की गोलाई के कारण दर्शक अपने स्थान से 90 अंश तक का ही क्षितिज देख पाता है
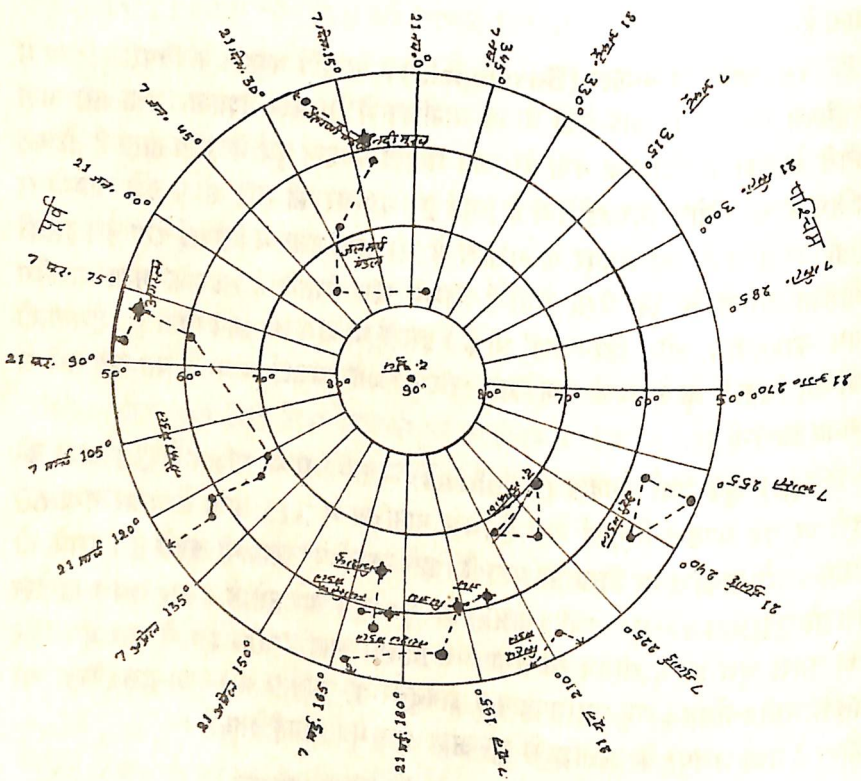
चित्र-23—दक्षिणी आकाश के तारा मण्डल

फिर पर्वत आदि की बाधाओं के कारण यह सीमा और छोटी हो जाती है। इस दृष्टि से राजस्थान के किसी स्थान से देखने पर ये दक्षिणी आकाश के तारामण्डल नहीं दिखाई देंगे। किन्तु दक्षिणी भारत अथवा कन्या कुमारी से इन्हें देखा जा सकता है। राजस्थान से 50 अंश दक्षिणी अक्षांश तक के ही सितारे देखे जा सकते हैं किन्तु जानकारी के लिए इनका वर्णन किया जा रहा है।

मानचित्र संख्या 6 में इनकी अक्षांशीय स्थिति दिखाई गई है जो 50 अंश दक्षिणी अक्षांश से दक्षिणी ध्रुव तक है। जयपुर 27 अंश उत्तरी अक्षांश पर होने से 60 अंश दक्षिणी अक्षांश के सितारे वहाँ से क्षितिज पर दिखाई देंगे। इसके आगे के सितारे क्षितिज से नीचे आ जाने से नहीं दिखाई देंगे। दक्षिणी आकाश के तारामण्डल निम्न प्रकार हैं—

(1) स्वास्तिक मण्डल (Cross)– पहले 'नराश्य मण्डल' के अन्तर्गत 'जय' तथा 'विजय' सितारों का वर्णन किया गया है जो 195 अंश देशान्तर तथा 60 अंश दक्षिणी अक्षांश पर मानचित्र संख्या 6 में दिखाया गया है। इन दोनों सितारों के ठीक पश्चिम में 25 अंश की दूरी पर 'स्वास्तिक मण्डल' है। मानचित्र में यह 190 अंश देशान्तर तथा 60 अंश दक्षिणी अक्षांस पर दिखाया गया है। इसे 'दक्षिणी क्रास' (Southern Cross) और 'क्रक्ष' (Crust) भी कहते हैं। इसका सबसे चमकीला सितारा 'त्रिशुंक' (Alpha crusis) है जो 63 अंश दक्षिणी अक्षांश पर दिखाई देता है। यह प्रथम श्रेणी का सितारा है जो सूर्य से 1200 गुना तेजस्वी है तथा पृथ्वी से 220 प्रकाश वर्ष दूर है। यह 7 मई को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है। जयपुर के अक्षांश से यह दक्षिण क्षितिज पर दिखाई देगा।

(2) दक्षिण त्रिकोण (Triangulum Australis) – 'जय' तथा 'विजय' के पूर्व में 30 अंश की दूरी पर यह त्रिकोण मण्डल है जिसे मानचित्र में 225 अंश देशान्तर तथा 70 अंश दक्षिणी अक्षांश पर दिखाया गया है। इसमें तीन सितारे एक त्रिकोण बनाते हैं। यह 7 जुलाई को रात्रि 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है। राजस्थान से यह नहीं दिखाई देगा।

(3) वेदी मण्डल (Ara) – इस दक्षिणी त्रिकोण के उत्तर में 10 अंश की दूरी पर 'वेदी मण्डल' है जिसे मानचित्र में 55 अंश दक्षिणी अक्षांश तथा 240 अंश देशान्तर पर दिखाया गया है। इसमें भी तीन सितारे हैं। ये 21 जुलाई को रात्रि को 9 बजे 'याम्योत्तर रेखा' पर होते हैं। जयपुर के अक्षांश से यह नहीं दिखाई देगा।

◆:◆:◆

11

सूर्य का पृथ्वी पर प्रभाव

(जीवन स्रोत, दिन-रात, ऋतु परिवर्तन, कलाएँ)

जीवन स्रोत

सूर्य इस पृथ्वी के निवासियों का जीवन स्रोत है। इसकी उपयोगिता मानव जीवन में सर्वोपरि है। सूर्य के ही कारण हमको गर्मी मिलती है, प्रकाश मिलता है, बादल बनते हैं, वर्षा होती है जिससे वनस्पति पैदा होती है, कृषि होती है जिनका उपयोग कर हम जिन्दा रहते हैं। पृथ्वी पर होने वाले कई परिवर्तन तथा घटनाएँ प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सूर्य के ही कारण होती हैं जैसे आँधी या तूफान का आना, चट्टानों का विखंडन, दिन-रात का बनना, ऋतु परिवर्तन आदि। मनुष्यों का रहन-सहन, वेशं-भूषा, सभ्यताएँ, शारीरिक एवं मानसिक कार्य क्षमता, खान-पान, रीति-रिवाज आदि पर भी सूर्य के ताप का ही प्रभाव पड़ता है। जलवायु की विभिन्नता के कारण संसार के विभिन्न कार्य-कलापों पर सूर्य का ही परोक्ष प्रभाव है। यदि सूर्य नष्ट हो जाय या उसका ताप कम हो जाय तो पृथ्वी के समस्त जीव तीन दिन में ही नष्ट हो जाय। सूर्य के इसी महत्व के कारण प्राचीन लोग इसकी उपासना करते थे। आर्यों की दिनचर्या ही सूर्योपासना से आरम्भ होती थी। मिश्र में भी सूर्योपासना का अधिक महत्व था।

दिन-रात का बनना

पृथ्वी गोल है जिससे सूर्य का प्रकाश उसके आधे भाग पर ही पड़ता है तथा आधे भाग में अन्धकार रहता है। पृथ्वी का जो भाग सूर्य के सामने होता है वहाँ दिन होता है तथा दूसरे अन्धकार वाले भाग में रात्रि होती है। चूँकि सूर्य स्थिर है एवं पृथ्वी अपनी धुरी पर 24 घंटे में एक बार घूम जाती है जिससे पृथ्वी का प्रत्येक भाग 24 घंटे में एक बार सूर्य के सामने आता है तथा दूसरी बार उसके विपरीत रहता है। इसी से दिन-रात होते हैं। पृथ्वी के 24 घंटे में एक बार घूमने के कारण ही दिन-रात की अवधि 24 घंटे मानी जाती है। पृथ्वी की इस दैनिक गति (आवर्तन) के कारण ही समय का अनुमान होता है। जहाँ सूर्य उदय होता हुआ दिखाई देता है वहाँ 'प्रातःकाल' होता है, जहाँ सूर्य क्षितिज से सबसे अधिक ऊँचाई पर होता है वहाँ 'मध्यान्ह' होता है तथा सूर्य जहाँ क्षितिज से नीचे डूबता दिखाई देता है वहाँ 'सन्ध्या'

होती है। पृथ्वी का आधा भाग सूर्य के सामने रहता है तथा आधा उसके विपरीत। इन दोनों भागों को विभाजित करने वाली रेखा को 'प्रकाश वृत्त' (Circle of illumination) कहते हैं। पृथ्वी के इसी आवर्तन के कारण देशान्तर रेखाएँ निर्धारित की गई हैं। पृथ्वी के गोल होने तथा उसके पश्चिम से पूर्व की ओर घूमने के कारण पूर्व में सूर्योदय पहले होता है तथा पश्चिम में बाद में। जिन स्थानों पर सूर्योदय या मध्यान्ह एक साथ होता है उसे एक 'देशान्तर रेखा' कहते हैं।

सारी पृथ्वी को 360 अंश देशान्तर में बाँटा गया है। प्रत्येक देशान्तर अंश पर 4 मिनिट का अन्तर पड़ता है। पूर्वी देशान्तर का समय आगे तथा पश्चिमी देशान्तर का समय पीछे होता है। जैसे जापान में सूर्योदय एवं मध्यान्ह भारत से पहले होता है अतः वहाँ का समय भारत से आगे रहता है तथा लन्दन का पीछे। यदि भारत में मध्यान्ह को 12 बजे हैं तो जापान में सांयकाल 4.30 बजे होंगे तथा लन्दन में उस समय प्रातःकाल 6.30 ही हुए होंगे। अमेरिका में उस समय रात्रि होगी।

ऋतु परिवर्तन

यद्यपि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा सम गति से करती है किन्तु उसकी धुरी (Axis) कक्षा के धरातल पर लम्बवत् नहीं है बल्कि 66.5 के कोण पर झुकी हुई है। अपने परिक्रमण में इसका यह झुकाव सदैव एक ही ओर रहता है जिससे इस पर पड़ने वाली सूर्य की किरणों की स्थिति में अन्तर आता रहता है। सूर्य की किरणें कभी 'मकर रेखा' (23.5 दक्षिणी अक्षांश) पर लम्बवत् पड़ती हैं, कभी 'विषुवत रेखा' (0 अंश अक्षांश) पर तथा कभी 'कर्क रेखा' (23.5 उत्तर अक्षांश) पर। सूर्य की किरणें 22 दिसम्बर को मकर रेखा पर लम्बवत् पड़ती हैं। पृथ्वी की इस स्थिति को 'शरद् संपात' (Winter Solstice) कहते हैं। 22 दिसम्बर के पश्चात् ये किरणें उत्तर की ओर लम्बवत् पड़ना आरम्भ हो जाती हैं। इसे पृथ्वी की 'उत्तरायण स्थिति' (Aphelion) कहते हैं। पृथ्वी की यह उत्तरायण स्थिति 21 जून तक रहती है। 21 जून की सूर्य की किरणें 'कर्क रेखा' (23.5 उत्तरी अक्षांश) पर लम्बवत् पड़ती हैं। पृथ्वी की इस स्थिति को 'ग्रीष्म संपात' (Summer Solstice) कहते हैं। जब सूर्य उत्तरायण की स्थिति में होता है तो 21 मार्च को उसकी किरणें 'भूमध्य रेखा' (0 अंश अक्षांश) पर लम्बवत् पड़ती है। इस समय पृथ्वी पर दिन-रात बराबर (12-12 घंटे के) होते हैं। पृथ्वी की इस स्थिति को 'बसंत समरात्रि' (Spring Equinox) कहते हैं। 21 जून के बाद सूर्य की किरणें पुनः दक्षिण की ओर लम्बवत् पड़ना आरम्भ हो जाती हैं तथा 22 दिसम्बर तक यह दक्षिण की ओर ही बढ़ती रहती हैं। पृथ्वी की इस स्थिति को 'दक्षिणायन' (Perihelion) कहते हैं। दक्षिणायन की स्थिति में एक

बार फिर सूर्य की किरणें विषुवत रेखा पर लम्बवत् पड़ती हैं। इस स्थिति को 'पतझड़ समरात्रि' (Autumn Equinox) कहते हैं। पृथ्वी जब उत्तरायण में होती है तो इसकी गति धीमी होती है जिससे यह अपने उत्तरायण-पथ को 187 दिन में पूरा करती है। (21 मार्च से 23 सितम्बर तक) किन्तु दक्षिणायन-पथ (23 सितम्बर से 21 मार्च तक) में इसकी गति तीव्र हो जाती है जिससे यह पथ 178 दिन में ही पूरा हो जाता है। इसका कारण है कि पृथ्वी की कक्षा पूर्ण वृत ने होकर अण्डाकार है। सूर्य इसके .ठीक केन्द्र में न होकर कुछ हटकर स्थित है जिससे पृथ्वी अपनी परिक्रमा में कभी सूर्य के समीप आ जाती है तथा कभी यह दूर होती है। पृथ्वी 3 जनवरी को सूर्य के अधिक समीप होती है। उस समय सूर्य से इसकी दूरी 14 करोड़ 75 लाख किलोमीटर (9 करोड़ 13 लाख 49 हजार मील) ही रह जाती है तथा 4 जुलाई को यह सबसे दूर होती है। उस समय इसकी दूरी 15 करोड़ 25 लाख किलोमीटर (9
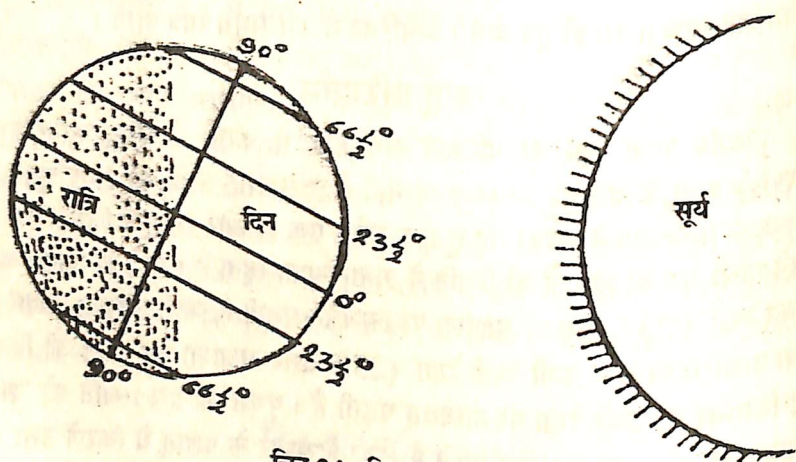
चित्र-24—दिन-रात का बनना

करोड़, 44 लाख, 55 हजार मील) हो जाती है। इस दूरी परिवर्तन का प्रभाव उसकी गति पर पड़ता है। जब पृथ्वी सूर्य के समीप होती है तो सूर्य का गुरुत्वाकर्षण बढ़ जाता है जिसका केन्द्र प्रसारी बल (Centrifugal Force) से सन्तुलन बनाये रखने के लिए उसकी गति तीव्र होती जाती है तथा सूर्य से दूर होने पर उसकी गति धीमी हो जाती है। जब सूर्य की किरणें दक्षिणी गोलार्द्ध में सीधी पड़ती जिससे वहाँ गर्मी की ऋतु होती है किन्तु उस समय ये किरणें उत्तरी गोलार्द्ध में तिरछी पड़ती है जिससे यहाँ शीत ऋतु होती है। इसके विपरीत जून में ये किरणें उत्तरी गोलार्द्ध में सीधी पड़ती है जिससे यहाँ गर्मी की ऋतु होती है किन्तु इस समय दक्षिणी गोलार्द्ध में शीत ऋतु होती है।
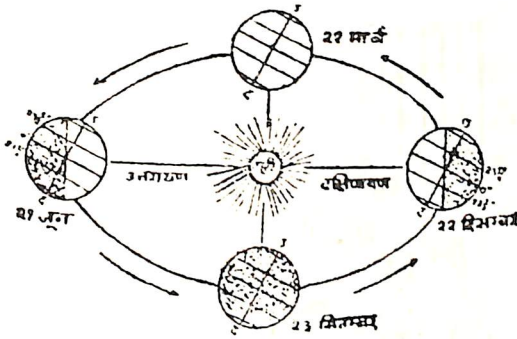
चित्र-25—ऋतु-परिवर्तन

सूर्य की किरणें लम्बवत् पड़ने से दिन की लम्बाई भी बढ़ जाती है जिससे पृथ्वी अधिक समय तक ताप ग्रहण करती है तथा सीधी किरणें पृथ्वी को अधिक गर्म करती है । इसी प्रकार तिरछी किरणें कम ताप देती हैं तथा दिन की लम्बाई घट जाती है जिससे पृथ्वी को कम ताप मिलता है । ऋतु परिर्वतन का यही कारण है ।

इसी सर्दी-गर्मी के परिवर्तन के कारण ही बादल बनते हैं, वर्षा होती है, हवाएँ चलती हैं, चट्टानों का विखंडन होता है जिससे कृषि के लिए मिट्टी प्राप्त होती है आदि कार्य इसी से होते हैं ।

पृथ्वी के इसी झुकाव के कारण 21 जून को नार्वे के उत्तरी भाग में (66.5 उत्तरी अक्षांश पर) अर्द्ध रात्रि को भी सूर्य दिखाई देता है जिसे 'अर्द्ध रात्रि का सूर्य' (Midnight Sun) कहते हैं । इसे देखने के लिए कई लोग जाते हैं । ध्रुवों पर तो छः महीने का दिन तथा छः महीने की रात्रि होती है । ऋतुओं पर स्थानीय परिस्थितियों का भी प्रभाव पड़ता है । जैसे पर्वत श्रेणियाँ, महासागरीय धाराएँ, समुद्र तल से ऊँचाई, प्रचलित हवाएँ आदि । किन्तु इनमें सूर्य की किरणों का ही सर्वाधिक महत्व है जिसका मानव जीवन, पशु पक्षी एवं वनस्पति पर प्रभाव पड़ता है ।

चन्द्रमा की कलाएँ (Phases of the Moon)

चन्द्रमा में स्वयं का प्रकाश नहीं है । वह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है तथा यह प्रकाश परावर्तित होकर पृथ्वी पर आता है । चन्द्रमा पर सूर्य का जितना प्रकाश पड़ता है उसका 7% वह प्रतिबिम्बित कर देता है । इसका प्रकाश सूर्य के प्रकाश से पाँच लाख गुना कम है । चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से चमकता है इसका ज्ञान प्राचीन आर्यों को भी था । **'तैत्तिरीय संहिता'** में लिखा है, *"सूर्य रश्मिश्चन्द्रमा गंधर्व"*
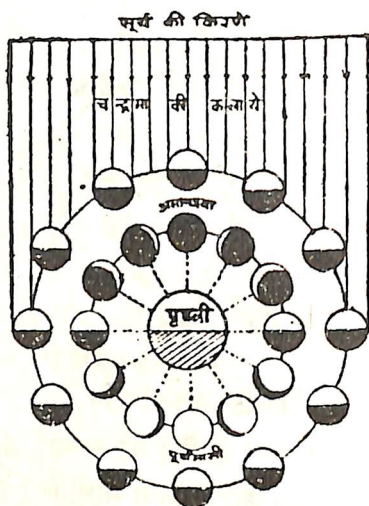
चित्र-25—चन्द्रमा की कलाएँ

अर्थात् चन्द्रमा का गन्धर्व सूर्य के प्रकाश से चमकता है। चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है जिससे उसका प्रकाशित भाग सूर्य की ओर रहने के कारण सदा घटता-बढ़ता दिखाई देता है। चन्द्रमा के प्रकाशित भाग के घटने बढ़ने को 'चन्द्रमा की कलाएँ' कहते हैं। पूर्णिमा से अमावस्या तक उसकी कलाएँ घटती रहती हैं तथा अमावस्या से पूर्णिमा तक ये बढ़ती रहती हैं। इन कलाओं का ज्ञान भारतीय ज्योतिषी **वराह मिहिर** को था। वराहमिहिर (505 ई०-567 ई०) में अपनी पुस्तक **'पंच सिद्धान्तिका'** में लिखा है कि—*"जैसे प्रतिदिन चन्द्रमा का स्थान सूर्य के सापेक्ष बदलता रहता है वैसे-वैसे उसका प्रकाश मय भाग बढ़ता जाता है, .ठीक उसी तरह जैसे अपराह्न में घड़े का पश्चिमी भाग अधिकाधिक प्रकाशित होता जाता है।"*

चन्द्रमा अपनी पृथ्वी-परिक्रमा में जब पृथ्वी और सूर्य के बीच आ जाता है तो उसे 'नव चन्द्र' (New Moon) कहते हैं। इस दिन अमावस्या होती है। अमावस्या के दिन चन्द्रमा सूर्य के साथ ही उदय होता है और उसी के साथ अस्त हो जाता है। और पृथ्वी के बीच में आ जाने के कारण उसका प्रकाशित भाग सूर्य की ओर रहता है तथा अन्धकार नहीं देता। चन्द्रमा की इस स्थिति को 'युति' (Conjunction) कहते हैं। युति की स्थिति में सूर्य के तीव्र प्रकाश के कारण भी वह दिखाई नहीं देता किन्तु चन्द्रमा की भाँति पृथ्वी भी चमकती है और चन्द्रमा की अपेक्षा पृथ्वी का प्रकाश वहाँ 40 गुना अधिक पड़ता है जिससे चन्द्रमा का वह अन्धकार वाला भाग भी कुछ

प्रकाशित रहता है। यदि सूर्य के प्रकाश को कम करके देखा जाय तो दिन के समय भी चन्द्रमा देख सकते हैं।

चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर पश्चिम से पूरब की ओर घूमता है जिससे वह प्रतिदिन 13 अंश पूर्व की ओर हटता जाता है। अमावस्या के दूसरे दिन वह सूर्य से 13 अंश पीछे रह जाता है तथा सूर्य अस्त होने के 52 मिनिट बाद अस्त होता है किन्तु 'गोधूलि प्रकाश' (Furilight) के कारण वह उस दिन भी नहीं दिखाई देता। द्वितीया को यह सूर्य से 26 अंश पूर्व में रह जाता है जिससे सूर्यास्त के बाद 1 घंटा 44 मिनिट तक इसे पश्चिम में देखा जा सकता है। इस समय इसका अधिकांश प्रकाशित भाग पृथ्वी के दूसरी ओर होता है तथा थोड़ा सा ही भाग पृथ्वी की ओर होता है जिससे हमें वह हँसिये का आकार का दिखाई देता है। इस चन्द्रमा को 'बाल चन्द्र' (Crescent Moon) कहते हैं। इस 'बाल चन्द्र' में भी सूर्य का प्रकाश नहीं पड़ रहा है वह भाग भी हल्का-सा दिखाई देता है जिसे 'बाल चन्द्र की भुजाओं में वृद्ध चन्द्र' (Old Moon in the arms of new moon) कहते हैं। यह प्रकाशित भाग पृथ्वी का ही प्रकाश है जो चार पाँच दिन बाद तक दिखाई देता है। बाल चन्द्र के समय उसका प्रकाशित भाग पश्चिम की ओर होता है तथा पूरब की ओर दोनों सींग (Horns) जैसे दिखाई देते हैं। ये सींग सदा सूर्य के विपरीत दिशा में होते हैं।

इसी प्रकार चन्द्रमा प्रतिदिन 13 अंश पूर्व की ओर हटता जाता है। सप्तमी या अष्टमी के दिन यह सूर्य और पृथ्वी के समकोण पर आ जाता है। जब सूर्य अस्त होता है तो चन्द्रमा सिर पर दिखाई देता है। प्रतिदिन ज्यों-ज्यों यह पूरब की ओर हटता जाता है इसका प्रकाशित भाग (कलाएँ) बढ़ता जाता है। सप्तमी या अष्टमी को आधा चाँद दिखाई देता है। सूर्य पश्चिम में होने के कारण उसका पश्चिम की ओर का भाग प्रकाशित दिखाई देता है। चन्द्रमा की इस स्थिति को 'सम कोणायान्तर अवस्था' (Quadrature) कहते हैं। अमावस्या के बाद की अष्टमी की स्थिति को 'प्रथम चतुर्थांश' (First Quarter) और पूर्णिमा के बाद की अष्टमी की स्थिति को 'अन्तिम चतुर्थांश' (Last Quarter) कहते हैं।

अष्टमी के बाद फिर यह प्रतिदिन पूरब की ओर बढ़ता जाता है जिससे उसका प्रकाशित भाग भी बढ़ता जाता है। पूर्णिमा को यह सूर्य के .ठीक विपरीत स्थिति में आ जाता है और पृथ्वी से उसका पूरा आधा भाग प्रकाशित दिखाई देता है। इसे 'पूर्ण चन्द्र' (Full Moon) कहते हैं। इस दिन जब सन्ध्या समय सूर्य अस्त होता है तो चन्द्रमा पूरब में उदय होता हुआ दिखाई देता है। पृथ्वी इस दिन चन्द्रमा और

सूर्य के बीच में आ जाती है। चन्द्रमा की इस स्थिति को 'युद्ध' (Opposition) कहते हैं।

पूर्णिमा के बाद प्रतिदिन चन्द्रमा 52 मिनिट देरी से उदय होता है तथा उसकी कलाएँ भी क्षीण होती जाती हैं। अष्टमी के दिन वह रात्रि को 12 बजे के लगभग उदय होता है तथा उसका आधा भाग ही प्रकाशित दिखाई देता है। यह प्रकाशित भाग इस स्थिति में पूरब की ओर रहता है। धीरे-धीरे वह पुनः 'युति' की स्थिति में आ जाता है और अदृश्य हो जाता है।

12

चन्द्रमा का पृथ्वी पर प्रभाव

(ग्रहण और ज्वार-भाटा)

ग्रहण क्यों होते हैं ?

चन्द्रमा पृथ्वी का एकमात्र उपग्रह है जो करीब 29.5 दिन में पृथ्वी की एक परिक्रमा पूरी कर लेता है। अपनी इस परिक्रमा में जब यह सूर्य तथा पृथ्वी के मध्य आता है तो सूर्य का प्रकाश इससे रुक जाता है तथा इसकी छाया पृथ्वी पर पड़ने से सूर्य का कुछ या सम्पूर्ण भाग दिखाई नहीं देता। इसे 'सूर्य ग्रहण' (Solar Eclipse) कहते हैं। ऐसी स्थिति अमावस्या को ही आती है, जब पृथ्वी और सूर्य के मध्य चन्द्रमा आता है इसलिए 'सूर्य ग्रहण' अमावस्या को ही होता है।

इसके विपरीत पूर्णिमा को चन्द्रमा घूमता हुआ पृथ्वी के दूसरी ओर आ जाता है जिससे चन्द्रमा और सूर्य के मध्य पृथ्वी आ जाती है तो पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ने से चन्द्रमा पर सूर्य का प्रकाश नहीं पड़ता जिससे उसका पूर्ण अथवा आंशिक भाग दिखाई नहीं देता। इसी को 'चन्द्र ग्रहण' (Lunar Eclipses) कहते हैं। ऐसी स्थिति पूर्णिमा को ही आती है इसलिए सभी 'चन्द्र ग्रहण' पूर्णिमा को ही होते हैं।

भारतीय मान्यता

भारत में ग्रहणों का ज्ञान वैदिक आर्यों को था। महाभारत काल में भी ग्रहणों की चर्चा मिलती है। ग्रहणों को अशुभ का चिन्ह माना जाता था। पुराणों में कहा गया है कि 'राहु' तथा 'केतु' नामक राक्षस इन्हें ग्रस लेते हैं जिससे ग्रहण होता है। ये 'राहु' तथा 'केतु' पृथ्वी तथा चन्द्रमा की छाया ही है जिससे ग्रहण होता है। **वराहमिहिर** ने **'सूर्य सिद्धान्त'** में बताया है कि *सूर्य का व्यास 6500 योजन है। सूर्य के नीचे आ जाने पर चन्द्रमा उसको बादल की तरह ढक लेता है। इस प्रकार 'सूर्य ग्रहण' होता है तथा पूर्व की ओर भ्रमण करता हुआ चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में प्रवेश कर जाता है तो 'चन्द्रमा का ग्रहण'* होता है।

वराहमिहिर के बाद **भास्कराचार्य द्वितीय** ने भी ग्रहण के कारणों का शुद्ध वर्णन किया है। सबसे पुराने चन्द्रग्रहण का वर्णन एक चीनी पुस्तक में मिलता है जिसमें 1136 ई० पू० में 29 जनवरी को हुए ग्रहण का वर्णन है। भारत के ज्योतिषी

पृथ्वी को स्थिर तथा सूर्य को उसकी परिक्रमा करता हुआ मानकर गणना करते हैं जब कि वास्तविकता यह है कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है किन्तु इससे गणित में कोई अन्तर नहीं आता। अत: भारतीय ज्योतिषी भी अपनी गणित विधि से गणना करके भविष्यवाणी कर देते हैं कि किस समय ग्रहण होगा ? किन-किन स्थानों पर कितने समय के लिए देखा जा सकेगा ? आदि जो सर्वथा शुद्ध होता है।

ग्रहणों का कारण

ग्रहण चन्द्रमा के जन्म के साथ ही आरम्भ हो गये। गणना द्वारा ज्ञात किया गया है कि पृथ्वी पर प्रति शताब्दी औसतन 154 चन्द्रग्रहण तथा 237 सूर्य ग्रहण होते हैं। ये ग्रहण हर पूर्णिमा तथा अमावस्या को नहीं होते। इसका कारण चन्द्रमा का परिक्रमण तल (Plane of orbit) पृथ्वी के परिक्रमण तल की सीध में नहीं है बल्कि कुछ झुका हुआ है। इसका औसत झुकाव 5 अंश 8 कला 45 विकला (5 डिग्री व 8.75 मिनिट) है। यह झुकाव कभी बढ़कर 5 अंश 20 कला का हो जाता है तथा कभी 4 अंश 57 कला का ही रह जाता है। इसी कारण से हर पूर्णिमा व अमावस्या को ग्रहण नहीं होता। किन्तु पृथ्वी के सूर्य की परिक्रमा करने के कारण चन्द्रमा का तल कम से कम वर्ष में दो बार सूर्य के केन्द्र की दिशा में आ जाता है और तभी सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी एक सीध में आ जाते हैं। यही ग्रहण के लिए उपयुक्त अवसर होता है। जब पृथ्वी और चन्द्रमा के ये परिक्रमण तल एक दूसरे को एक सीधी रेखा में काटते हैं तो इस रेखा के सिरों के मिलन बिन्दुओं को 'संपात' (Nodes) कहते हैं। जब चन्द्रमा पृथ्वी के समतल को काटकर ऊपर चढ़ता है तो उसे 'आरोही संपात' (Ascending Node) और जब नीचे उतरता है तो उसे 'अवरोही संपात' इस 'आरोही संपात' को 'राहु' तथा 'अवरोही संपात' को 'केतु' कहा गया है। ग्रहण होने के लिए 'राहु' या 'केतु' की उपस्थिति अनिवार्य है। अमावस्या के दिन सूर्य और चन्द्रमा एक ही राशि में होते हैं। उस दिन यदि 'केतु' भी उपस्थित हो तो सूर्य ग्रहण होगा तथा पूर्णिमा के दिन सूर्य तथा चन्द्रमा एक दूसरे को सप्तम राशि में देखते हैं अर्थात् विपरीत स्थिति में होते हैं। उस दिन चन्द्रमा की राशि में 'राहु' उपस्थित होने पर ही चन्द्र ग्रहण होगा। 'केतु' को चन्द्रमा की छाया तथा 'राहु' को पृथ्वी की छाया भी माना जाता है जिसमें प्रविष्ट होने पर ही ग्रहण होता है। पुराणों में 'राहु' और 'केतु' को राक्षस मानकर रूपक के साथ वर्णन किया गया है।

इन संपातों के आधार पर वर्षमें 2 ग्रहण होना अनिवार्य हैं तथा इनकी अधिकतम संख्या 7 है जिनमें 4 या 5 सूर्य ग्रहण तथा बाकी के चन्द्रग्रहण होते हैं। जब चन्द्रमा एक 'संपात' से चलकर पुन: उसी 'संपात' में लौट आता है तो इस अवधि

को 'संपात मास' कहते हैं । यह अवधि 27 दिन, 5 घंटे, 5 मिनिट और 35.8 सेकण्ड के बराबर होती है । इस हिसाब से 'संपात वर्ष' सौर वर्ष की तुलना में 18.62 दिन छोटा होता है । अत: सौर वर्ष के हिसाब से ग्रहण पीछे की ओर खिसकते जाते हैं जिससे सभी ऋतुओं में ग्रहण लगता है । इन ग्रहणों का एक चक्र 18 सौर वर्ष और 11 दिन में पूरा होता है । इस अवधि के बाद पुन: इनका वैसा ही क्रम दिखाई देता है । यदि 18.5 वर्ष (6585 दिन) की अवधि के सब ग्रहण ज्ञात हों तो आगे के ग्रहण ज्ञात किये जा सकते हैं ।

चन्द्र ग्रहण

चन्द्र ग्रहण पूर्णिमा को ही होता है जबकि चन्द्रमा और सूर्य के बीच पृथ्वी आ जाती है तो पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ने से उसका कुछ भाग अथवा पूरा चन्द्रमा दिखाई नहीं देता । इसकी को 'चन्द्रमा ग्रहण' कहते हैं ।

चूँकि सूर्य का व्यास 14 लाख किलोमीटर (8 लाख 66 हजार मील) है तथा पृथ्वी का व्यास 12,800 किलोमीटर (8000 मील) व दोनों के बीच की औसत दूरी 15 करोड़ किलोमीटर (9 करोड़ 30 लाख मील) है जिससे गणितीय नियमों के अनुसार पृथ्वी की छाया लगभग 13 लाख 76 हजार किलोमीटर (8 लाख 60 हजार मील) पड़ती है जबकि चन्द्रमा की पृथ्वी से औसत दूरी 3 लाख 82 हजार किलोमीटर (2 लाख 38 हजार मील) अत: सम्पूर्ण चन्द्रमा इस छाया में प्रविष्ट कर जाता है । पूरा चन्द्रमा प्रविष्ट होने पर 'पूर्ण चन्द्र ग्रहण' होता है किन्तु छाया के छोर से गुजरने पर 'खण्ड ग्रहण' होगा । चन्द्रमा की गति 3360 किलोमीटर (2100 मील) प्रति घंटा है । छाया के वृत्त की परिधि प्राय: 7040 किलोमीटर (4400 मील) होती है जिससे चन्द्रमा इस छाया को दो घंटे में पार करता है अत: चन्द्र ग्रहण की पूरी अवधि दो घंटे तक हो सकती है । चन्द्रमा जब घूमते हुए इस छाया से बाहर निकल जाता है तो ग्रहण समाप्त हो जाता है ।

पूर्ण ग्रहण में भी चन्द्रमा पर बिल्कुल अँधेरा नहीं हो जाता । इसका कारण भूमि का वायुमण्डल सूर्य के प्रकाश को इस प्रकार झुका देता है कि ग्रसित होने पर भी चन्द्रमा हल्के लाल रंग का दिखाई देता है । 'खण्ड ग्रहण' के समय पृथ्वी की छाया जो चन्द्रमा पर पड़ती है वह गोलाई लिये होती है जिससे यह ज्ञात होता है कि पृथ्वी गोल है । पृथ्वी कीं जो छाया चन्द्रमा पर पड़ती है उसके दो भाग होते हैं । एक तो 'प्रच्छाया' (Umbra) तथा दूसरी को 'उपच्छाया' (Penumbra) कहते हैं । जब चन्द्रमा 'प्रच्छाया' में प्रवेश करता है तो 'पूर्ण ग्रहण' होता है किन्तु 'उपच्छाया' में प्रवेश करने पर 'खण्ड ग्रहण' ही दिखाई देता है ।

सूर्य ग्रहण

सूर्य ग्रहण अमावस्या को ही होता है जबकि पृथ्वी और सूर्य के बीच चन्द्रमा आ जाता है तो चन्द्रमा की छाया पृथ्वी पर पड़ने से पृथ्वी के उस भाग से सूर्य का कुछ अंश अथवा पूर्ण सूर्य दिखाई नहीं देता। इसी को 'सूर्य ग्रहण' (Solar Eclipse) कहते हैं। चन्द्रमा गोल होने से उसकी छाया पृथ्वी पर सूचिकाकार पड़ती है तथा चन्द्रमा पृथ्वी से छोटा होने के कारण उसकी छाया भी छोटी पड़ती है जिससे वह छाया सम्पूर्ण पृथ्वी को नहीं ढक सकती। चन्द्रमा की छाया की लम्बाई केन्द्र से 3 लाख 70 हजार किलोमीटर (2,31,750 मील) होती है। इसके आगे चन्द्रमा की छाया नहीं पड़ती। किन्तु चन्द्रमा से पृथ्वी की औसत दूरी 3 लाख 82 हजार 400 किलोमीटर (2 लाख 38 हजार मील) है। यदि यही दूरी बराबर रहे तो चन्द्रमा की छाया कभी भी पृथ्वी पर नहीं गिर सकती किन्तु यह औसत दूरी है। चन्द्रमा का परिक्रमा पथ अंडाकार होने से चन्द्रमा और पृथ्वी के बीच की दूरी घटती बढ़ती रहती है जिससे छाया की अधिकतम लम्बाई 3,77,120 किलोमीटर (2,35,700 मील) तक हो जाती है। फिर चन्द्रमा से पृथ्वी की दूरी दोनों के केन्द्र से नापी जाती है जिससे पृथ्वी का धरातल उसके केन्द्र से 6400 कि०मी० (4000 मील) अधिक समीप आ जाता है जिससे चन्द्रमा की छाया पृथ्वी के धरातल पर पड़ने लगती है। इस छाया का वृत अधिकतम 297 कि०मी० (185 मील) तक हो जाता है इससे चौड़ी छाया पृथ्वी पर कभी नहीं पड़ती इस छाया के भी दो भाग होते हैं। 'प्रच्छाया' (Umbra) 'उपच्छाया' (Penumbra) जब पृथ्वी इसकी प्रच्छाया में प्रवेश करती हैं तो 'पूर्ण सूर्य ग्रहण' (Total Eclipse) होता है। इसे 'खग्रास' भी कहते हैं किन्तु जब पृथ्वी 'उपच्छाया' में से होकर निकल जाती है तो 'आंशिक सूर्य ग्रहण' (Partial Eclipse) ही होता है। इसे 'खण्ड ग्रहण' कहते हैं। चूंकि चन्द्रमा की छाया सम्पूर्ण पृथ्वी को नहीं ढक सकती अत: सम्पूर्ण पृथ्वी पर कभी भी सूर्य ग्रहण नहीं दिखाई देता।

पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी सदा समान नहीं रहती। जब यह दूरी अधिक हो जाती है। उस समय यदि पूर्ण सूर्यग्रहण हो तो चन्द्रमा कभी भी पूरे सूर्य को नहीं ढक सकता बल्कि उसके भीतर चूड़ी जैसी आकृति का दिखाई देता है। इसे 'वलय ग्रहण' (Annular Eclipse), 'सूक्ष्म ग्रहण' या 'कंकणाकृति ग्रहण' कहते हैं।

यदि चन्द्रमा का व्यास वर्तमान व्यास से 224 कि०मी० (140 मील) छोटा होता तो पृथ्वी पर उसकी छाया कभी भी नहीं पड़ती और 'खग्रास ग्रहण' कभी भी नहीं होता।
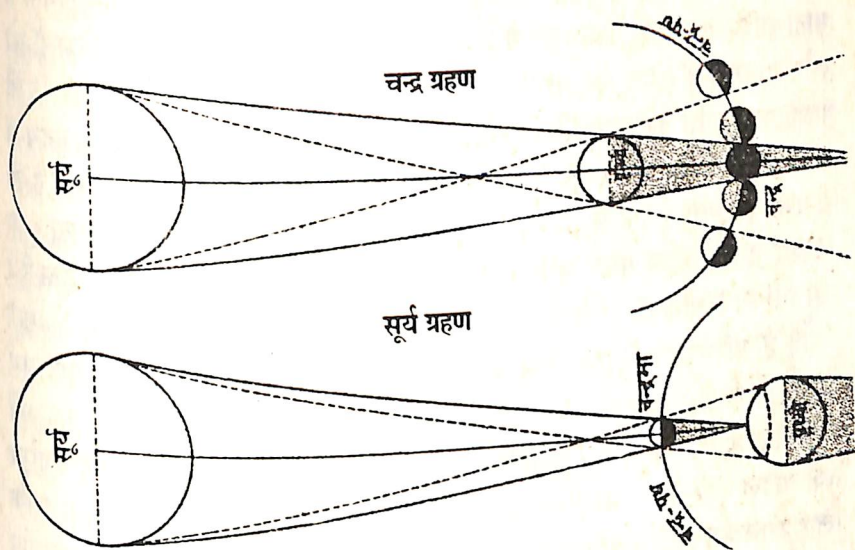
चित्र-27, 28—सूर्य ग्रहण (अमावस्या) एवं चन्द्र ग्रहण (पुर्णिमा)

पृथ्वी अपनी धुरी पर 24 घंटे में घूम जाती है। इसकी औसत गति 3360 कि०मी० (2100 मील) प्रति घंटा है। अत: विषुवत रेखा पर इस छाया की गति 1996 कि०मी० (1610 मील) प्रति घंटा होती है। अत: 297 कि०मी० (185 मील) की चौड़ी पट्टी को पार करने में पृथ्वी को 7 मिनिट 40 सेकण्ड से अधिक नहीं लगते। अत: पूर्ण सूर्य ग्रहण इस अवधि से कभी भी लम्बा नहीं होता। इसलिए इस ग्रहण का ज्योतिषियों के लिए अधिक महत्व है। किन-किन स्थानों पर पूर्ण ग्रहण दिखाई पड़ेगा उसका पता लगाकर ज्योतिषी अपने यन्त्रों को लेकर काफी समय पूर्ण वहाँ पहुँच जाते हैं व जब ग्रहण होता है तो अपने यन्त्रों की सहायता से वे सूर्य सम्बन्धी जानकारी एकत्र करते हैं। सूर्य रश्मियाँ, उसका परिमण्डल (Corona), तापमान आदि का अध्ययन इस समय अधिक अच्छा हो सकता है।

पूर्ण सूर्य ग्रहण का प्रभाव

पूर्ण सूर्य ग्रहण के अवसर पर पृथ्वी पर एक विचित्र एवं भयावह वातावरण उत्पन्न हो जाता है जिससे मनुष्य व पशु-पक्षी भयभीत से ज्ञात होते हैं। दिन के समय सूर्य रश्मियों के पृथ्वी पर पड़ना बन्द हो जाता है जिससे सूर्य ग्रहण के 10 मिनिट पूर्व ही एक अजीब सा अँधेरा छा जाता है जो रात्रि के अन्धकार से भिन्न प्रकार का होता है। दिन में भी आकाश के तारे दिखाई देने लगते हैं। आकाश एवं पृथ्वी विचित्र रंग की दिखाई देने लगती है। तापमान इतना कम हो जाता है कि ठंडक का अनुभव होने

लगता है। इस असमय के अन्धकार से फूलों की पंखुड़ियाँ भी बन्द होने लगती हैं मानों रात्रि आ गई हो। आकाश में चिमगादड़ उड़ने लगते हैं, पक्षी अपने घोसलों को लौटने लगते हैं। पशु भी भयभीत से ज्ञात होते हैं तथा सींग ऊपर उठाकर किसी भयानक आपत्ति का सामना करने को तैयार हों, ऐसे ज्ञात होते हैं। मनुष्य के हृदय में भी एक प्रकार का भय उत्पन्न होने लगता है। जब चन्द्रमा सूर्य को ढक लेता है तो चन्द्रमा का भाग स्याही से भी काला दिखाई देता है व चारों ओर प्रकाश आता हुआ दिखाई देता है। इस समय सूर्य का 'परिमण्डल' (Corona) साफ दिखाई देता है। इस विचित्र स्थिति का अध्ययन करने के लिए ज्योतिषी इनके फोटो लेते हैं, तापमान नापते हैं, परिमण्डल के द्वारा सूर्य के कई रहस्यों का पता लगाते हैं। यह पूर्ण सूर्य ग्रहण की थोड़ी-सी अवधि, जो करीब सात मिनिट के लगभग होती है तथा कई वर्षों बाद प्राप्त होती है, का ज्योतिषियों के लिए एक सुअवसर है। उस समय यदि दुर्भाग्य वश बादल छा गये या मौसम खराब हो गया तो सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है। इसके लिए आजकल कई ज्योतिषी वायुयान में उड़कर अधिक ऊँचाई से यह अध्ययन करते हैं जिससे बादलों की बाधा भी दूर की जा सके तथा खग्रास को वे अधिक समय तक देख सकें। सूर्य हमारे जन-जीवन, पशु-पक्षी एवं वनस्पति के लिए कितना महत्वपूर्ण है यह इससे भलीभाँति जाना जा सकता है। सूर्य रश्मियों के पृथ्वी पर नहीं पड़ने का प्रभाव मनुष्य के शरीर पर भी पड़ता है। उसकी पाचन क्रिया मन्द पड़ जाती है तथा वायुमण्डल में कई प्रकार के विषाणुओं की वृद्धि हो जाती है, शरीर में तापमान में कमी आ जाती है, रक्त प्रवाह शिथिल हो जाता है आदि। इस सूर्य ग्रहण को कोरी आँख से देखने पर आँखों की ज्योति भी नष्ट हो सकती है। इसलिए भारतीय धर्मों ने इस समय भोजन न करने एवं ग्रहणोपरान्त स्नान आदि का विधान किया है जिससे इन दुष्प्रभावों से बचा जा सके। धार्मिक आस्थाओं से जोड़कर इस समय दान-पुण्य का भी महत्व बताया है।

ज्वार-भाटा (Tides)

चन्द्रमा पृथ्वी का एक उपग्रह है जो पृथ्वी के सबसे समीप का पिंड है तथा यह 29.5 दिन में पृथ्वी की एक परिक्रमा पूरी करता है। इसी चन्द्रमा के कारण ही चन्द्र तथा सूर्य ग्रहण होते हैं। यदि यह उपग्रह न होता तो ग्रहण दिखाई नहीं देते। ग्रहणों के अलावा चन्द्रमा का सर्वाधिक प्रभाव समुद्र जल पर पड़ता है जिससे समुद्र का जल नियमित रूप से ऊपर उठता तथा नीचे गिरता है। इसी उठाव को 'ज्वार' (Hightide) तथा गिरने को 'भाटा' (Low Tide) कहते हैं। समुद्र के किनारे रहने वाले इनको आसानी से देख सकते हैं।

कारण—ज्वार-भाटे का मुख्य कारण चन्द्रमा एवं सूर्य का गुरुत्वाकर्षण है। आकाश के सभी पिंडों में गुरुत्वाकर्षण शक्ति है जो दूसरे पिंड को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। **सर आइजक न्यूटन** ने अपने नियम में बताया कि यह गुरुत्वाकर्षण शक्ति उस पिंड की मात्रा के अनुपात से एक दूसरे को आकर्षित करते हैं तथा दोनों के बीच की दूरी के अनुपात से यह आकर्षण कम होता जाता है। इस नियम के अनुसार चन्द्रमा पृथ्वी से छोटा है जिससे इसका गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी से कम है किन्तु यह पृथ्वी के समीप होने के कारण इसका प्रभाव सर्वाधिक होता है। दूसरी ओर सूर्य पृथ्वी से कई गुना बड़ा है जिससे उसका गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी से अधिक है किन्तु वह अधिक दूर होने से पृथ्वी पर उसका प्रभाव कम होता है। इन दोनों पिंडों के प्रभाव से ही पृथ्वी का जल इनकी ओर खिंच जाता है जिससे समुद्र में ज्वार-भाटा आता है।

चित्र-29—ज्वार-भाटा

दीर्घ ज्वार (Spring Tide)—अमावस्या के दिन जब सूर्य और चन्द्रमा एक ही ओर होते हैं तो दोनों की सम्मिलित गुरुत्वाकर्षण शक्ति से समुद्र का जल अधिक ऊँचा उठता है। इसे 'दीर्घ ज्वार' कहते हैं। यह दीर्घ ज्वार एक तो पृथ्वी के उस भाग में दिखाई देता है जहाँ सूर्य एवं चन्द्रमा उसकी सीध में होते हैं तथा दूसरा इस गुरुत्वाकर्षण के कारण सम्पूर्ण पृथ्वी भी चन्द्रमा की ओर खिंच जाती है जिससे इसके विपरीत भाग में भी जल ऊपर उठ जाता है जिससे दूसरा दीर्घ ज्वार इसके विपरीत दिशा में भी आता है।

दूसरी स्थिति पूर्णिमा की है जिसमें पृथ्वी के एक ओर सूर्य तथा दूसरी ओर चन्द्रमा होता है। एक ओर सामने वाले भाग का जल चन्द्रमा की ओर खींचता है तो दूसरी ओर का जल सूर्य की ओर खिंचता है जिससे पृथ्वी के दोनों भाग में 'दीर्घ
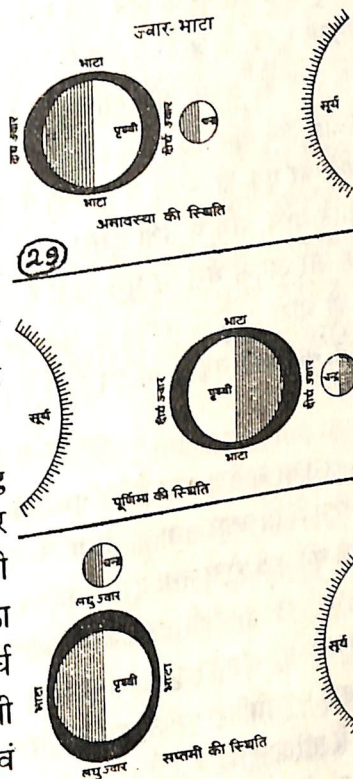
ज्वार' आता है तथा दोनों के बीच वाले भाग का जल नीचे की ओर दब जाता है जिससे वहाँ 'भाटा' (Low Tide) आता है। इसलिए हर पूर्णिमा तथा अमावस्या को पृथ्वी के दो भाग में 'दीर्घ ज्वार' तथा उसके समकोण वाले दोनों भागों में 'भाटा' आता है।

लघु ज्वार (Neap Tide) – पूर्व में बताया गया है कि सूर्य और चन्द्रमा की सम्मिलित आकर्षण शक्ति के कारण अमावस्या तथा पूर्णिमा को 'दीर्घ ज्वार' आता है किन्तु दोनों अष्टमी के दिन जब सूर्य एवं चन्द्रमा समकोण पर होते हैं तो एक ओर चन्द्रमा पृथ्वी के जल को अपनी ओर खींचता है तथा सूर्य समकोण पर होने से वह उस जल को अपनी ओर खींचता है जिसके प्रभाव से जल चन्द्रमा की ओर अधिक ऊँचाई तक नहीं उठ पाता। इसलिए दोनों अष्टमी के दिन 'लघु ज्वार' आता है। पृथ्वी पर एक ही समय में दो स्थानों पर एक साथ ज्वार आता है—एक चन्द्रमा के सामने वाले भाग में तथा दूसरा उसके विपरीत भाग में किन्तु पृथ्वी चौबीस घंटे में एक बार अपनी धुरी पर घूम जाती है इसलिए प्रत्येक स्थान पर दिन में दो ज्वार एवं दो ही भाटा आते हैं अर्थात् छः घंटे तक पानी चढ़ता है फिर छः घंटे तक उतरता है। इसके बाद फिर चढ़ना आरम्भ होता है।

ज्वार-भाटे का समय

ऊपर बताया गया है कि पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमने के कारण प्रत्येक स्थान पर दिन में दो ज्वार तथा दो ही भाटा आते हैं किन्तु दो ज्वार के बीच का अन्तर ठीक बारह घंटे नहीं होता तथा दूसरा ज्वार भी ठीक चौबीस घंटे बाद न आकर 52 मिनिट देरी से आता है अर्थात् यदि आज ज्वार दोपहर को 12 बजे आया है तो दूसरा ज्वार रात्रि को 12 बजकर 26 मिनिट बाद आएगा तथा दूसरे दिन वह दोपहर को 12 बजकर 52 मिनिट पर आएगा। इसका कारण है कि चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर अपनी परिक्रमा कर रहा है। उसकी यह परिक्रमा 27.33 दिन में पूरी होती है। अतः यह प्रतिदिन 13 अंश पूर्व की ओर हट जाता है। पृथ्वी भी पश्चिम से पूर्व की ओर घूमते हुए 24 घंटे में अपने निश्चित स्थान पर आ जाती है किन्तु तब तक चन्द्रमा उस स्थान से 13 अंश पूर्व में हट जाता है जिससे पृथ्वी को उसकी सीध में आने के लिए 13 अंश और चलना पड़ता है। पृथ्वी चूँकि 24 घंटे में 360 अंश घूमती है अतः 1 अंश पार करने में उसे 4 मिनिट लग जाते हैं जिससे 13 अंश चलने में उसे 52 मिनिट और लग जाते हैं। इसी कारण 24 घंटे बाद आने वाला ज्वार 24 घंटे और 52 मिनिट बाद आता है तथा बीच वाला ज्वार 12 घंटे 26 मिनिट बाद आता है।

◆:◆:◆

13

दिनमान, समय और तिथि निर्धारण

मनुष्य के दैनिक जीवन में समय निर्धारण और काल-गणना का सर्वाधिक महत्व है। समय के ज्ञान के बिना कोई भी कार्य व्यवस्थित रूप से नहीं हो सकता न पूर्व में हुई घटना का ब्यौरा रखा जा सकता है, न भविष्य में होने वाली घटना का अनुमान हो सकता है। इतिहास का मुख्य आधार ही काल है कि कौन-सी घटना कब हुई तथा उस समय क्या परिस्थिति थी ? इस काल-गणना का मुख्य आधार दिन है। दिन के छोटे भाग घंटा, मिनिट और सेकण्ड हैं। भारतीयों ने इसको घटी, पल, विपल और पलापल में विभक्त किया है। दिन के बड़े मान हैं—सप्ताह, पक्ष, मास तथा वर्ष। भारतीयों ने वर्ष से भी बड़े मान प्राप्त किये हैं जैसे युग, दैव वर्ष, मन्वन्तर, महायुग, ब्राह्म दिन, ब्राह्म वर्ष, ब्राह्मायु आदि। काल-गणना में भारतीयों का सबसे बड़ा मान यही 'ब्रह्मायु' है जिसका मान 31,10,40,00,00,00,000 मानव वर्षों के बराबर है। (विशेष वर्णन 'काल-गणना' अध्याय में दिया गया है)।

सामान्यतया हम समय का निर्धारण घड़ियों से करते हैं तथा सप्ताह, वार, मास, वर्ष आदि का निर्धारण पंचांग (Calender) से करते हैं। दुनियाँ में इसके लिए विभिन्न प्रकार के पंचांग काम में लिये जाते हैं जिनमें थोड़ा बहुत मतभेद रहता है। इन मतभेदों का कारण उसके लिए अपनाये गये विभिन्न सिद्धान्त एवं मान्यताएँ हैं। उदाहरण के लिए भारतीय पंचांग सूर्योदय से नई तिथि का आरम्भ मानते हैं जबकि अंग्रेजी पंचांग इसका आरम्भ रात्रि 12 बजे से मानते हैं। भारतीय पंचांग में तिथियों का क्षय एवं वृद्धि होती है किन्तु अंग्रेजी तारीखों में ऐसा नहीं होता। भारतीय पंचांग में महीनों में भी कमी और वृद्धि होती है जिसे 'क्षय' और 'अधिक मास' कहते हैं किन्तु अंग्रेजी पंचांग में ऐसा नहीं होता किन्तु इसमें वर्ष में एक दिन की वृद्धि और क्षय अवश्य होता है। जैसे फरवरी 28 दिन की होती है किन्तु हर चौथे वर्ष यह 29 की हो जाती है किन्तु शताब्दी में वह फिर 28 की ही होती है एवं चौथी शताब्दी में फिर 29 की हो जाती है। प्रत्येक अंग्रेजी माह में दिनों की संख्या निश्चित रहती है उनका कोई निश्चित आकार नहीं है। मुस्लिम पंचांग में मास का आरम्भ नये चाँद से होता है। हर पंचांग में वर्ष में 12 मास ही होते हैं किन्तु इथियोपिया एक ऐसा देश है जिसमें वर्ष में 13 मास होते हैं। इसी प्रकार दुनियाँ में कई प्रकार के सन् सम्वत् चलते हैं। इन सबमें भिन्नता का क्या कारण है तथा इनकी काल गणना का आधार क्या है इस पर यदि विचार किया जाए तो ज्ञात होता है कि इसका मुख्य आधार पृथ्वी एवं

चन्द्रमा की गतियाँ ही हैं जिसका सूक्ष्म अध्ययन इस ज्योतिष विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। पंचांग निर्माण एवं काल गणना के लिए ही इस विज्ञान का इतना विकास हुआ। प्राचीन काल में घटी घटनाओं का काल निर्धारण भी उस समय के आकाशीय पिंडों की स्थिति के आधार पर किया जा सकता है तथा इनसे भविष्य का भी पता लगाया जा सकता है। इसलिए ऐसे जीवनोपयोगी एवं महत्वपूर्ण विषय का ज्ञान हर व्यक्ति को होना आवश्यक है जिससे वह अपना कार्य सम्पादन .ठीक से कर सके तथा भविष्य की सुनिश्चित योजना बना सके। सृष्टि का कोई भी प्राणी, जीव, वनस्पति या पदार्थ इस काल से अप्रभावित नहीं है किन्तु मनुष्य सबसे अधिक प्रभावित है तथा मनुष्यों में भी बुद्धिजीवी, कार्यकर्ता, व्यापारी, किसान आदि सर्वाधिक प्रभावित हैं।

इस समय निर्धारण एवं काल-गणना का आधार यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

दिनमान

सम्पूर्ण विश्व में समय निर्धारण का सबसे बड़ा आधार दिन है। सूर्य प्रतिदिन उदय और अस्त होता है जिससे दिन तथा रात्रि होती है। दिन और रात्रि की इस पूरी अवधि को 'दिन' कहते हैं। आदि काल से मनुष्य ने इन्हीं दिनों की गिनती रखकर उसके बड़े मान सप्ताह, पक्ष, मास, ऋतुएँ तथा वर्ष आदि का निर्धारण किया जैसे 7 दिन का एक सप्ताह, 15 दिन का एक पक्ष, 30 दिन का एक मास तथा 365 दिन का एक वर्ष आदि। दिन और रात्रि के होने का कारण पृथ्वी का गोल होना तथा उसका अपनी धुरी पर एक बार भ्रमण करना है। पृथ्वी गोल होने से उसका आधा भाग ही सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है तथा आधा भाग अन्धकार में रहता है। जहाँ प्रकाश होता है उसे 'दिन' तथा जहाँ अन्धकार होता है उसे 'रात्रि' कहते हैं। पृथ्वी चूँकि अपनी धुरी पर घूमती है जिससे पृथ्वी के सभी भाग बारी-बारी से प्रकाश एवं अन्धकार में आते हैं जिससे सभी स्थानों पर बारी-बारी से दिन व रात्रि होती है।

यह पृथ्वी जब अपना एक भ्रमण पूरा कर लेती है तो इस सम्पूर्ण अवधि को एक 'दिन' माना जाता है अर्थात् आज यदि सूर्य मध्यान्ह को सिर पर दिखाई दे रहा है तो दूसरे दिन पुनः उसी स्थान पर उसके आ जाने पर जो समय होता है उसे 'एक दिन' माना जाता है। इस एक दिन को 24 घंटे में विभाजित किया गया जिससे इसका सूक्ष्म ज्ञान हो सके। इस एक घंटे की अवधि को पुनः 60 भागों में विभाजित किया गया जिसे 'मिनिट' कहते हैं तथा इन मिनिटों को फिर 60 भागों में विभाजित किया गया जिसे 'सेकण्ड' कहा गया। पश्चिमी धारणा के अनुसार यह सेकण्ड ही काल का सबसे छोटा मान है। भारतीय गणना के अनुसार दिन की सम्पूर्ण अवधि को 60

भागों में विभक्त किया गया जिसे 'घटी' कहते हैं। इस प्रकार 24 घंटे में 60 घटी होती हैं यानि एक घंटे में ढाई घटी का समय होता है अर्थात् एक घटी में 24 मिनिट होते हैं। इस घटी को फिर 60 भागों में विभक्त किया गया जिसे 'पल' कहते है तथा एक पल के 60वें भाग को 'विपल' कहते हैं। इस विपल को भी 60 भागों में विक्त किया गया जिसे 'पलापल' कहते हैं। भारतीय काल-गणना का यही छोटे से छोटा मान है।

दिन की अवधि

सामान्यतया हम यह जानते हैं कि दिन की अवधि 24 घंटे होती है जिसे हम घड़ी में देखकर ज्ञात करते हैं। इस 24 घंटे की अवधि मानने का कारण है कि पृथ्वी अपनी धुरी पर 24 घंटे में एक बार घूम जाती है किन्तु पृथ्वी .ठीक 24 घंटे में नहीं घूमती है। वह कभी धीमे घूमती है जिससे उसे अपना चक्कर पूरा करने में 24 घंटे से अधिक समय लग जाता है तथा कभी तेज घूमती हैं जिससे वह अपना चक्कर 24 घंटे से पहले ही पूरा कर लेती है; इस प्रकार दिन की अवधि कभी भी पूरे 24 घंटे की नहीं होती, कभी कम तथा कभी अधिक होती है। हम जो 24 घंटे का दिन वर्ष भर मानते हैं वह इसका वार्षिक औसत है। इस औसत समय वाले दिन को 'माध्यम सौर दिवस' (Mean Solar Day) कहते हैं।

पृथ्वी की यह दैनिक गति सितारों तथा सूर्य के सापेक्ष नापी जाती है। जैसे आज रात्रि को कोई सितारा .ठीक सिर पर दिखाई दे रहा है तो दूसरे दिन जब वह सितारा पुनः उसी स्थान पर दिखाई दे तो इसका अर्थ है पृथ्वी ने अपना चक्कर पूरा कर लिया है। यह अवधि 24 घंटे न होकर 23 घंटे 56 मिनिट और 4.09 सेकण्ड ही होती है अर्थात् कोई सितारा यदि आज रात्रि 9.00 बजे .ठीक सिर पर दिखाई दे रहा है तो दूसरे दिन वह 4 मिनट पहले 8 बजकर 56 मिनिट पर ही सिर पर दिखाई देगा। इससे ज्ञात होता हैं कि पृथ्वी ने अपना एक चक्कर 23 घंटे 56 मिनिट में लगा लिया है। इस अवधि को 'नाक्षत्र दिवस' (Sidereal Day) कहते हैं। (Sidereal = Star यह लेटिन भाषा का शब्द है)।

किन्तु पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमने के साथ-साथ सूर्य की भी परिक्रमा कर रही है जिससे 24 घंटे में वह अपनी कक्षा में 1 अंश आगे बढ़ जाती है जिससे किसी स्थान को पुनः सूर्य के नीचे आने में 3 मिनिट और 56 सेकण्ड और लग जाते हैं। मध्यान्ह के समय जब सूर्य आकाश में सबसे ऊँचाई पर होता है। उस समय घड़ियों में दोपहर को 12 बजा लिये जाते हैं। एक दोपहर से दूसरी दोपहर के बीच की अवधि को 'सौर दिवस' (Solar Day) कहते हैं। इस सौर दिवस की अवधि सदा

समान नहीं रहती है क्योंकि पृथ्वी हमेशा सम गति से नहीं घूमती है। इसकी गति सर्दी में तीव्र हो जाती है जब यह सूर्य के अधिक समीप होती है तथा गर्मी में यह गति धीमी हो जाती है जब यह सूर्य अधिक दूरी पर होती है। इस 'सौर दिवस' की अवधि का ज्ञान हमें 'धूप घड़ी' (Sun Dial) से होता है। वर्ष भर के भिन्न-भिन्न अवधि के 'सौर दिवसों' का औसत ही 'माध्यम सौर दिवस' है जो 24 घंटे का माना जाता है तथा जिसे हम अपनी घड़ियों में देखते हैं। इस 'माध्यम सौर दिवस' और 'साधारण सौर दिवस' की अवधि में सदा अन्तर रहता है।

बेलान्तर समय (Equation of Time)

इस 'माध्यम सौर दिवस' तथा 'साधारण सौर दिवस' में जो अन्तर होता है इस अन्तर को 'बेलान्तर समय' अथवा 'समय का समीकरण' कहते हैं। यह अन्तर हमेशा कम या अधिक होता रहता है जो नौ सेना की जन्त्रियों में अथवा भारतीय पंचांगों में दिया रहता है। भारतीय ज्योतिषी किसी स्थान विशेष का वास्तविक समय ज्ञात करने के लिए इसका उपयोग करते हैं। किसी की जन्मपत्री बनाने में उस जातक के स्थान के स्थानीय समय को ही आधार माना जाता है। चूँकि भारत में सब स्थानों पर एक ही प्रामाणिक समय माना जाता है इसलिए अपने स्थान के देशान्तर के अनुसार पहले वे उस स्थान को 'स्थानीय समय' ज्ञात करते हैं। यह स्थानीय समय भी 'माध्यम समय' ही है। फिर उसमें बेलान्तर सारिणी के अनुसार अन्तर को ज्ञात करके उस स्थान का वास्तविक स्थानीय समय निकालते हैं। इसे 'बेलान्तर संस्कार' करना कहते हैं। बेलान्तर संस्कार के बाद जो समय आता है वह धूप घड़ी का ही समय होता है।

यह अन्तर अधिक से अधिक 16 मिनिट का 3 नवम्बर को होता है तथा वर्ष में चार दिन ही, 15 अप्रैल, 15 जून, 31 अगस्त और 25 दिसम्बर को कोई अन्तर नहीं होता। किसी प्रामाणिक समय को उस स्थान के स्थानीय समय में बदलने पर जो समय आता है उसे 'माध्यम समय' कहते हैं। उदाहरण के तौर पर जोधपुर 73 अंश पू0 दे0 का स्थानीय समय भारतीय प्रामाणिक समय से 38 अंश पीछे रहता है। इसलिए यदि हमारी घड़ियों में मध्यान्ह को 12.00 बजे हैं तो जोधपुर में उस समय स्थानीय समय के अनुसार 11 बजकर 22 मिनिट ही हुए होंगे। यह 'माध्यम समय' हुआ। यदि यह समय 15 जनवरी को लिया गया है तो उस दिन बेलान्तर सारिणी के अनुसार समय का अन्तर + 10 है। अर्थात् माध्यम समय में 10 मिनिट जोड़ने पर 'वास्तविक स्थानीय समय आएगा' यानि उस समय 'वास्तविक स्थानीय समय' 11.22 + 10 = 11 बजकर 32 मिनिट होगा। वर्ष भर का यह अन्तर अगले पृष्ठ पर दी गई बेलान्तर सारिणी में देखा जा सकता है।

घड़ियों द्वारा प्राप्त दोपहर को 'माध्यम दोपहर' (Mean noon या Civil noon) कहते हैं तथा धूपघड़ी द्वारा प्राप्त दोपहर को 'वास्तविक दोपहर' (True noon) कहते हैं। इन दोनों के बीच का अन्तर ही 'समय का समीकरण' है।

निम्नलिखित तालिका में भिन्न-भिन्न तिथियों में 'माध्यम दोपहर', 'समय का समीकरण' + - में तथा 'वास्तविक दोपहर' का समय दिया जा रहा है। इसे भारतीय पंचांगों से भी ज्ञात किया जा सकता है।

तिथि	स्थानीय समय (माध्यम दोपहर घड़ी का समय)	बेलान्तर समय + -	वास्तविक दोपहर (धूप घड़ी का समय)
.1 जनवरी	12-00	+ 4	12-04
15 जनवरी	12-00	+ 10	12-10
1 फरवरी	12-00	+ 14	12-14
11 फरवरी	12-00	+ 14	12-14
1 मार्च	12-00	+ 12	12-12
15 मार्च	12-00	+ 9	12-09
1 अप्रैल	12-00	+ 4	12-04
15 अप्रैल	12-00	0	12-00
1 मई	12-00	- 3	11-57
15 मई	12-00	- 4	11-56
1 जून	12-00	- 2	11-58
15 जून	12-00	0	12-00
1 जुलाई	12-00	+ 4	12-04
15 जुलाई	12-00	+ 6	12-06
1 अगस्त	12-00	+ 6	12-06
15 अगस्त	12-00	+ 4	12-04
1 सितम्बर	12-00	0	12-00
15 सितम्बर	12-00	- 5	11-55
1 अक्टूबर	12-00	- 10	11-50
15 अक्टूबर	12-00	- 14	11-46
3 नवम्बर	12-00	- 16	11-44
16 नवम्बर	12-00	- 15	11-45
1 दिसम्बर	12-00	- 11	11-49
15 दिसम्बर	12-00	- 5	11-55
25 दिसम्बर	12-00	0	12-00

1. घड़ी का स्थानीय समय + या - बेलान्तर समय = धूपघड़ी का समय

2. यदि धूप घड़ी का समय ज्ञात हो तो बेलान्तर समय के अंकों को धन के स्थान पर ऋण व ऋण के स्थान पर धन करके घटाने बढ़ाने से घड़ी का स्थानीय समय आता है।

स्थानीय समय (Local Time)

पृथ्वी की इस दैनिक गति के कारण ही दिनमान की अवधि तथा समय का ज्ञान होता है किन्तु पृथ्वी गोल होने से तथा उसकी इस दैनिक गति के कारण सभी स्थानों का समय भिन्न-भिन्न होता है। जो स्थान पूरब में है वहाँ सूर्योदय, मध्यान्ह तथा सूर्यास्त पहले होता है तथा पश्चिम में बाद में। सारी पृथ्वी को 360 अंश देशान्तर में विभक्त किया गया है जिसको पृथ्वी 24 घंटे में पार करती है इसलिए एक घंटे में वह 15 अंश देशान्तर पार करती है अर्थात् एक देशान्तर अंश घूमने में उसे 4 मिनिट लग जाते हैं। यदि कोई स्थान 30 अंश देशान्तर पूर्व में है तो वहाँ का समय 2 घंटा आगे होगा तथा 30 अंश पश्चिम में स्थित स्थान का समय 2 घंटा पीछे होगा। जैसे यदि जयपुर में मध्यान्ह को 12 बजे हैं तो 30 अंश पूरब में स्थिति स्थान पर अपरान्ह 2.00 बजे होंगे तथा 30 अंश पश्चिम में स्थित स्थान पर उस समय प्रातः 10.00 ही बजे होंगे। इसी कारण से इंग्लैण्ड का समय भारत से 5.30 घंटे पीछे रहता है। भारत में जब मध्यान्ह 12.00 बजते हैं तो लन्दन की घड़ियों में उस समय प्रातः 6.30 ही हुए होते हैं तथा जापान में उस समय सायंकाल 4.30 हो गये होंगे। इस प्रकार प्रत्येक देशान्तर पर 4 मिनिट का अन्तर पड़ता है। किसी मुख्य देशान्तर पर जब सूर्य आकाश में सबसे अधिक ऊँचाई पर आता है उस समय घड़ियों में 12.00 बजाये जाते हैं। यह उस स्थान का 'स्थानीय समय' कहलाता है जो प्रत्येक स्थान का भिन्न-भिन्न होता है। आजकल इसका व्यवहार में उपयोग नहीं होता किन्तु ज्योतिषी इसी का उपयोग करते हैं तथा हमारी घड़ियों का समय इसी से मिलाया जाता है। अतः सारे समयों का यही आधार है।

यह स्थानीय समय धूप घड़ी से ज्ञात किया जाता है। इसे ज्ञात करने की सरल विधि यह है कि पृथ्वी पर उत्तर-दक्षिण एक रेखा खींच कर उस पर एक लम्बवत् डंडा गाड़ दो। जब डंडे की परछाई उस रेखा पर पडे, उस समय 12.00 बजे होंगे। यही उस स्थान का 'स्थानीय समय' है। इस आधार पर 'धूप घड़ी' बनाई जाती हैं।

प्रमाणिक समय

पृथ्वी के गोल होने के कारण सभी स्थानों का स्थानीय समय भिन्न-भिन्न होता

है जिससे व्यावहारिक कार्यों, यात्राओं, दूर-संचार, परिवहन आदि में बाधाएँ उपस्थित होती हैं। मान लीजिये कोई यात्री जोधपुर से बनारस आता है और अपनी घड़ी के अनुसार वह सायंकाल 4.00 बजे पहुँचता है किन्तु बनारस का समय जोधपुर से 38 मिनिट आगे होने से वहाँ 4.38 बजे होंगे। इसी प्रकार पश्चिम में जाने पर समय पीछे होगा। बार-बार घड़ियों में परिवर्तन करते रहना व्यावहारिक नहीं होता। इसलिए इसका समाधान अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के आधार पर किया गया। इसके अनुसार सारी पृथ्वी को पन्द्रह-पन्द्रह देशान्तर के 24 भागों (Zones) में विभाजित कर दिया। एक भाग में स्थित सभी स्थान वाले उस भाग का निर्धारित एक ही समय मानते हैं। इससे घड़ियों में बार-बार समय परिवर्तन करने का झंझट मिट गया जैसे सम्पूर्ण भारत के लिए 82.5 अंश पूर्वी देशान्तर का स्थानीय समय सारे भारत के लिए प्रामाणिक मान लिया गया जिससे इस देशान्तर पर जब मध्यान्ह को 12.00 बजते हैं उस समय सारे देश की घड़ियों में बारह बजा लिये जाते हैं चाहे वहाँ का स्थानीय समय कुछ भी है। उदाहरण के तौर पर यद्यपि जोधपुर में उस समय स्थानीय समय के अनुसार 11.22 ही बजे होंगे किन्तु वहाँ भी घड़ियों में 12.00 बजा लिये जाते हैं। यही 'प्रमाणिक समय' (Standard Time) है जो हमें अपनी घड़ियों से ज्ञात होता है। यदि स्थानीय समय निकालना हो तो इस प्रामाणिक समय में से 38 मिनिट घटा देने से 11.22 का जो समय आता है यही जोधपुर का स्थानीय समय होगा। इसी प्रकार बाँगला देश का समय भारत से आधा घंटा आगे है तथा पाकिस्तान का आधा घंटा पीछे। इंग्लेण्ड का समय भारत से 5.30 घंटा पीछे है। जो देश 15 अंश से अधिक देशान्तरों में फैले हैं उनमें एक से अधिक समय भी माना जाता है जैसे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में पाँच समय विभाग है जिनमें पूर्व और पश्चिम के समय में चार घंटे का अन्तर रहता है। यात्रियों को हर 15 अंश देशान्तर पार करने पर अपनी घड़ियों को एक घंटा आगे पीछे करना पड़ता है। पूर्व में जाने पर घड़ियाँ आगे की जाती हैं तथा पश्चिम में जाने पर पीछे करनी पड़ती हैं।

तिथि रेखा (Date Line)

चूँकि पृथ्वी गोल है तथा निरन्तर अपनी धुरी पर घूमती ही रहती है इसलिए तिथि का निर्धारण कठिन हो जाता है कि नया दिन कहाँ से माना जाय? तथा दूसरी समस्या पृथ्वी परिक्रमा करने वालों को आती है कि यदि वे पूर्व से यात्रा करते हैं तो प्रति 15 अंश देशान्तर पार करने पर उनकी घड़ी एक घंटा आगे हो जाती है। इससे सारी पृथ्वी की परिक्रमा कर पुनः अपने स्थान पर लौटने पर उनकी घड़ी 24 घंटा आगे हो जाती है। इसी प्रकार पश्चिम की ओर से यात्रा करने पर उनकी घड़ी 24 घंटा
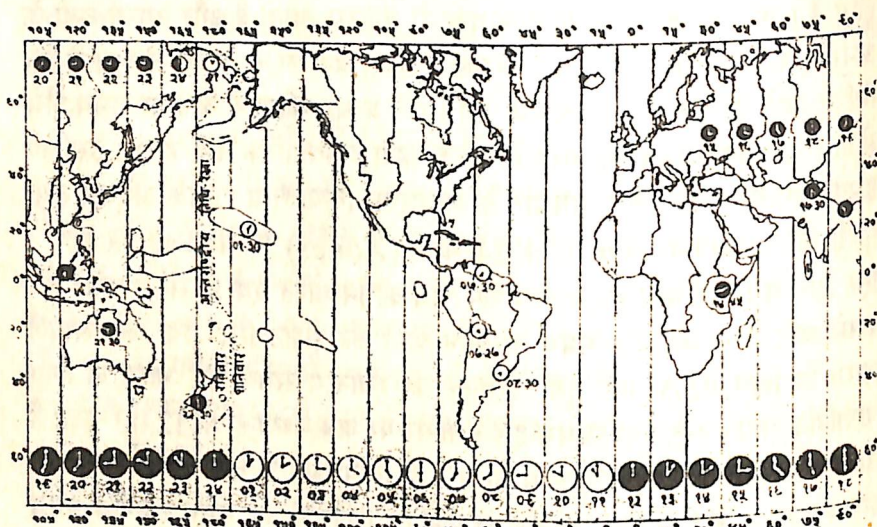
चित्र-30—मानचित्र और तिथि रेखा

पीछे हो जाती है। यदि उस स्थान पर रविवार का दिन है तो पूर्व की ओर से यात्रा करके लौटने वाला कहता है कि आज सोमवार है तथा पश्चिम की ओर से यात्रा करके लौटने वाला कहता है कि आज शनिवार है। इन दोनों समस्याओं के समाधान के लिए 180 अंश देशान्तर के पास एक 'तिथि रेखा' निश्चित की गई जहाँ पहुँच कर पूर्व की ओर से यात्रा करने वाला इस रेखा को पार करने पर अपनी घड़ी 24 घंटे पीछे कर लेता है तथा पश्चिम की ओर से यात्रा करने वाला 24 घंटे आगे कर लेता है जिससे वापस लौटने पर तिथि में अन्तर नहीं पड़ता। इस तिथि रेखा के अनुसार नया दिन इसी से आरम्भ होना माना गया। इस रेखा के एक ओर पुराना दिन ही चलता है। इस रेखा के पास ही जापान देश है जहाँ नये दिन का सूर्य सबसे पहले दिखाई देता है जिससे जापान को 'उगते सूर्य का देश' (Land of the Rising Sun) कहते हैं।

भारतीय तिथियों का निर्धारण

अंग्रेजी पंचांग के अनुसार दिन का आरम्भ मध्य रात्रि से माना जाता है। इसका समय निर्धारण मध्यान्ह सूर्य से ही होता है किन्तु तिथि के आरम्भ का आधार एक मान्यता एवं अन्तर्राष्ट्रीय समझौते पर ही आधारित है। इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है जबकि भारतीय पंचांगों में तिथि का आधार पूर्ण वैज्ञानिक है जो चन्द्रमा की गति पर आधारित है। एक पूर्णिमा से दूसरी पूर्णिमा तक की अवधि को 'मास' कहते

हैं। इसमें चन्द्रमा पृथ्वी का एक चक्कर पूरा कर लेता है। चूँकि एक पूरा चक्र 360 अंश का होता है किन्तु एक माह में पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करने के कारण उस स्थान से 30 अंश आगे निकल जाती है जिससे दूसरी पूर्णिमा तक चन्द्रमा को 30 अंश और चलना पड़ता है यानि 390 अंश पार करने पर दूसरी पूर्णिमा होगी। इस प्रकार चन्द्रमा प्रतिदिन 13 अंश चलता है। इसकी दैनिक गति का मध्यम मान 13 अंश 10 कला, 34 विकला तथा 35 प्रविकला है। इस दूरी को पार करने में उसे जितना समय लगता है उसे 'दिनमान की अवधि' कहते हैं। यह अवधि 60 घटी (24 घंटे) मानी जाती है किन्तु चन्द्रमा कभी भी इस निश्चित गति से नहीं घूमता है। कभी उसकी गति धीमी होती है जिससे वह इस दूरी को पार करने में 60 घटी से थोड़ा अधिक समय लेता है जो 65-70 घटी का भी हो सकता है तथा कभी यह 60 घटी के कम समय में ही घूम जाता है अर्थात् 50-55 घटी में ही घूम जाता है। भारतीय पंचांगों में चन्द्रमा के 13 अंश की दूरी को पार करने के समय की अवधि को 'तिथि' माना जाता है। इस प्रकार कोई भी तिथि 60 घटी (24 घंटे) की नहीं होती। कोई तिथि इससे कम की होती है तथा कोई अधिक की।

भारतीय पंचांगों में तिथि का आरम्भ सूर्योदय से माना जाता है। सूर्योदय के समय जो तिथि होती है वही तिथि पंचांग में दिखाई जाती है तथा वह तिथि कितने समय बाद समाप्त होगी यह भी लिखा रहता है। जैसे 8 अप्रैल 1992 ई० को चैत्र शुक्ला 5 बुधवार है। इस वार के आगे इस तिथि की समाप्ति अवधि 2.49 लिखी है। इसका अर्थ है यह तिथि 2 घटी तथा 49 पल तक रहेगी। इसके बाद दूसरी तिथि आरम्भ हो जाएगी। यह दूसरी तिथि सूर्योदय से पूर्व ही 59 घटी 1 पल पर ही समाप्त हो जाती है अर्थात् सूर्योदय से 59 पल पहले ही समाप्त होकर सूर्योदय के समय तीसरी तिथि का आरम्भ हो जाता है इसलिए चैत्र शुक्ला 6 को 'क्षय तिथि' माना जाता है तथा पंचमी के दूसरे दिन सप्तमी होगी। एकादशी तिथि का मान 56 घटी 45 पल ही है जो 60 घटी (24 घंटे) से 3 घटी 15 पल (करीब 1.25 घंटा) कम है।

इसी प्रकार जब चन्द्रमा धीमी गति से घूमता है तो उसे 13 अंश पार करने में 24 घंटे से भी अधिक समय लग जाता है जिससे एक तिथि सूर्योदय से पूर्व आरम्भ होकर दूसरे दिन सूर्योदय के बाद तक रहती है। ऐसी स्थिति में दोनों दिन सूर्योदय के समय एक ही तिथि रहने से उसे दोहराई जाती है। उदाहरण के तौर पर 23 मई 1992 को ज्येष्ठ कृष्णा 7 का मान 60 घटी 0 पल है। अर्थात् वह सूर्योदय के समय को स्पर्श कर रही है इसलिए उस दिन सप्तमी है तथा दूसरे दिन वह सूर्योदय के बाद

2 घटी 57 पल तक है, अर्थात् सूर्योदय के बाद वह 2 घटी 57 पल (1 घंटा) तक रहेगी इसलिए दूसरे दिन भी सप्तमी ही होगी। इस प्रकार भारतीय पंचांग में तिथियों का क्षय एवं वृद्धि होने का आधार चन्द्रमा की गति है जो वैज्ञानिक आधार है।

इसमें एक बात और ध्यान देने की है कि इस तिथि क्षय या वृद्धि से वारों का क्षय और वृद्धि नहीं होती तथा सप्ताह में सात ही दिन होते हैं जबकि तिथि रेखा (Date Line) पार करने पर वारों में भी क्षय और वृद्धि हो जाती है जिससे कोई सप्ताह 8 दिन का हो जाता है तथा कोई 6 दिन का ही रह जाता है। जैसे यदि कोई यात्री पूरब से यात्रा करता हुआ इस तिथि रेखा को सोमवार को पार करता है तो वह अपनी घड़ी 24 घंटे पीछे करता है जिससे उसको अगला दिन भी सोमवार ही मानना पड़ेगा। यानि दो सोमवार होंगे व सप्ताह में आठ दिन होंगे। इसी प्रकार पश्चिम से यात्रा करने वाला यात्री जब इस तिथि रेखा को सोमवार को पार करता है तो उसकी घड़ी 24 घंटा आगे करने से अगला दिन बुधवार हो जाएगा तथा मंगलवार का क्षय हो जायगा जिससे सप्ताह में उसके छः ही दिन होंगे। भारतीय पंचांगों में ऐसा नहीं होता। भारतीय पंचांगों का सारा आधार पूर्ण वैज्ञानिक एवं गणितीय है जबकि अन्य पंचांगों में ये मान्यताओं के आधार पर अधिक बनें है तथा इतना सूक्ष्म विवेचन भी उनमें नहीं है जितना भारतीय पंचांगों में।

(सप्ताह, पक्ष, मास, वर्षमान, आदि का विवरण 'काल-गणना' अध्याय में दिया गया है।)

◆:◆:◆

14

सितारों से समय और दिशा का ज्ञान

सामान्यतया हम समय के ज्ञान के लिए घड़ी का उपयोग करते हैं तथा दिशा ज्ञान के लिए कम्पास का, किन्तु सभी घड़ियाँ पृथ्वी की गति, सूर्य तथा सितारों से ही मिलाई जाती हैं। इसी प्रकार दिशा-ज्ञान कम्पास से किया जाता है किन्तु कम्पास की सुई पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव की ओर संकेत नहीं करती जिससे वास्तविक उत्तर (True North) का ज्ञान नहीं होता। इसके लिए भी सितारों का ही उपयोग किया जाता है। प्राचीन काल में इन साधनों के अभाव में समुद्रों, मरुस्थलों आदि में यात्रा करने वाले सितारों की सहायता से ही दिशा एवं समय का ज्ञान प्राप्त करते थे। आज भी इन वैज्ञानिक साधनों की प्रामाणिकता सूर्य और सितारों से ही सिद्ध की जाती है जो विश्वसनीय घड़ियाँ हैं। इसके लिए निम्न विधियाँ हैं—

समय का ज्ञान

(1) सूर्य से—दिन में समय का ज्ञान सूर्य की सहायता से किया जा सकता है। पृथ्वी की दैनिक गति के कारण सूर्य प्रतिदिन पूर्व में उदय होता है, मध्यान्ह के समय 'याम्योत्तर रेखा' पर होता है तथा सायंकाल अस्त होता है। इसकी यह गति प्रति घंटा 15 अंश होती है। यदि पृथ्वी पर उत्तर-दक्षिण एक रेखा खींच दी जाए तथा उस पर लम्बवत् एक डंडा खड़ा कर दिया जाए तो इसकी छाया जब इस रेखा पर पड़ेगी उस समय मध्यान्ह को स्थानीय समय के अनुसार .ठीक 12 बजे होंगे। इससे पहले यह प्रति घंटा 15 अंश के अन्तर से पूर्व दिशा में दिखाई देगा तथा बाद में इसी प्रकार पश्चिम में। यदि सूर्य 'याम्योत्तर रेखा' से 30 अंश पूर्व में दिखाई दे रहा है तो उस समय प्रातः 10 बजे होंगे तथा 30 अंश पश्चिम की ओर दिखाई देने पर सायंकाल 2 बजे होंगे। इसी प्रकार अन्य समय में समय ज्ञात किया जा सकता है।

(2) धूप घड़ी से—इसी आधार पर प्राचीन काल में धूप घड़ियाँ बनाई जाती थी जिनसे प्रातः काल से सन्ध्या समय तक समय का .ठीक.ठीक ज्ञान किया जाता था। आज भी इनका उपयोग घड़ियों को मिलाने में किया जाता है।

(3) राशियों से—राशियों का ज्ञान पहले कराया जा चुका है। ये राशियाँ 12 हैं जो 30-30 अंश की दूरी पर दिखाई देती हैं। प्रत्येक राशि के उदय, अस्त तथा 'याम्योत्तर रेखा' पर आने में 2 घंटे का अन्तर होता है। किस दिन कौन-सी राशि रात्रि 9 बजे याम्योत्तर रेखा पर होती है यह परिशिष्ट 3 में दिया गया है। इसे देखकर राशि

में किसी भी समय देखना चाहिए कि उस समय कौन-सी राशि 'याम्योत्तर रेखा' पर दिखाई दे रही है तथा 9 बजे दिखाई देने वाली राशि से यह कितने अन्तर पर है। यदि उससे तीसरी राशि याम्योत्तर रेखा पर आ गई है तो उस राशि से छः घंटे अधिक समय हुआ है यानि रात्रि को 3 बजे हैं। उदाहरण के तौर पर आप 7 अप्रैल को रात्रि के समय आकाश में देखते हैं कि उस समय धनु राशि 'याम्योत्तर रेखा' पर दिखाई दे रही है तथा उस दिन रात्रि 9 बजे सिंह राशि याम्योत्तर रेखा पर थी तो धनु उसके आगे चौथी राशि है जिनके बीच आठ घंटे का अन्तर है तो उस समय 9 + 8 = 17 यानि प्रातःकाल 5 बजे हैं। इसी प्रकार अन्य राशियों से समय ज्ञात किया जा सकता है।

यदि उस समय उक्त चार्ट उपलब्ध न हो तो यह ज्ञान होना चाहिए कि इस माह में सूर्य किस राशि में चमक रहा है। सूर्यास्त के समय उससे तीसरी राशि याम्योत्तर रेखा पर दिखाई देगी, छठवीं राशि पूर्व में उदय हो रही होगी जो रात्रि को 12 बजे याम्योत्तर रेखा पर होगी तथा नवीं राशि का उस समय पूर्व में उदय होगा। इस प्रकार जो राशि उस समय सिर पर दिखाई दे रही है वह सूर्य की राशि से कितने अन्तर पर है उसमें 2 घंटे के अन्तर से सूर्यास्त के समय से वह समय आगे होगा। मान लीजिये आप 25 अक्टूबर को रात्रि में देखते हैं कि उस समय वृष राशि सिर पर दिखाई दे रही है तो यह देखिये कि उस दिन सूर्य तुला राशि में है जिससे सूर्य के अस्त होने के समय वह राशि अस्त हो गई तथा उससे तीसरी राशि (मकर) उस समय सिर पर थी। वृष राशि मकर से चौथी राशि है जो सिर पर है जो सूर्यास्त के आठ घंटे बाद सिर पर आई है। यदि सूर्यास्त का समय उस दिन 6 बजे है तो उस समय आठ घंटे आगे का समय अर्थात् रात्रि को 2 बजे होंगे। इस प्रकार राशियों की सहायता से समय ज्ञात किया जा सकता है।

(4) नक्षत्रों से—राशियों की भाँति ही नक्षत्रों से भी समय का ज्ञान किया जा सकता है। पहले बतलाया गया है कि प्रत्येक नक्षत्र के बीच 13 अंश 20 कला का अन्तर होता है। प्रत्येक नक्षत्र 52 मिनिट बाद उदय होता है। भारतीय महीनों के अनुसार जिस माह में आप देख रहे हैं उसके पहले माह की पूर्णिमा को उसी नाम का नक्षत्र सूर्यास्त के समय पूर्व में उदय हो रहा था। यह नक्षत्र यदि सिर पर दिखाई देता है तो उस समय रात्रि को 12 बजे हैं। यदि उसके आगे का चौथा नक्षत्र सिर पर है तो 52 मिनिट के हिसाब से उस समय 3.30 घंटे आगे हुए हैं। यानि रात्रि को 3.30 हुए हैं।

इस प्रकार मानचित्र में राशियों एवं नक्षत्रों के अनुसार समय का निर्धारण किया

जा सकता है । उदाहरण के तौर पर आप बैशाख महीने में रात्रि को देख रहे हैं कि ज्येष्ठा नक्षत्र सिर पर दिखाई दे रहा है तो ये देखिये कि चैत्र की पूर्णिमा को सूर्यास्त के समय चित्रा नक्षत्र पूर्व में उदय हो रहा था। ज्येष्ठा उससे आगे चौथा नक्षत्र है जिससे दोनों के बीच उदय का अन्तर 52 x 4 = 208 ÷ 60 = 3.30 घंटे का अन्तर है । अतः सूर्यास्त के 3.30 घंटे बाद इसका पूर्व में उदय हुआ तथा 6 घंटे बाद यह सिर पर आता है । यदि उस दिन सूर्यास्त का समय 7 बजे है तो यह नक्षत्र 9 घंटे 30 मिनिट बाद सिर पर आएगा । इसलिए उस समय 4.30 प्रातः का समय हुआ होगा ।

दिशा का ज्ञान

सूर्य तथा सितारों की सहायता से दिशा-ज्ञान भी किया जा सकता है । इसकी निम्न विधियाँ हैं—

(1) सूर्य के उदयास्त से—सामान्य तौर पर जिस दिशा में सूर्य उदय होता है उसे पूर्व तथा जिधर अस्त होता है उसे पश्चिम कहते हैं । यदि पूर्व की ओर मुँह करके खड़े हो जाएं तो दाहिने हाथ की ओर दक्षिण तथा बायें हाथ की ओर उत्तर होगा किन्तु इससे सही दिशा का ज्ञान नहीं होता क्योंकि सूर्य सर्दी में दक्षिण की ओर उदय होता है तथा गर्मी में उत्तर की ओर । सूर्य किस अक्षांश पर लम्बवत् चमक रहा है तथा हमारी स्थिति किस अक्षांश पर है यह ज्ञात हो तो सूर्य उतने अंश का कोण बना देने से हमारे स्थान की सही पूर्व दिशा ज्ञात हो सकती है । जैसे 22 दिसम्बर को सूर्य 23.5 अंश दक्षिणी अक्षांश पर लम्बवत् चमक रहा है तथा हम जयपुर 27 अंश
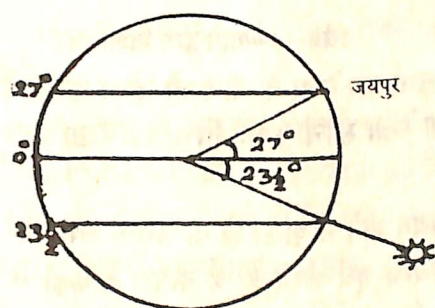
चित्र-31—सूर्य से दिशा ज्ञान
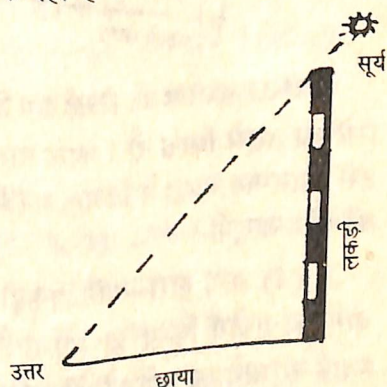
चित्र-32—मध्यान्ह सूर्य से दिशा ज्ञान

उत्तरी अक्षांश से उस दिन पूर्व दिशा ज्ञात करना चाहते हैं तो उस दिन सूर्योदय की दिशा से 27 + 23.5 = 50.5 अंश का कोण बना लें तो वही हमारा पूर्व होगा ।

(2) मध्यान्ह सूर्य की छाया से—किसी भी नाप की एक सीधी लकड़ी लेकर समतल भूमि पर लम्बवत् गाड़ देनी चाहिए। स्थानीय समय के अनुसार मध्यान्ह 12 बजे इस लकड़ी की छाया जिधर पड़ेगी उधर उत्तर दिशा होगी। इसके विपरीत दक्षिण होगी। अन्य दिशाएँ इसके अनुसार ज्ञात की जा सकती हैं।

(3) बराबर की ऊँचाई द्वारा—यदि हमारे पास घड़ी न हो तथा स्थानीय समय का भी ज्ञान न हो तो सूर्य की ऊँचाई (Altitude) द्वारा भी दिशा ज्ञान किया जा सकता है। किसी भी नाप की एक लकड़ी समतल भूमि पर लम्बवत गाड़ दो। मध्यान्ह से कुछ समय पूर्व उसकी छाया के अन्तिम सिरे पर चिन्ह लगा दो तथा उसे लकड़ी के नीचे के सिरे से मिलाती हुई एक रेखा खींच़ दो तथा लकड़ी के इस छाया के अन्तिम सिरे के नाप से एक चाप खींच दो। फिर देखो कि वह छाया धीरे-धीरे छोटी हो रही है। मध्यान्ह के बीद फिर धीरे-धीरे वह बढ़ने लगती है तथा जहाँ वह उस चाप को दूसरे स्थान पर छुए वहाँ चिन्ह लगा दो तथा उससे लकड़ी के नीचे वाले
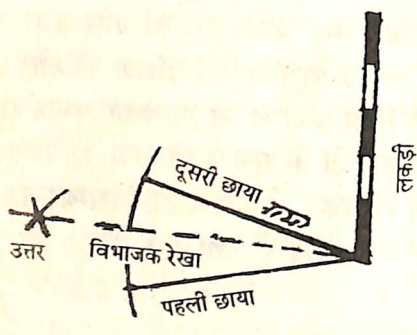
चित्र-33—बराबर की ऊँचाई द्वारा दिशा ज्ञान **चित्र-34—धागे द्वारा दिशा ज्ञान**
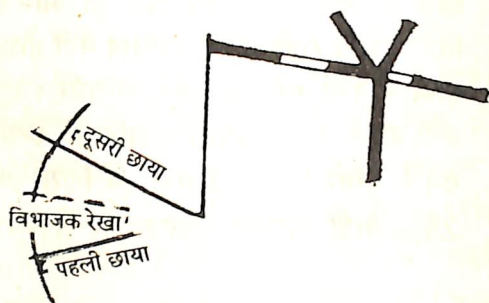
सिरे को उससे मिला दो। पहले वाली रेखा तथा इस रेखा के बीच जो कोण बनता है उसे दो समान भागों में विभक्त करती हुई एक रेखा खींचों। यह विभाजक रेखा उत्तर की ओर जाएगी।

(4) धागे द्वारा—यदि लकड़ी के लम्बवत् होने में शंका हो तो उसके स्थान पर धागे का प्रयोग किया जा सकता है। यह विधि पूर्व जैसी ही है केवल लकड़ी के स्थान पर धागे का प्रयोग निम्न विधि से होता है।

(5) कोण द्वारा—पृथ्वी अपनी धूरी पर 24 घंटे में एक बार घूमती है जिससे वह प्रति घंटे 15 अंश पार करती है जिससे सूर्य प्रति घंटा 15 अंश चलता ज्ञात होता है। मध्यान्ह को 12 बजे सूर्य उत्तर-दक्षिण रेखा पर होता है। 10 बजे वह 30 अंश

पूर्व में होगा तथा 2 बजे 30 अंश पश्चिम में। यदि 10 बजे कोई डंडा समतल भूमि पर गाड़ा जाय तो उसकी परछाई उत्तर-दक्षिण रेखा से 30 अंश पश्चिम में पड़ेगी। यदि इस रेखा पर पूर्व की ओर 30 अंश का कोण बना दिया जाय तो यह रेखा उत्तर-दक्षिण रेखा होगी।
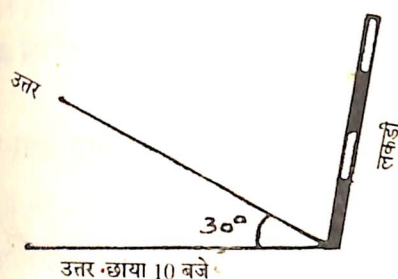
चित्र-35—कोण द्वारा दिशा ज्ञान
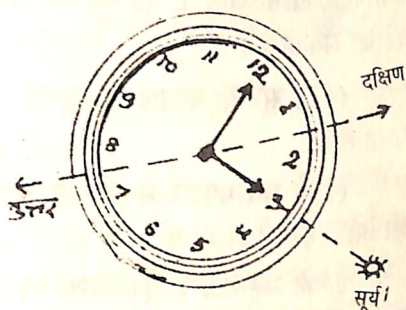
चित्र-36—घड़ी द्वारा दिशा ज्ञान

(6) घड़ी की सहायता से—दिन में किसी भी समय घड़ी को इस प्रकार घुमाकर समतल धरातल पर रखिये कि उसके घंटे की सुई सूर्य की ओर रहे। फिर घंटे की सुई और 12 के अंक के बीच बने कोण को दो समान भागों में बाँटती हुई एक रेखा खींचों तो यह रेखा दक्षिण की ओर जाएगी। इसके विपरीत उत्तर होगा।

(7) ध्रुव तारे से—रात्रि को दिशा ज्ञान करने की सबसे अच्छी विधि 'ध्रुव तारा' है। यह सदा उत्तर की ओर ही रहता है। यदि इसकी ओर मुँह करके खड़े हो जाएं तो सामने की ओर उत्तर होगा। इससे अन्य दिशाएँ ज्ञात की जा सकती हैं।

(8) सप्तर्षि मण्डल—सप्तर्षि मण्डल के अन्तिम दो सितारे 'पुलह' और 'क्रतु' निर्देशक सितारे कहलाते हैं। इन दोनों को मिलाते हुए एक रेखा आगे की ओर बढ़ाई जाय तो यह रेखा ध्रुव तारे से मिलेगी। ध्रुव तारा इन दोनों सितारों के बीच की दूरी से 5.5 गुनी दूरी पर होता है। ध्रुव तारे की पहचान इससे की जा सकती है।

(9) शर्मिष्ठा से—सप्तर्षि के उदय न होने पर शर्मिष्ठा मण्डल आकाश में दिखाई देता है। इसके पश्चिम की ओर के तीन सितारे एक त्रिभुज बनाते हैं। इनके बीच में एक रेखा खींचकर उसे उत्तर की ओर बढ़ाई जाय तो वह ध्रुव तारे तक पहुँचेगी। यही उत्तर होगा।

(10) लघु सप्तर्षि से—लघु सप्तर्षि से भी ध्रुव तारा पहचाना जा सकता है। इस मण्डल के दुम का अन्तिम सितारा ही ध्रुव तारा है। ध्रुव तारा ज्ञात होने पर दिशा-ज्ञान हो जाता है।

(11) मृग मण्डल से—मृग मण्डल की कमर के पास तीन सितारे हैं जिनमें मध्य वाले सितारे से सिर के पास वाले सितारे 'मृग लोचनी' को मिलाते हुए यदि एक रेखा खींची जाय तो यह ध्रुव तारे की ओर जाएगी। इससे उत्तर दिशा का ज्ञात की जा सकती है।

(12) सुनीति मण्डल से—सुनीति मण्डल का खुला हुआ भाग उत्तर की ओर रहता है।

(13) वृष मण्डल से—वृष मण्डल में भी उसका खुला हुआ भाग उत्तर-पूर्व की ओर रहता है।

इनकी सहायता से एक दिशा का ज्ञान हो जाने पर अन्य दिशाएँ ज्ञात की जा सकती हैं।

15

कालगणना

काल गणना की मुख्य इकाई 'दिनमान' है जिसका आधार पृथ्वी का अपनी धुरी पर भ्रमण है। इसी भ्रमण से दिनमान, तिथि का निर्धारण एवं समय का ज्ञान होता है जिसे पिछले अध्याय में स्पष्ट किया गया है। इस अध्याय में इसकी बड़ी इकाइयों का वर्णन किया जा रहा है।

सप्ताह (Week)

तिथियों की बड़ी इकाई 'सप्ताह' है जो सात दिन का होता है। महीने का चौथाई भाग ही सप्ताह है। भारतीय काल गणना में सप्ताह के दिनों के नाम रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरुवार (बृहस्पतिवार), शुक्रवार तथा शनिवार हैं, जो भारतीय प्राचीन मान्यतानुसार सात दृश्य ग्रहों के नाम पर रखे गये हैं। प्राचीन मान्यता में सूर्य एवं चन्द्रमा को ग्रह तथा पृथ्वी को केन्द्र माना जाता था जिसके चारों ओर ये ग्रह चक्कर लगाते हैं। यद्यपि भारतीय तिथियों का मान सदा बदलता रहता है, तिथि का क्षय एवं वृद्धि भी होती रहती है किन्तु सप्ताह के दिनों की संख्या 7 ही रहती है। इनमें क्षय और वृद्धि नहीं होती जिससे वारों में कोई परिवर्तन नहीं होता। वार का प्रमाण एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय के बीच की अवधि है तथा इसका आरम्भ भी सूर्योदय से ही होता है। तिथि मान से इसका सम्बन्ध नहीं है।

अंग्रेजी दिनों का नामकरण सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य देवताओं के नाम से रखे गये हैं। 'सन डे' सूर्य के नाम से, 'मन डे' (मून डे) चन्द्रमा के नाम से, 'ट्यूज डे' स्केन्डिनेविया के देवता 'टायर' के नाम से, 'वेडनॉस डे' का नाम भी नोर्स देवता 'ओडिन' के नाम पर रखा गया। इसी प्रकार 'थर्स डे' का नामकरण भी नोर्स देवता 'थौर' के नाम से, 'फ्राई डे' का नाम 'थौर' की माता 'फ्रेया' के नाम से 'सेटर्न' रोम निवासियों के कृषि देवता के नाम से 'सटर डे' रखा गया।

पक्ष (Fortnight)

भारतीय ज्योतिष के अनुसार पन्द्रह दिन का एक पक्ष माना जाता है। इस पक्ष गणना का वैज्ञानिक आधार है। अमावस्या (नव चन्द्र) से पूर्णिमा (पूर्ण चन्द्र) के बीच की अवधि को 'शुक्ल पक्ष' तथा पूर्णिमा से अमावस्या तक के बीच की अवधि को 'कृष्ण पक्ष' कहा जाता है। शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कलाएँ निरन्तर बढ़ती जाती हैं तथा कृष्ण पक्ष में ये क्षीण होती जाती हैं। दोनों पक्ष मिलकर एक मास की अवधि

पूर्ण होती है। अतः पक्ष निर्धारण चन्द्रमा की पृथ्वी की आधी परिक्रमा पूर्ण करने के आधार पर किया गया है किन्तु पाश्चात्य पंचांगों में इस पक्ष निर्धारण का कोई आधार नहीं है। उनके अनुसार किसी भी पन्द्रह दिन की अवधि को 'पक्ष' कह दिया जाता है।

मास गणना

पाश्चात्य पंचांग में मास गणना का कोई सुनिश्चित आधार नहीं है। 365.25 दिन का वर्ष ही इसका मुख्य आधार है जिसे 12 मासों में विभक्त कर दिया गया जिससे प्रत्येक माह में 30 दिन होने से वर्ष में 360 दिन ही होते हैं। फिर 5 दिन की कमी को पूरा करने के लिए 6 माहों में एक-एक दिन बढ़ाकर उन्हें 31 दिन का कर दिया जिससे 366 दिन की संख्या हो जाती है। इसलिए फरवरी को 29 दिन की करके यह संख्या पूरी की। ईसा से 45 वर्ष पूर्व एक रोमन सम्राट् **जूलियस सीजर** ने 'जूलियन केलेण्डर' चलाया। रोम के 13वें **पोप ग्रेगरी** ने (1502-82) ने इसमें बहुत से संशोधन कर इसे नवीन रूप दिया। इससे पूर्व 6 माह जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, सितम्बर व नवम्बर इकतीस दिन के थे तथा बाकी के तीस दिन के थे। फरवरी 29 दिन का रखा गया। बाद में **अगस्टस** के नाम से अगस्त को 31 दिन का करके उसके आगे के महीनों के दिनों का क्रम बदल कर सितम्बर 30, अक्टूबर 31, नवम्बर 30 व दिसम्बर को 31 दिन का कर दिया। इससे जो एक दिन बढ़ गया उसको फरवरी से घटाकर उसे 28 दिन की कर दी किन्तु 'लीप ईयर' (Leap Year) में प्रति चौथे वर्ष उसे 29 दिन की मानी गई क्योंकि पृथ्वी 365.25 दिन में सूर्य की परिक्रमा करती है जिससे प्रति चौथे वर्ष एक दिन जो बढ़ जाता है उसे फरवरी में बढ़ा दिया गया। इसका वर्ष पहली जनवरी सन् 1 से आरम्भ किया जो ईसामसीह का जन्म दिवस था। इस पंचांग को सरल एवं व्यावहारिक होने से अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता मिली। इसे **'ग्रीगोरियन पंचांग'** कहते हैं। भारत में भी सभी राज्य कार्य इसी के आधार पर होते हैं।

इसके महीनों के नाम प्राचीन रोमन त्योहारों, राजाओं तथा देवी-देवताओं व संख्याओं के आधार पर रखे गये। जैसे 'जनवरी' का नाम रोमन देवता **जेनस** के नाम से, 'फरवरी' का नाम **फेरुआ** (फसल काटने के त्यौहार) से, 'मार्च' का नाम कृषि के देवता **मेरिटस** के नाम से रखा गया। रोम के युद्ध के देवता **मार्स** से भी इसका सम्बन्ध जोड़ा जाता है। 'अप्रैल' का नाम बसंत के संदेशवाहक **ओपनर** के कारण रखा गया, 'मई' का नाम **मया** के नाम से, 'जून' का नाम स्त्रियों के विवाह की देवी **जूनो** के नाम से, 'जुलाई' का नाम रोमन सम्राट् **जूलियस सीजर** के नाम से तथा

'अगस्त' का नाम अगस्टस के नाम से रखा गया। 'सितम्बर', 'अक्टूबर', 'नवम्बर' तथा 'दिसम्बर' नाम लेटिन शब्द सात, आठ, नौ और दस की संख्या से लिये गये। पुराने पंचांगों में 10 माह का ही वर्ष होता था जो मार्च से आरम्भ होकर दिसम्बर पर समाप्त होता था इसलिए सितम्बर, अक्टूबर, नवम्बर व दिसम्बर क्रमशः सातवें, आठवें, नवें व दसवें मास होते थे। नवीन बारह माह के पंचांग में जनवरी व फरवरी माह बाद में जोड़ कर वर्ष को बारह माह का किया किन्तु इन महीनोंके नाम पुराने ही रहने दिये।

भारत में मास गणना

भारतीय पंचांग में मास का आधार चन्द्रमा की पृथ्वी की एक परिक्रमा है। जब चन्द्रमा पृथ्वी की एक परिक्रमा पूरी कर लेता है तो उसे एक 'मास' कहा जाता है। चन्द्रमा यह परिक्रमा 27.3 दिन (27.321661 दिन या 27 दिन, 7 घंटे, 43 मिनिट और 11.5 सेकण्ड) में करता है। जैसे आज सायंकाल 8.00 बजे चन्द्रमा यदि कृतिका नक्षत्र में दिखाई दे रहा है तो पुनः उसी स्थिति में वह 27 दिन बाद प्रातः काल 4.00 बजे होगा। इस अवधि को 'नाक्षत्र मास' (Sidereal Month) कहते हैं जिसकी अवधि 27 दिन, 7 घंटे, 43 मिनिट और 11.5 सेकण्ड होती है। किन्तु चन्द्रमा की गति भी कम नहीं है। अण्डाकार पथ में घूमने के कारण कभी वह पृथ्वी के समीप होता है व कभी दूर। पृथ्वी के समीप होने पर उसकी गति तीव्र हो जाती है तथा दूर होने पर गति कम हो जाती है। इन गतियों के अन्तर के कारण जो मास अवधि प्राप्त होती है उसे 'विसंगत मास' (Anomalistic Month) कहते हैं जिसकी अवधि 27.05 दिन (27.554550 दिन यानि 27 दिन 13 घंटे, 18 मिनिट और 33.1 सेकण्ड) की होती है। चन्द्रमा चूँकि 27.4 दिन में पृथ्वी की एक परिक्रमा कर लेता है अर्थात् वह 360 अंश पार कर लेता है किन्तु इस अवधि में पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करने के कारण करीब 30 अंश आगे बढ़ जाती है जिससे चन्द्रमा को पृथ्वी के उसी स्थान की सीध में आने के लिए करीब 2.25 दिन और लग जाते हैं क्योंकि चन्द्रमा की गति प्रतिदिन 13 अंश है जिससे वह 29.5 दिन (29.5305588 दिन अर्थात् 29 दिन, 12 घंटे, 44 मिनिट और 2.87 सेकण्ड) में पृथ्वी का चक्कर पूरा कर पाता है। इस अवधि को 'संयुति मास' (Synodical Month) कहते हैं। इस 'नाक्षत्र मास' और संयुति मास का औसत 'चन्द्र मास' (Lunar Month) कहलाता है जिसकी अवधि 28 दिन होती है। इस प्रकार वर्ष में 12 'पंचांग मास' (Calender Month) होते हैं किन्तु 13 'चन्द्र मांस' होते हैं।

चन्द्रमा के भ्रमण में एक और विशेषता यह है कि इसका परिक्रमण तल पृथ्वी

के परिक्रमण तल की सीध में न होकर 5 अंश 8 कला 43 विकला झुका हुआ है। किन्तु यह झुकाव भी समान नहीं रहता। कभी यह झुकाव बढ़कर 5 अंश 20 कला हो जाता है तथा कभी घटकर 4 अंश 57 कला ही रह जाता है। इस झुकाव के कारण जब वह पृथ्वी के परिक्रमण तल को काटता है तो उसके मिलन बिन्दु को 'संपात' (Nodes) कहते हैं। जब वह पृथ्वी के तल को काटकर ऊपर चढ़ता है तो उसे 'आरोही संपात' तथा जब नीचे उतरता है तो उसे 'अवरोही संपात' कहते हैं। जब चन्द्रमा एक संपात को पारकर पुनः उसी संपात में आ जाता है तो इस अवधि को 'संपात मास' कहते हैं जिसकी अवधि 27 दिन, 5 घंटे, 5 मिनिट और 35.8 सेकण्ड होती है।

भारतीय पंचांगों में मासों के नाम नक्षत्रों के नाम से रखे गये हैं तथा इनका भी आधार चन्द्रमा का किसी विशेष नक्षत्र में आना ही है। पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा जिस नक्षत्र में पूर्व में उदय होता है उसी नाम के मास का अन्त होता है जैसे चैत्र की पूर्णिमा को चन्द्रमा चित्रा नक्षत्र में, बैशाख की पूर्णिमा को विशाखा में, ज्येष्ठ की पूर्णिमा को ज्येष्ठा में, आसाढ़ की पूर्णिमा को पूर्वाषाढ़ा में, श्रावण की पूर्णिमा को श्रवण में, भाद्रपद की पूर्णिमा को पूर्वाभाद्रपद में, आश्विन की पूर्णिमा को आश्विनी में, कार्तिक की पूर्णिमा को कृत्तिका में, मार्गशीर्ष की पूर्णिमा को मृगाशिर में, षौष की पूर्णिमा को पुष्य में। माघ की पूर्णिमा को मघा में फाल्गुन की पूर्णिमा को चन्द्रमा पूर्वा-फाल्गुनी नक्षत्र में पूर्व में उदय होता है। मासों के नाम तथा मास अवधि का यह आधार पूर्णतया गणितीय एवं वैज्ञानिक है। ऐसा पाश्चात्य पंचांगों में नहीं मिलता।

भारतीय पंचांगों में भी मास का आधार चन्द्रमा की ही गति है किन्तु यह गणित सिद्ध न होकर चन्द्र दर्शन से आरम्भ होता है। शुक्ल पक्ष की द्वितीया को जब चन्द्र दर्शन होता है तो इनका नया मास आरम्भ होता है तथा पहली तारीख होती है। यदि किसी कारणवश उस दिन चन्द्रमा न दिखाई दे तो इनकी तारीख आगे खिसक जाती है जिससे इनके कुछ मास 29 दिन के व कुछ 30 दिन के होते हैं। वर्ष में 12 मास मानने के कारण इनका वर्ष भी 354 दिन का ही होता है। तारीख का आरम्भ सायंकाल से माना जाता है।

वर्षमान

पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती हुई सूर्य की भी परिक्रमा करती है। सूर्य की यह परिक्रमा 365 दिन, 5 घंटे, 48 मिनिट और 46.09 सेकण्ड (365.25 दिन) में पूरी होती है। इसकी इस अवधि से 'वर्ष मान' की अवधि प्राप्त होती है। इस अवधि के कारण साधारण वर्ष में 365 दिन माने जाते हैं तथा इस अतिरिक्त समय 5 घंटे, 48

मिनिट और 46.09 सेकण्ड को चार वर्ष बाद पूरा किया जाता है। चार वर्ष में यह समय 23 घंटे, 15 मिनिट और 4.36 सेकण्ड अधिक हो जाता है जिससे 24 घंटे का एक दिन बढ़ाकर फरवरी मास को 29 का करके वर्षको 366 दिन का कर दिया जाता है। इस कारण से प्रति चौथा वर्ष 'लौंध का वर्ष' (Leap Year) कहलाता है।

चूँकि चार वर्षों में 23 घंटे, 15 मिनिट और 4.36 सेकण्ड के अन्तर के बजाय 24 घंटे बढ़ा दिये जाते हैं जिससे चार वर्ष में 44 मिनट और 55.64 सेकण्ड अधिक बढ़ जाते हैं। इस प्रकार 100 वर्ष में इसका 25 गुना समय यानि 18 घंटे, 43 मिनिट और 11 सेकण्ड अधिक बढ़ जाता है। इसको शताब्दी में एक दिन कम करके पूरा किया जाता है। इसलिए शताब्दी का वर्ष फिर 365 दिन का ही होता है तथा उसमें फरवरी 28 ही दिन की होगी।

किन्तु शताब्दी में यह कमी 18 घंटे, 43 मिनिट और 11 सेकण्ड की ही थी जिसके बजाय 24 घंटे (1 दिन) कम कर दिया गया। इस प्रकार शताब्दी में फिर 5 घंटे, 16 मिनिट और 49 सेकण्ड अधिक कम हो जाते हैं जिसे चौथी शताब्दी में जाकर 21 घंटे, 7 मिनिट और 16 सेकण्ड कम हो जाने से चौथी शताब्दी में फिर 24 घंटे बढ़ाकर 366 दिन कर दिये जाते हैं जिसमें फरवरी मास फिर 29 दिन का होगा।

इसके लिए नियम बना दिया गया कि जो सन् 4 और 400 से पूरा विभाजित हो जाय उस वर्ष में फरवरी मास में 20 दिन माने जाएँ जिससे वह वर्ष 366 दिन का होगा तथा पूरे 100 से विभाजित होने पर फरवरी 28 दिन की ही मानी जाय। इस नियम के अनुसार 1700, 1800 एवं 1900 ई0 की शताब्दी 28 दिन की ही हुई किन्तु 2000 ई० की शताब्दी 400 से विभाजित होने के कारण 29 दिन की होगी व वर्ष 366 दिन का होगा। इसके बाद 2100, 2200 तथा 2300 ई० की शताब्दी 400 से पूरी विभाजित नहीं होने से इसमें फरवरी 28 दिन की ही होगी तथा वर्षमान 365 दिन का ही होगा।

वैदिक काल में सूर्य के उत्तरायण तथा दक्षिणायन का ज्ञान था। इसी के आधार पर वर्ष की गणना 'बसंत संपात' से होती थी। एक 'बसंत संपात' से दूसरे 'बसंत संपात' तक का समय एक वर्ष माना जाता था किन्तु ज्योतिष सिद्धान्त काल में यह गणना मेष राशि से होने लगी जिसे 'नाक्षत्र सौर-वर्ष' कहते हैं (जब सूर्य किसी एक नक्षत्र के पास से चलकर पुनः उसी नक्षत्र के पास दिखाई दे, उस अवधि को 'नाक्षत्र वर्ष' कहते हैं) इस नाक्षत्र सौर वर्ष का मान 365 दिन, 6 घंटे, 12 मिनिट और 36.65 सेकण्ड होता है किन्तु 'बसंत विषुव' (Spring Equinox) के सापेक्ष सूर्य के एक चक्कर लगाने को 'सायन वर्ष' कहते हैं। जिसका आधुनिक मान 365 दिन, 5 घंटे,

48 मिनिट और 46.09 सेकण्ड होता है । यह 'सायन वर्ष' 'नाक्षत्र वर्ष' से करीब 24 मिनिट (23 मिनिट, 50.56 सेकण्ड) छोटा होता है । प्राचीन भारतीय 'नाक्षत्र सौर वर्ष' को ही अपनाते थे जिससे ऋतुओं में अन्तर पड़ता है । यह अन्तर वेदांग ज्योतिष काल (1200 ई०पू०) से लेकर अब तक करीब 53 दिन का पड़ चुका है । 2.5 वर्ष में 1 घंटे का अन्तर पड़ता है इस प्रकार 60 वर्ष में एक दिन का अन्तर पड़ जाता है ।

संवत्सर चक्र

भारतीय पंचांगों में 60 वर्ष का एक 'संवत्सर चक्र' माना जाता है । इस समय शक संवत् 1914 (विक्रम संवत् 2049 व सन् 1992 ई०) में 19वाँ संवत्सर 'श्री पार्थिव' चल रहा है जो 17 जुलाई 1992 ई० को समाप्त होकर 18 जुलाई 1992 ई० (श्रावण कृष्ण 3 से नया 20वाँ संवत्सर 'श्री व्यय' आरम्भ होगा । इस प्रंकार प्रति संवत्सर चक्र की समाप्ति पर यदि एक दिन घटा दिया जाय तो 'सायन वर्ष' से इसका सामंजस्य बैठ सकता है । 60 वर्ष के संवत्सर चक्र का यही तात्पर्य रहा होगा । (संवत्सर सूची परिशिष्ट 4 में दी गई है ।)

संवत्सर ज्ञात करना—संवत्सर ज्ञात करने की निम्न विधि है—शक संवत् को दो स्थान पर लिखें । एक स्थान को 22 से गुणा कर 4291 जोड़ें । फिर उसमें 1875 का भाग दें । जो लब्धि हो उसे दूसरे स्थान पर लिखें शक वर्षों में जोड़कर 60 का भाग दें । जो शेष बचे उसमें एक जोड़ देने से संवत्सरादि क्रम से संवत्सर होगा । उदाहरणार्थ—संवत् 2049, सन् 1992 में शक संवत् 1914 है—

1. 1914 x 22 = 42.08 + 4291 = 46399 − 1875
   = 24
2. 1914 + 24 = 1938 − 60

   60) 1938 (32
   180
   138
   120
   18 + 1 = 19 " श्री पार्थिव "

'सायन वर्ष' का आरम्भ सदा एक ही ऋतु से होता है जिससे हजारों वर्षों में भी इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता । भारतीय पंचांग संशोधन समिति ने इसी 'सायन वर्ष' को मान्यता दी है तथा वर्ष का आरम्भ 'बसंत विषुप' (22 मार्च) को माना है । पाश्चात्य पंचांग (ग्रीगोरियन पंचांग) का आधार भी यही 'सायन वर्ष' है ।

दुनियाँ के प्रमुख सन् सम्वत्

इस काल गणना के लिए दुनियाँ में विभिन्न प्रकार के पंचांगों एवं जन्त्रियों का उपयोग किया जाता है जिनका मुख्य आधार पृथ्वी एवं चन्द्रमा की गतियाँ ही हैं। वर्षमान से बड़ी इकाई सन् सम्वत् है जिससे कालावधि का ज्ञान होता है। दुनियाँ में करीब 58 सन् सम्वत् प्रचलित हैं जिनमें सबसे अधिक संख्या भारत में है जहाँ करीब 36 सम्वत् प्रचलित हैं। संक्षेप में इनका नीचे वर्णन किया जा रहा है—

(1) विक्रम सम्वत्—इस सम्वत् का प्रयोग विशेष कर उत्तरी भारत, राजस्थान तथा गुजरात में होता है। उज्जैन के पराक्रमी सम्राट विक्रमादित्य ने जब दक्षिण के शक राजाओं को पराजित किया तो इस विजय को स्थाई रूप देने के लिए उन्होंने अपने नाम से यह सम्वत् चलाया। इन्होंने 95 शक राजाओं को पराजित किया तथा अपने कोष से समस्त प्रजा को ऋण मुक्त किया। यह सम्वत् ईसा से 57 वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ था। यह चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से आरम्भ होकर चैत्र कृष्णा अमावस्या को समाप्त होता है। इसमें वर्ष में 354 दिन होते हैं। वर्ष में इस 11 दिन की कमी को प्रति तीसरे वर्ष एक माह बढ़ाकर (अधिक मास करके) पूरी की जाती है जिससे ऋतुओं में अधिक अन्तर नहीं पड़ता। इस समय दिनांक 4 अप्रैल 1992 ई० शनिवार को नया विक्रम सम्वत् 2049 आरम्भ हुआ है जो चैत्र शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा है।

(2) शक सम्वत्—यह सम्वत् भारत में शक राजाओं के राज्य काल में आरम्भ हुआ। कहते हैं इसका प्रवर्तक राजा शालि वाहन था जिसने अपने राज्याभिषेक की तिथि से यह सम्वत् चलाया। दक्षिण भारत में इसका अधिक प्रचलन है। यह ईस्वी सन् से 78 वर्ष पीछे है। महाराष्ट्र में इनका सर्वाधिक प्रचलन है। विक्रम सम्वत् से यह 135 वर्ष पीछे है। इसका भी आरम्भ चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से होता है तथा चैत्र कृष्ण अमावस्या को समाप्त होता है। इस समय 4 अप्रैल 1992 ई० को शक सम्वत् 1914 का आरम्भ हुआ है जो चैत्र शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा एवं शनिवार है। इसका वर्ष मान भी विक्रम सम्वत् के बराबर ही है।

(3) राष्ट्रीय शक सम्वत्—विक्रम तथा शक सम्वत् में मास तथा तिथि गणना में क्षय एवं वृद्धि होती है जिसे दूर करने के लिए भारत सरकार ने शक सम्वत् में कुछ संशोधन करके 22 मार्च सन् 1957 ई० से नया राष्ट्रीय सम्वत् चलाया। उस दिन शक सम्वत् 1879 था। इस नये राष्ट्रीय शक सम्वत् के अनुसार वर्ष का आरम्भ 22 मार्च से होता है तथा वर्ष में 365 दिन होते हैं। शक सम्वत् में 78 जोड़ देने के बाद यदि यह संख्या 4 से विभाजित हो जाय तो उस वर्ष को 'लौंध का वर्ष' माना जाय जो

366 दिन का होगा। साधारण वर्ष में चैत्र मास 30 दिन का तथा लौंध के वर्ष में 31 दिन का होगा। चैत्र माह के बाद के 6 महीने 30 दिन के तथा शेष 5 महीने 31 दिन के होंगे। इस संशोधन के बाद यह अन्तर्राष्ट्रीय पंचांग के समकक्ष रखा जा सकता है। इस समय राष्ट्रीय शक सम्वत् 1914 का आरम्भ हुआ है।

(4) अन्य सन् सम्वत्—भारत में अन्य भी कई सन् सम्वत् चलते हैं। बौद्ध सम्वत् भगवान बुद्ध के निर्वाण दिवस ईसा से 543 वर्ष पूर्व बैशाखी पूर्णिमा से आरम्भ हुआ। इसके अनुसार 2535वाँ बौद्ध सम्वत् है। बंगाली सम्वत् 1555-56 में आरम्भ हुआ था जिसका अभी 437वाँ वर्ष है। जैन महावीर सम्वत् 2518 चल रहा है।

(5) कलि सम्वत्—भारत में कलियुग सम्वत् भी प्रचलित है। भारत के चार युगों में कलियुग का मान 4,32,000 वर्ष है। **वराहमिहिर** की गणना के अनुसार इसका आरम्भ 3102 ई० पू० 18 फरवरी के आरम्भ वाली रात्रि को माना गया है जिसके 18 फरवरी 1992 ई० तक 5093 वर्ष बीत चुके हैं तथा 4,26,907 वर्ष और शेष हैं। इसके अनुसार भगवान कृष्ण के अवतार को 5,218 वर्ष तथा महाभारत युद्ध के समाप्त हुए 5093 वर्ष हुए हैं। यही हमारा 'कलि सम्वत्' है।

(6) सृष्टि सम्वत्—भारतीय पंचांगों में सृष्टि सम्वत् को भी मान्यता प्राप्त है। ऐसा बड़ा मान विश्व के अन्य किसी पंचांग में नहीं मिलता। ब्रह्मा के एक दिन का मान 4,32,00,00,000 मानव वर्षों के बराबर होता है जिसे 'कल्प' कहते हैं। कल्पारम्भ में ही ब्रह्मा सृष्टि की रचना करता है। वर्तमान सृष्टि रचना का यह पहला ही कल्प है जिसका नाम 'श्वेत वराह' है। इस वर्तमान कल्प का आरम्भ आज से 1,97,29,49,093 मानव वर्ष पूर्व हुआ था। ब्रह्मा को इस सृष्टि रचना में 1,70,64,000 मानव वर्ष लगे। इस प्रकार आज से 1,95,58,85,093 मानव वर्ष पूर्व चैत्र शुक्ला प्रतिपदा रविवार को प्रातःकाल सूर्योदय के समय मेष राशि के आदि में जब सब ग्रह थे यह वर्तमान सृष्टि अस्तित्व में आई। यही भारत का सृष्टि सम्वत् है जो हमारे पंचांगों में दिया रहता है। भारतीय मान्यतानुसार वर्तमान सृष्टि भोग के अभी 2,34,70,50,907 मानव वर्ष शेष हैं जिसके बाद प्रलय होकर फिर नई सृष्टि का निर्माण होगा। आधुनिक विज्ञान वेता भी सृष्टि की आयु 2 अरब वर्ष मानते हैं। इसके लिए निम्न श्लोक शास्त्रों में है—

चैत्रे मास जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहार्न।
शुक्ल पक्षे समग्रं तत् तदा सूर्योदये सति॥

(चैत्र शुक्ला प्रतिपदा रविवार के दिन प्रातःकाल सूर्योदय के समय जबकि सब

ग्रह अश्विनी-नक्षत्र और मेष राशि के आदि में थे, ब्रह्मदेव ने सृष्टि की रचना की उसी समय सब ग्रहों का अपने-अपने कक्ष में भ्रमण करना आरम्भ हुआ।)

सर्वप्रथम रविवार के दिन ही सूर्य का दर्शन हुआ इसलिए रविवार को सप्ताह या सृष्टि का आदि वार माना जाता है। इसी के साथ दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, मन्वन्तर आदि का भी आरम्भ हुआ।

(7) ब्रह्म सम्वत्—भारत ने अपनी काल गणना में ब्रह्म सम्वत् को भी मान्यता दी है जो काल गणना के क्रम में सृष्टि सम्वत् से भी बड़ी इकाई है। ब्रह्मा के एक दिन को सृष्टि की सम्पूर्ण आयु मानी जाती है जिसका मान 32,00,00,000 मानव वर्षों के बराबर होता है। ब्रह्मा के 360 दिन का एक 'ब्रह्म वर्ष' होता है तथा ऐसे 100 ब्राह्म वर्ष की ब्रह्मा की आयु मानी जाती है। इस प्रकार इस सम्पूर्ण 'ब्रह्मायु' का मान 15,55,20,00,00,000 मानव वर्ष होता है तथा इनती ही बड़ी ब्रह्मा की रात्रियों का मान होता है, जिससे ब्रह्मा की सम्पूर्ण आयु 31,10,40,00,00,00,000 मानव वर्ष के बराबर होती है। इस सम्पूर्ण आयु में ब्रह्मा 36000 बार सृष्टि की रचना एवं विध्वंस करते हैं। अब तक ब्रह्मा 18000 बार सृष्टि की रचना व विध्वंस कर चुके हैं तथा इतनी ही बार रात्रियाँ व्यतीत हो चुकी हैं। इस प्रकार ब्रह्मा की आधी आयु (15,55,20,00,00,000 मानव वर्ष) समाप्त हो चुकी है तथा इस 18001 वीं सृष्टि (श्वेत वराह कल्प) के भी 1,97,29,49,093 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस आधार पर अब तक इस ब्रह्म सम्वत् के 15,55,21,97,29,29,093 मानव वर्ष व्यतीत हो चुके हैं तथा चैत्र शुक्ला प्रतिपदा सम्वत् 2049 (4 अप्रैल 1992 ई०) से नया ब्रह्म सम्वत् 15,55,21,97,29,49,094 वाँ आरम्भ हुआ है। इस गणना का आधार कोरा पौराणिक नहीं है बल्कि पूर्ण वैज्ञानिक है। सृष्टि रचना से पूर्व 'हिरण्यगर्भ' था जिसका प्रथम शब्द स्फोट आज से 15,55,21,97,29,49,093 वर्ष पूर्व हुआ जिससे सृष्टि रचना का कार्य आरम्भ हुआ। इससे मन्दाकिनियों का निर्माण हुआ व बाद में सूर्य एवं उनके सौर मण्डल बने। हमारे सूर्य का निर्माण 1,97,29,49,093 वर्ष पूर्व हुआ तथा ग्रहों के निर्माण आदि की प्रक्रिया को पूर्ण होने में 1,70,64,000 वर्ष लगे। इसके बाद हमारे सौर-मण्डल की सृष्टि अस्तित्व में आई जिसको 1,95,58,85,093 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। यदि इस भारतीय दृष्टि का वैज्ञानिक विश्लेषण वर्तमान विज्ञान की शब्दावली में किया जाय तो यह काल गणना निस्संदेह सत्य के अधिक समीप प्रतीत होती है। जबकि वैज्ञानिक अभी इन रहस्यों की खोज में उलझे हुए हैं।

(8) ईसवी सन्—ईसवी सन् का आरम्भ ईसा के अनुमानित जन्म दिवस को

आधार मानकर हुआ है किन्तु मूल में यह रोमन सम्वत् है । आरम्भ में इसमें 304 दिन का वर्ष होता था जिसका आरम्भ मार्च से होता था तथा दिसम्बर तक इसमें दस ही मास होते थे । फिर जनवरी और फरवरी दो माह और बढ़ा कर चन्द्रमा की गति के अनुसार वर्ष में 354 दिन किये गये । **जूलियस सीजर** ने इसमें संशोधन करके 'सौर वर्ष' के अनुसार बना दिया । इसके बाद **पोप ग्रेगरी** 13वें ने इसमें चले आ रहे 11 दिन के अन्तर को सन् 1852 ई० में दूर कर 4 अक्टूबर को 15 अक्टूबर मानकर इसे पूर्ण रूपेण 'सौर वर्ष' बना दिया तथा 'लौंध के वर्ष' में एक दिन जोड़ने का नियम बना दिया । इस सन् का आरम्भ 1 जनवरी से होकर 31 दिसम्बर को समाप्त होता है ।

वर्तमान ईसवी सन् 1992 चल रहा है। यह सरल, सुविधाजनक एवं व्यावहारिक होने से दुनियाँ के अधिकांश देशों में तथा हमारे देश में भी समस्त राज्य कार्यों में इसी का प्रचलन है ।

(9) हिजरी सन—यह मुसलमानों का अपना धार्मिक सम्वत् है जिसकी उत्पत्ति अरब से है । इस्लाम धर्म के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद जब मक्का से मदीना गये उस दिन विक्रम सम्वत् 679 की श्रावण शुक्ला द्वितीया तथा ईसवी सन् के अनुसार 15 जुलाई सन् 622 ई० का दिन तथा सायंकाल का समय था । **आदि खलीफा उमर** ने इसी तिथि से हिजरी सन् मानने की घोषणा की । इस सन् के अनुसार मास का आरम्भ नये चाँद से तथा तिथि का आरम्भ सायंकाल से होता है । प्रत्येक मास 29 या 30 दिन का होता है तथा वर्ष 354 दिन का होता है । इस 11 दिन के अन्तर को नहीं निकालने से इनका वर्ष सौर-वर्ष से 11 दिन छोटा है जिससे इनके त्यौहार प्रति वर्ष 11 दिन पूर्व ही आ जाते हैं तथा महीनों का ऋतुओं से सामंजस्य नहीं रहता । इसका एक परिणाम यह भी होता है कि इनका सन् प्रतिवर्ष 11 दिन आगे बढ़ जाता है जिससे 33 वर्ष में इनका एक वर्ष अधिक हो जाता है तथा शताब्दी तक 3 वर्ष बढ़ जाते हैं। इस समय इनका सन् 1412 चल रहा है जो 3 जुलाई 1992 ई० को समाप्त होता है। ईसवी सन् के अनुसार इस सन् को आरम्भ हुए 1370 वर्ष (1992-622) ही हुए हैं किन्तु इस अवधि में 42 वर्ष अधिक बढ़ जाने से इनका सन् 1412 चल रहा है ।

(10) पारसी सन्—इस सन् का आरम्भ विक्रम संवत् से 689 वर्ष पीछे है । इनका महीना 30 दिन का तथा वर्ष 360 दिन का होता है । वर्षान्त में 5 दिन गाथाओं के और जोड़कर वर्ष को 365 दिन का कर देते हैं किन्तु 6 घंटे की जो कमी रहती है वह ये प्रति चार वर्ष में न निकाल कर 120 वर्ष में एक अधिक मास जोड़कर पूरा

करते हैं। इनका वर्तमान वर्ष 1360 चल रहा है। यह सन् 632 ई० में आरम्भ हुआ था।

(11) इथियोपियन सन्—अफ्रीका के उत्तर में सूडान तथा लाल सागर के मध्य इथियोपिया देश स्थित है। इसका भी अपना राष्ट्रीय पंचांग है जो 'सौर वर्ष' पर आधारित है। इनका नया वर्ष 11 सितम्बर से आरम्भ होता है तथा लोंध के वर्ष में 12 सितम्बर से। इनका प्रत्येक माह 30 दिन का होता है जिससे इनका वर्ष 360 दिन का होता है जो 5 सितम्बर को समाप्त हो जाता है जिससे इन अतिरिक्त 5 दिनों का तेरहवाँ महीना करके वर्ष की संख्या 365 कर ली जाती है। सरकारी काम-काज में इस तेरहवें महीने का वेतन नहीं दिया जाता। इनके तेरह महीनों के नाम इथियोपियन ही है जिन्हें मसकरम, तिकस्त, हिडार, तहसाल, टर, याकातित, मेगाबित, मियाजिया, गिनबत, सेने, हेम्लो, नहासी तथा पेगवीमन है। इनके आधार पर ये अपने देश को तेरह महीनों वाला देश कहते हैं। इस तेरहवें मास को 'पूरक मास' कहते हैं जो 5 दिन का होता है तथा 'लौंध के वर्ष' में 6 दिन का।

यहाँ का वर्ष ग्रिगोरियन वर्ष से 7 वर्ष 4 माह पीछे है। इस वर्ष 11 सितम्बर 1992 ई० से इनका नया वर्ष 1985 आरम्भ हुआ है।

दिन का आरम्भ भी यहाँ प्रातः 6.00 बजे से माना जाता है। उस समय यहाँ की घड़ियों में 12.00 बजाये जाते हैं। इसके बाद 1,2,3,4 बजते हैं। सायंकाल 6.00 बजे फिर इनके 12 बजते हैं इसके बाद का समय पी०एम० कहलाता है। यहाँ कोई 4 ए०एम० कहता है तो इसका अर्थ प्रातः 10.00 बजे हैं। किन्तु इस समय का प्रयोग केवल राजधानी आर्दस अबाबा में ही होता है। यहाँ का समय ग्रिनविच समय से 3 घंटा आगे तथा भारत से 2.30 घंटा पीछे है। जब भारत में सायंकाल 6 बजते हैं तो यहाँ अपराहन के 3.30 ही बजते हैं।

भारती की काल गणना

भारत ने अपनी काल गणना में विश्व में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है। इसके सूक्ष्मतम तथा उच्चतम मानों का पूरा गणितीय एवं वैज्ञानिक आधार है। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में भारत में उच्च वैज्ञानिक प्रतिभा थी जिससे इतने ऊँचे मान स्थापित कर पाया। यहाँ भारत की काल गणना सम्बन्धी धारणा का थोड़ा विवेचन किया जा रहा है। भारत में काल गणना की सबसे छोटी इकाई 'निमेष' है तथा सबसे बड़ी इकाई 'ब्रह्मायु' है जिसका मान 31,10,40,00,00,00,000 मानव वर्ष के बराबर है। इनका विभाजन अग्र प्रकार से किया गया है—

18 निमेष = 1 काष्ठा

30 काष्ठा = 1 कला

30 कला = 1 मुहूर्त = 2 घटी

30 मुहूर्त (60 घटी) = 1 अहोरात्र (दिन-रात)

(अर्थात् 24 मिनिट = 1 घटी, 2.5 घटी = 1 घंटा, 24 घंटा = 1 दिन-रात)

30 अहोरात्र (एक माह) = 1 पितृ दिवस

(इसमें कृष्ण पक्ष पितृ दिवस तथा शुक्ल पक्ष रात्रि होती है)

12 पितृ दिवस (360 दिन या 1 मानव वर्ष) = 1 दैव दिवस

(इसमें उत्तरायण दैव दिन तथा दक्षियायन दैवरात्रि होती है)

360 दैव दिवस (360 मानव वर्ष) = 1 दैव वर्ष

12,000 दैव वर्ष (43,20,000 मानव वर्ष) = 1 दैवयुग, महायुग या चतुर्युग।

1,000 महायुग (4,32,00,00,000 मानव वर्ष) = 1 ब्राह्म दिन (ब्रह्मा का दिन) या कल्प सृष्टि का रचना काल।

1,000 महायुग (4,32,00,00,000 मानव वर्ष) = 1 ब्राह्म रात्रि का प्रलय काल।

(सृष्टि की आयु एक कल्प के बराबर होती है तथा इतना ही लम्बा समय प्रलय काल है। एक सृष्टि का अन्त होकर दूसरी का निर्माण 4,32,00,00,000 मानव वर्ष के बाद होता है)

30 ब्राह्म दिन या कल्प (1,29,60,00,00,000) = 1 ब्राह्म मास (ब्रह्मा का महीना)

12 ब्राह्म मास (15,55,20,00,00,000 मानव वर्ष) = 1 ब्राह्म वर्ष

(एक ब्राह्म वर्ष में उपरोक्त मानव वर्ष केवल ब्रह्मा के दिनों की (कल्प) संख्या है तथा इतना ही समय उसकी रात्रि होती है जिससे दोनों का योग 31,10,40,00,00,000 मानव वर्ष के बराबर होता है)

100 ब्राह्म वर्ष (15,55,20,00,00,00,000 मानव वर्ष) = 1 ब्रह्मायु।

(इतने ही समय की ब्रह्मा की रात्रि होने से ब्रह्मायु का कुल मान 31,10,40,00,00,00,000 मानव वर्ष के बराबर होता है)

कल्प गणना

ऊपर जो काल गणना दी गई है वह 'ब्रह्मा' की सम्पूर्ण आयु को प्रकट करती है किन्तु यह ब्रह्मा सम्पूर्ण सृष्टि का रचयिता है जो अपने एक दिन में सृष्टि की रचना करता है तथा रात्रि के समय उसका शयन काल होता है जिससे प्रलय होता है। इस प्रकार यह अपने सम्पूर्ण जीवन काल में 36000 बार सृष्टि की रचना व प्रलय करता है इसके बाद वह स्वयं ही नष्ट हो जाता है। फिर नया ब्रह्मा पैदा होकर सृष्टि का नया क्रम आरम्भ करता है। वर्तमान ब्रह्मा अपनी आयु का आधा भाग पार कर चुका है जिसमें 18000 बार सृष्टि का निर्माण व विध्वंश हो चुका है। वर्तमान सृष्टि 18001 वीं है। एक कल्प, ब्रह्मा का एक दिन होता है तथा ऐसे 30 कल्पों का ब्रह्मा का एक मास होता है। इन 30 कल्पों के नाम निम्न प्रकार हैं—

1. श्वेत वराह	2. नीला लोहित	3. वामदेव
4. राथन्तर	5.रावण	6. प्राण
7. वृहत्	8. कन्दर्भ	9. सत्य
10. ईशान	11. व्यान	12. सारस्वत
13. उदान	15. गरुड़	15. कूर्म

ये पन्द्रह कल्प इसके मास के शुक्ल पक्ष के दिन हैं। अन्तिम कल्प 'पूर्ण पूर्णिमा' है। इसके बाद इस माह के 15 कृष्ण पक्षीय कल्प हैं—

1. नारसिंह	2. समान	3. आग्नेय
4. सोम	5. मानव	6. तत्पुरुष
7. वैकुण्ठ	8. लक्ष्मी	9. सावित्री
10. घोर	11. वराह	12. वैराज
13. गौरी	14. माहेश्वर	15. पितृ कल्प

पितृ कल्प इसकी अमावस्या का दिन है। भारतीय गणनानुसार अब तक ऐसे 600 मास (50 वर्ष) ब्रह्मायु के व्यतीत हो चुके हैं तथा वर्तमान कल्प 601 वें मास का प्रथम 'श्वेत वराह' कल्प है।

मन्वन्तर काल

ऊपर ब्रह्मा अपने सम्पूर्ण जीवन काल में सृष्टि की रचना कितनी बार व कितने समय में करता है यह दिखाया गया है किन्तु हमारी यह वर्तमान सृष्टि किस कालक्रम में गुजर रही है इसका विवेचन इस मन्वन्तर सिद्धान्त से ज्ञात होता है। एक सृष्टि की

अवधि ब्रह्मा का एक दिन या 'कल्प' कहलाता है जिसका मान 4,32,00,00,000 मानव वर्ष के बराबर है। इसके बाद प्रलय होती है। इस अवधि में ब्रह्मा द्वारा 14 मनु पैदा होते हैं जिनकी प्रत्येक की अवधि 71 दैवयुग (चतुर्युग) अर्थात् 30,67,20,000 मानव वर्ष के बराबर होती है। इसके बाद नया मनु कार्य करता है। एक मनु की इस अवधि को एक 'मन्वन्तर' कहते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण एक सृष्टि काल में 14 मन्वन्तर होते हैं जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—

1. स्वायंभुव	2. स्वारोचिष	3. उत्तम
4. तामस	5. रैवत	6. चाक्षुष
7. वैवश्वत	8. सावर्णि	9. दक्षसावर्णि
10. ब्रह्म सावर्णि	11. धर्म सावर्णि	12. रुद्र सावर्णि
13. दैव सावर्णि	14. इन्द्र सावर्णि	

ये 14 मनु मिलकर ब्रह्मा का एक दिन होता है जिनमें प्रथम सात दिन का उत्तरार्द्ध है।

इस एक मन्वन्तर में 71 दैवयुग (चतुर्युग) होते हैं। एक चतुर्युग का मान 43,20,000 मानव वर्ष के बराबर होता है। ये चतुर्युग हैं—1. सत्युग, 2. त्रेता, 3. द्वापर तथा 4. कलियुग।

इन युगों में कलियुग से दूना द्वापर, तीन गुना त्रेता तथा चार गुना सत्युग होता है अर्थात् सत्युग के 4 पाद, त्रेता के 3 पाद, द्वापर के 2 पाद तथा कलियुग का एक पाद होता है। इसके अनुसार इनकी वर्ष संख्या निम्न प्रकार है—

1. सतयुग	(4800 देव वर्ष)	17,28,000	मानव वर्ष
2. त्रेता युग	(3600 दैव वर्ष)	12,96,000	मानव वर्ष
3. द्वापर	(2400 दैव वर्ष)	8,64,000	मानव वर्ष
4. कलियुग	(1200 दैव वर्ष)	4,32,000	मानव वर्ष
एक चतुर्युगी योग	(12000 दैव वर्ष)	43,20,000	मानव वर्ष

सृष्टि भोग

भारतीय काल गणना के अनुसार वर्तमान सृष्टि की कुल आयु 4,32,00,00,000 मानव वर्ष के बराबर है जो 14 मन्वन्तर में विभाजित है। अब तक 6 मन्वन्तर बीत चुके हैं तथा सातवाँ मन्वन्तर 'वैवश्वत्' चल रहा है। इसके भी 27 चतुर्युग व्यतीत हो चुके हैं तथा यह 28 वाँ चतुर्युग है। इसके भी तीन युग बीत

चुके हैं तथा चौथा कलियुग वर्तमान है। इस कलियुग के भी 3 अप्रैल 1992 (चैत्र कृष्णा अमावस्या संवत् 2048) तक 5093 वर्ष बीत चुके हैं। इस प्रकार इस वर्तमान सृष्टि के कुल 1,97,29,49,093 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं तथा अभी प्रलय में 2,34,70,50,097 वर्ष शेष हैं। सृष्टि के कुल व्यतीत वर्षों में 1,70,64,000 वर्ष इसकी निर्माण प्रक्रिया में लगे जिससे सृष्टि का आरम्भ आज से 1,95,58,85,093 वर्ष पूर्व माना जाता है। वैज्ञानिक भी इस सृष्टि की आयु 2 अरब वर्ष स्वीकार करते हैं।

वैज्ञानिक आधार

भारत की इस काल गणना का निश्चित आधार है। वैज्ञानिकों ने अब तक जितनी शोध करके सृष्टि रचना सम्बन्धी जितने तथ्य प्रकट किये हैं उनमें से अधिकांश भारतीय मान्यताओं से मेल खा रहे हैं जिससे ज्ञात होता है कि भारतीय तत्त्व वेत्ताओं ने बड़ी खोज, लगन एवं सूक्ष्म-दृष्टि से इन मानों को स्थापित किया है जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती न इनको पौराणिक मात्र मानकर झुठलाया जा सकता है। वेदों में इस प्रकार की वैज्ञानिक सामग्री भरी पड़ी है किन्तु इनकी समुचित व्याख्या के अभाव में यह केवल पूजा-पाठ एवं कर्मकाण्ड की ही सामग्री बनकर रह गई है। वेदों पर पंडितों का एकाधिकार होने तथा वेद निंदकों के समुदाय के इकट्ठा होने से भी इसके विज्ञान पक्ष को समझने में बाधा पड़ी। विज्ञान के विकास के कारण आज उन्हें पुन: प्रकाश में लाने का अनुकूल अवसर है। वेद विद्वानों का यह दायित्व हो जाता है कि इसके विज्ञान पक्ष को वैज्ञानिक विधि एवं भाषा में प्रकट करें तो वर्तमान विज्ञान से भी अधिक सामग्री उपलब्ध हो सकती है। यदि वैज्ञानिक इनका अध्ययन करके कोई शोध करें तो निश्चित ही उन्हें आशातीत सफलता मिल सकती है।

परिशिष्ट उत्तर अक्षांश-1 (अ)

राजस्थान के मुख्य-मुख्य स्थानों के अक्षांश तथा देशान्तर

क्र०	स्थान	अक्षांश	देशान्तर
1	अजमेर	$26\cdot5^0$ उ० अ० (26^0 27')	74^0 42' पू० दे०
2	अलवर	$27\cdot5^0$ उ० अ० (27^0 34')	76^0 38' पू० दे०
3	उदयपुर	$24\cdot5^0$ उ० अ० (24^0 37')	73^0 42' पू० दे०
4	कोटा	. 25^0 उ० अ० (25^0 10')	75^0 52' पू० दे०
5	कौकरोली	. 25^0 उ० अ० (25^0 2')	73^0 54' पू० दे०
6	चित्तौड़गढ़	. 25^0 उ० अ० (24^0 54')	74^0 42' पू० दे०
7	जयपुर	. 27^0 उ० अ० (26^0 56')	75^0 52' पू० दे०
8	जोधपुर	. 26^0 उ० अ० (26^0 19')	73^0 04' पू० दे०
9	जैसलमेर	. 27^0 उ० अ० (26^0 55')	70^0 57' पू० दे०
10	टोंक	. 26^0 उ० अ० (26^0 16')	75^0 50' पू० दे०
11	नागोर	. 27^0 उ० अ० (27^0 11')	73^0 42' पू० दे०
12	डूँगरपुर	. 24^0 उ० अ० (23^0 40')	73^0 42' पू० दे०
13	झालावाड़	$24\cdot5^0$ उ० अ० (24^0 32')	76^0 12' पू० दे०
14	नाथद्वारा	. 25^0 उ० अ० (24^0 56')	73^0 52' पू० दे०
15	बाँसवाड़ा	$23\cdot5^0$ उ० अ० (23^0 30')	74^0 24' पू० दे०
16	बूँदी	$25\cdot5^0$ उ० अ० (25^0 27')	75^0 41' पू० दे०
17	बीकानेर	. 28^0 उ० अ० (28^0 10')	73^0 22' पू० दे०
18	भरतपुर	. 27^0 उ० अ० (27^0 15')	77^0 30' पू० दे०
19	माउण्ट आबू	$24\cdot5^0$ उ० अ० (24^0 40')	72^0 45' पू० दे०
20	सिरोही	$24\cdot5^0$ उ० अ० (24^0 35')	73^0 02' पू० दे०

परिशिष्ट-1—(ब)

भारत के मुख्य-2 स्थानों के अक्षांश तथा देशान्तर

क्र०	स्थान	अक्षांश	देशान्तर
1	अयोध्या	26^0 $48'$ उत्तर	82^0 $14'$ पूर्व
2	अलीगढ़	27^0 $54'$ उत्तर	78^0 $6'$ पूर्व
3	अहमदाबाद	23^0 $2'$ उत्तर	72^0 $38'$ पूर्व
4	आगरा	27^0 $10'$ उत्तर	78^0 $5'$ पूर्व
5	इन्दोर	22^0 $40'$ उत्तर	75^0 $50'$ पूर्व
6	उज्जैन	23^0 $9'$ उत्तर	75^0 $43'$ पूर्व
7	कलकत्ता	22^0 $34'$ उत्तर	88^0 $24'$ पूर्व
8	काशी	25^0 $20'$ उत्तर	83^0 $0'$ पूर्व
9	खण्डवा	29^0 $50'$ उत्तर	76^0 $18'$ पूर्व
10	गया	24^0 $49'$ उत्तर	85^0 $1'$ पूर्व
11	जगन्नाथ पुरी	19^0 $46'$ उत्तर	85^0 $48'$ पूर्व
12	जम्मू	32^0 $44'$ उत्तर	74^0 $54'$ पूर्व
13	द्वारिका	27^0 $14'$ उत्तर	69^0 $1'$ पूर्व
14	दिल्ली	28^0 $38'$ उत्तर	77^0 $12'$ पूर्व
15	बद्रीनाथ	30^0 $44'$ उत्तर	79^0 $32'$ पूर्व
16	बम्बई	18^0 $57'$ उत्तर	72^0 $50'$ पूर्व
17	भोपाल	23^0 $16'$ उत्तर	77^0 $36'$ पूर्व
18	मद्रास	13^0 $4'$ उत्तर	80^0 $17'$ पूर्व
19	मथुरा	27^0 $28'$ उत्तर	77^0 $41'$ पूर्व
20	लखनऊ	26^0 $55'$ उत्तर	80^0 $59'$ पूर्व
21	हरिद्वार	29^0 $56'$ उत्तर	78^0 $13'$ पूर्व

परिशिष्ट-2

सौर-मण्डल परिचय

क्र०	नाम सदस्य	सूर्य से दूरी (कि०मी० में)	व्यास (कि०मी० में)	आकार (पृथ्वी से गुना)	धूरी पर घूमने का समय	कक्षा में घूमने का समय	उपग्रहों की संख्या	ग्रहों का झुकाव	घनत्व जल =1	तापमान सेंटीग्रेड में	विपलायन वेग कि०मी० प्रति सेकण्ड
1	सूर्य	–	14,00,000	13 लाख	25 दिन 5 घंटे	25 करोड़ वर्ष	–	–	$1\cdot5^0$	6000^0	–
2	बुध	5,78,00,000	4,875	2/3	88 दिन	88 दिन	0	7^0	$3\cdot8^0$	4308^0	3.6
3	शुक्र	10,72,00,000	12,320	लगभग बराबर	23 घंटे 21 मिनिट 2	247 दिन 1 225 दिन 1	0	$3\cdot4^0$	$5\cdot2^0$	100^0	10.08
4	पृथ्वी	15,00,00,000	12,800	1.	23 घंटे 56 मिनिट	$365\frac{1}{4}$ दिन	1	$23\cdot5^0$	$5\cdot5^0$	59^0	11.2
5	मंगल	22,64,00,000	6,768	1/3	25 घंटे	687 दिन	2	25^0	$4\cdot0^0$	10^0	5
6	अवान्तर ग्रह	39,52,00,000	16 से 800	–	–	–	–	–	–	–	–
7	बृहस्पति	77,32,80,000	1,42,000	1312	10 घंटे	12 वर्ष	12	–	$1\cdot3^0$	-130^0	60
8	शनि	1,41,88,47,840	1,20,000	700	10 घंटे 14 मिनिट	$29\frac{1}{2}$ वर्ष	9	–	$\cdot7^0$	-150^0	35.2
9	अरुण	2,85,28,00,000	46,880	64	10 घंटे 42 मिनिट	84 वर्ष	5	98^0	$1\cdot5^0$	-190^0	20.8
10	वरुण	4,46,80,00,000	44,320	17	16 घंटे	165 वर्ष	2	$1\cdot8^0$	$1\cdot6^0$	-218^0	16
11	यम	5,92,00,00,000	5,768	–	6 दिन 9 घंटे	250 वर्ष	2	17^0	$4\cdot3^0$	-240^0	2

परिशिष्ट-3

मुख्य-मुख्य तारामण्डल एवं सितारे

शीत ऋतु के तारामण्डल—दिसम्बर, जनवरी, फरवरी

क्र०	राशि एवं अन्य तारामंडल	मुख्य-2 नक्षत्र एवं सितारे	श्रेणी	वास्तविक तेजस्विता जब सूर्य की 1 मानी जाय	पृथ्वी से दूरी प्रकाश वर्षों में	किस तारीख को रात्रि 9 बजे याम्योत्तर रेखा पर आता है	जयपुर (27^0 उ० अ० के शिरोबिन्दु से कितने अन्तर पर
1	तिमि मंडल	1 मीरा 2 विराध	— —	— —	— —	14 नवम्बर 10 दिसम्बर	41^0 दक्षिण 30^0 दक्षिण
2	मेष राशि	3 अश्विनी 4 भरणी	— —	— —	— —	. 3 दिसम्बर 10 दिसम्बर	. 9^0 दक्षिण . 2^0 दक्षिण
3	देवयानी	5 देवयानी	—	—	—	. 7 दिसम्बर	13^0 उत्तर
4	त्रिकोण मंडल	6 त्रिकोण	—	—	—	. 7 दिसम्बर	. 3^0 उत्तर
5	वैतरणी मंडल	7 नदी मुख	प्रथम	280	70	. 7 दिसम्बर	85^0 दक्षिण
6	कृतिका मंडल	8 कृतिका नक्षत्र	—	—	—	28 दिसम्बर	. 4^0 दक्षिण
7	ययाति मंडल	—	—	—	—	14 जनवरी	23^0 उत्तर
8	वृष राशि	9 रोहिणी	प्रथम	91	53	18 जनवरी	12^0 दक्षिण
9	मृग मंडल	10 मृगशिर 11 आर्द्रा 12 मृग-लोचनी 13 वाणरज 14 इल्वाक	— प्रथम — प्रथम —	— 3600 – 21000 –	200 300 – 540 –	२८ जनवरी 3 फरवरी 31 जनवरी 24 जनवरी 3 फरवरी	19^0 दक्षिण 19^0 दक्षिण 17^0 दक्षिण 35^0 दक्षिण 36^0 दक्षिण
10	ब्रह्म मंडल	15 अग्नि 16 ब्रह्म हृदय 17 गालव 18 प्रजापति	— प्रथम — —	— 150 – –	– 42 – –	25 जनवरी 28 जनवरी 5 फरवरी 7 फरवरी	. 2^0 उत्तर 19^0 उत्तर 18^0 उत्तर 11^0 उत्तर

11	शशक मंडल	—	—	—	—	28 जनवरी	44^0 दक्षिण
12	कपोत मंडल	—	—	—	—	28 जनवरी	59^0 दक्षिण
13	नौका मंडल	19 अगस्त्य	प्रथम	1900	100	7 फरवरी	80^0 दक्षिण
14	श्वान मंडल	20 लुब्धक	प्रथम	30	86	17 फरवरी	44^0 दक्षिण
15	शुनि मंडल	21 अघारा 22 प्रभास	— प्रथम	– 7	– 11	26 फरवरी 28 फरवरी	18^0 दक्षिण 19^0 दक्षिणं
16	मिथुन राशि	23 प्रकृति 24 पुरुष	— प्रथम	– 25	– 29	28 फरवरी 3 मार्च	$.\ 5^0$ उत्तर $.\ 1^0$ उत्तर

बसन्त ऋतु के तारामण्डल—मार्च, अप्रैल, मई

17	पुलोमा मंडल	–	—	—	—	७ मार्च	23^0 उत्तर
18	कर्क राशि	25 पुष्य 26 अश्लेषा	— —	— —	— —	14 मार्च 21 मार्च	$.\ 1^0$ उत्तर $.\ 3^0$ दक्षिण
19	वासुकी मंडल	–	—	—	—	१४ मार्च	22^0 दक्षिण
20	सिंह राशि	27 मघा 28 पू० फाल्गुनी 29 उ० फाल्गुनी	प्रथम — —	130 – –	67 – –	. 7 अप्रैल 24 अप्रैल . 3 मई	15^0 दक्षिण $.\ 3^0$ दक्षिण $.\ 9^0$ दक्षिण
21	सप्तर्षि मंडल	30 पुलह 31 क्रतु 32 पुलस्त्य 33 अत्रि 34 अंगिरा 35 वशिष्ठ 36 मरीचि	— — — — — — —	— — — — — — —	75 90 100 – – 80 –	21 अप्रैल 21 अप्रैल . 7 मई . 7 मई 21 मई . 7 जून . 7 जून	30^0 उत्तर 35^0 उत्तर 30^0 उत्तर 31^0 उत्तर 31^0 उत्तर 31^0 उत्तर 23^0 उत्तर
22	स्वस्तिक मंडल	37 त्रिशंकु	प्रथम	1200	220	. 7 मई	90^0 दक्षिण
23	हस्त मंडल	—	—	—	—	14 मई	47^0 दक्षिण
24	कन्या राशि	38 चित्रा	प्रथम	440	120	28 मई	38^0 दक्षिण

ग्रीष्म ऋतु के तारामण्डल—जून, जुलाई, अगस्त

क्र०	राशि एवं अन्य तारामंडल	मुख्य-2 नक्षत्र एवं सितारे	श्रेणी	वास्तविक तेजस्विता जब सूर्य की 1 मानी जाय	पृथ्वी से दूरी प्रकाश वर्षों में	किस तारीख को रात्रि 9 बजे याम्योत्तर रेखा पर आता है	जयपुर (27^0 उ० अ० के शिरोबिन्दु से कितने अन्तर पर
25	कालिय मंडल	39 प्रथम कालिय	—	—	—	. 7 जून	38^0 उत्तर
26	नराश्य मंडल	40 विजय 41 जय	प्रथम प्रथम	1400 1.3	190 4.3	. 7 जून 16 जून	88^0 दक्षिण 88^0 दक्षिण
27	भूतेश मंडल	42 स्वाति	प्रथम	83	38	. 9 जून	. 7^0 दक्षिण
28	तुला राशि	43 विशाखा	—	–	–	21 जून	42^0 दक्षिण
29	लघु सप्तर्षि मंडल	44 जय 45 विजय 46 ध्रुव तारा	— — —	– – 2500	– – 47	21 जून 21 जून वर्ष भर	48^0 उत्तर 49^0 उत्तर 63^0 उत्तर
30	सुनीति मंडल	–	—	—	—	२८ जून	. 3^0 उत्तर
31	वृश्चिक राशि	47 अनुराधा 48 ज्येष्ठा 49 मूला	— प्रथम —	– 1900 –	– 250 –	28 जून 14 जुलाई 28 जुलाई	55^0 दक्षिण 54^0 दक्षिण 63^0 दक्षिण
32	सिंहक मंडल	–	—	—	—	२३ जून	72^0 दक्षिण
33	सर्प माला मंडल	—	—	—	—	. 7 जुलाई	47^0 दक्षिण
34	द० त्रिकोण मंडल	—	—	—	—	. 7 जुलाई	नहीं दिखाई देता
35	वेदी मंडल	—	—	—	—	21 जुलाई	. "
36	शौरी मंडल	—	—	—	—	21 जुलाई	. 3^0 उत्तर
37	वीणा मंडल	50 अभिजित	प्रथम	63	27	14 अगस्त	11^0 उत्तर
38	धनु राशि	51 पूर्वाषाढ़ा 52 उत्तराषाढ़ा	— —	— —	— —	14 अगस्त 21 अगस्त	57^0 दक्षिण 57^0 दक्षिण
39	गरुड़ मंडल	53 श्रवण	प्रथम	10	157	28 अगस्त	20^0 दक्षिण

पतझड़ ऋतु के तारामण्डल—सितम्बर, अक्टूबर, नवम्बर

क्र०	राशि एवं अन्य तारामंडल	मुख्य-2 नक्षत्र एवं सितारे	श्रेणी	वास्तविक तेजस्विता जब सूर्य की 1 मानी जाय	पृथ्वी से दूरी प्रकाश वर्षों में	किस तारीख को रात्रि 9 बजे याम्योत्तर रेखा पर आता है	जयपुर (27^0 उ० अ० के शिरोबिन्दु से कितने अन्तर पर
40	घनिष्ठा मंडल	54 घनिष्ठा	—	—	—	14 सितम्बर	17^0 दक्षिण
41	हंस मंडल	55 हंस पुच्छ	प्रथम	4800	400	17 सितम्बर	18^0 उत्तर,
42	मकर राशि	–	—	—	—	२१ सितम्बर	47^0 दक्षिण
43	वृष पर्वा मंडल	–	—	–	–	.७ अक्टूबर	33^0 उत्तर
44	कुंभ राशि	57 शतमिषा	—	—	—	14 अक्टूबर	27^0 दक्षिण
45	सारस मंडल	57 राज नेयर	—	—	—	14 अक्टूबर	72^0 दक्षिण
46	दक्षिण मीन	58 मीनास्य	प्रथम	16	23	21 अक्टूबर	57^0 दक्षिण
47	भाद्रपद वर्ग	59 पू० भाद्रपद 60 मारकेष 61 एल फरेज 62 एल जानिब	— — — —	— — — —	— — — —	21 अक्टूबर 21 अक्टूबर 10 नवम्बर 10 नवम्बर	1^0 उत्तर 15^0 दक्षिण . 1^0 उत्तर 12^0 दक्षिण
48	शर्मिष्ठा मंडल	–	—	—	—	२१ नवम्बर	33^0 उत्तर
49	मीन राशि	63 रेवती	—	—	—	21 नवम्बर	. 0^0 शिरोबिन्दु पर
50	वृद्ध मंडल	–	—	—	—	२१ नवम्बर	72^0 दक्षिण

◆:◆:◆

परिशिष्ट-4

संवत्सर सूची

(नया संवत्सर आश्विन शुक्ला 1 से आरम्भ होता है।)

1	प्रभव	2	विभव	3	शुक्ल
4	प्रमोद	5	प्रजापति	6	अंगिकार
7	श्री मुख	8	भाव	9	युवा
10	धाता	11	ईश्वर	12	बहुधान्य
13	प्रमाथी	14	श्री विक्रम	15	श्री वृषभ
16	चित्रभानु	17	सुमानु	18	तारण
19	पार्थिव	20	व्यय	21	सर्वचित्
22	सर्पधारी	23	विरोधी	24	विकृति
25	खर	26	नन्दन	27	विजय
28	जय	29	मन्मथ	30	दुर्मुख
31	हेमलंबी	32	विलंबी	33	विकारी
34	शार्वरी	35	घव	36	शुभकृत
37	शोभन	38	क्रोधी	39	विश्वावसु
40	पराभव	41	घवंग	42	कीलक
43	सौम्य	44	साधारण	45	विरोधकृत
46	परिधावी	47	प्रमाथी	48	आनन्द
49	राक्षस	50	नल	51	पिंगल
52	कालयुक्त	53	सिद्धार्थी	54	रौड़
55	दुर्मति	56	दुंदुभि	57	सधिरोह गारी
58	रक्ताक्षी	59	क्रोधन	60	क्षय

◆:◆:◆

परिशिष्ट-5

ज्योतिष शब्दावली

A

Adhara	च श्वानिका, च शुनि
Aldebaran	रोहिणी, क वृष
Algenib	एलजानिब
Algol	विराध
Alioth	आंगिरा, च सप्तर्षि
Al Nair	क बक
Alnilam	इल्माक, च मृग
Alpha-Aurigae	ब्रह्म हृदय
Alpha-centauri	जय
Alpha-rusis	त्रिशंकु
Alpha-draconis	प्रथम कालिय
Alpha-Libra	विशाखा
Alpha-orion	आर्द्रा, क मृग
Alpheraty	क देवयानी
Altair	श्रवण, क गरुड़
Altitude	उन्नतांश
Andromeda	देवयानी
Amnulor-eclipse	कंकणाकृति वसाय, ग्रहण
Anonecilistic month	विसंगत मास
Antares	ज्येष्ठा, परिजात, क वृश्चिक
Aphilion	उत्तरायण, अपसैरिका
Apogee	मन्दोच्च
Apporent	आभासी, स्पष्ट
Aquarius	कुंभ

Aqrila	गरुड़
Ara	वेदी
Archer	धनु राशि
Archernar	नदीमुख, वैतरणी अन्त, क वैतरणी
Arctaurus	स्वाति, क भूतेश
Argo, Argus, Argonaris	नौका मंडल, नौंका पुंज, नौ मंडल
Aries	मेष
Ascending Node	आरोही पात, राहु, उत्तरपात
Asterism	नक्षत्र
Asteroid	अवान्तर ग्रह, क्षुद्र ग्रह
Astrologer	ज्योतिषी
Astrology	ज्योतिष
Astronomer	ज्योतिर्विद, खगोलविद्
Astronomy	ज्योतिर्विज्ञान, खगोल शास्त्र
Astro-physics	नभौ भौतिकी
Auriga	ब्रह्म मंडल, कालपुरुष, रथी
Autumnal Equinox	शरद् संपात, पतझड़ सप्तराशि, शरद् विषुप, सापन तुला संक्रांति
Axis of rotation	धुरी, घूर्णाक्ष

B

Balance	तुला राशि
Bellatrix	मृग लोचनी, ग मृग
Benetnasch	मरीचि, ज सप्तर्षि
Beta-Arities	आश्विनी
Beta-centauri	विजय
Beta-ursa Minor	जय
Betelguese	आर्द्रा नक्षत्र, क मृग
Body	पिंड

Bootis	भूतेश, ईश
Bright fortnight	शुक्ल पक्ष
Bull	वृषभ, वृष राशि

C

Callender	पंचांग
Cancer	कर्क राशि
Canes vesatic	कालका मंडल, मृगयाशुन
Canis-major	मृग़ व्याध, श्वान पुंज, वृहद श्वान, महाश्वान
Canis Minor	लघु श्वान, शुनि, श्वानिका
Canopus	अगस्त्य, क नौत्तल
Capella	ब्रह्म हृदय, क रथी
Capricornus	मकर राशि
Carina	नौत्तख
Cassiopeia	शर्मिष्ठा
Caster	प्रकृति, कस्तूरी, पुनर्वसु-द्वितीय, क मिथुन
Cellestial Sphere	खगोल
Centaurus	नराश्य, किन्नर, बड़वा
Centrifugal force	केन्द्र प्रसारी बल
Cepheus	वृजपर्षा, कार्य मंडल
Cetus	तिथि मंडल, जल केतु
Circle of illuminatin	प्रकाश वृत्त, ज्योतिर्वृत्त, ज्योति अन्तराख
Circular movement of angle	चाप
Columba	कपोत
Comet	पुच्छल तारा, धूमकेतु
Conjunction	युति

Constellation	तारामंडल, नक्षत्र मंडल, तारापुंज
Corona	क्रान्ति चक्र, परिमंडल, किरीट
Corona-Australis	दक्षिण किरीट
Corona-Borealis	उत्तर किरीट
Coronis	सुनीति मंडल
Corvus	काग, हस्त
Crab	कर्क
Crane	सारस, क्रौंच, बफ
Crescent moon	बाल चंद्र
Cross	स्वास्तिक, त्रिशंकु
Crux	स्वास्तिक, त्रिशंकु, क स्वास्तिक
Cygncus	हंस मंडल, खगेश, राजहंस

D

Dark fortnight	कृष्ण पक्ष
Decending node	अवरोही पात, केतु
Declination	अपक्रम, क्रान्ति
Delphinus	घनिष्ठा
Delta Hydra	पुष्य
Delta rorpii	अनुराधा
Deneb	हंस पुच्छ, क हंस
Denebola	उत्तरा फाल्गुनी, रथ सिंह
Direct motion	मार्गी गति
Diurnal rovolution	भ चक्र
Dog star	लुब्धक
Doradus, dorado	असिमति
Draco	कालिय, अजगर, शेषनाग, अनंत मंडल
Dubhe	कृतु, क सप्तर्षि

Dwrab star	वामन तारा

E

Earth	भू, पृथ्वी
Eastward motion	पूर्वाभिमुख गति
Eclipse of the moon	चन्द्र ग्रहण
Eclipse of the sun	सूर्य ग्रहण
Ecliptic	क्रांति वृत, राशि चक्र
Eleiptical	अंडाकार, दीर्घ वृताकार
Elongation	कोणियान्तर
Equation of time	समय का समीकरण, बेलान्तर समय
Equater	विषुवत रेखा
Equinox	विषुप दिन
Eridanus	वैतरणी मंडल
Escape uelocity	विपलायन वेगन
Eta-tauri	कृतिका
Fomelhant	मत्स्य मुख, मीनास्य, क दक्षिण मीन
Force	बल
fortnight	पक्ष
Full moon	पूर्णिमा, पूर्ण चन्द्र

G

Galaxy	मंदाकिनी, आकाश गंगा
Gama ursa minor	विजय
Gemeni	मिथुन राशि
Geo-centric	भू केन्द्रीय
Geoid	पृथिव्याकार
Giant Star	दैत्य तारे

Gravity	गुरुत्व
Gravitation	गुरुत्वाकर्षण
Great bear	सप्तर्षि, वृहध्क्ष मंडल
Grus	वक, सारस

H

Hercules	शौरी, दशाशन, द्वितीय मिथुन, भीम
Helio-centric	सूर्य केन्द्रीय
Horizon	क्षितिज
Hydra	वासुकी, जल सर्प
Hypothesis	परिकल्पना

I

Inertia	भ्रमण शक्ति
Inferior Conjunction	निकट युति
Inferior planet	अन्तर्ग्रह, भीतरी ग्रह
Intercalary month	मलमास, अधिमास

J

Geta hydra	अश्लेषा
Geta Piscium	रेवती
Jupiter	बृहस्पति, गुरु

L

Lambda aqarius	शतभिषा
Lambda orion	मृगशिर
Lambda sagittarius	पूर्वाषाढ़ा
Latitude	अक्षांश, शर, अक्षांतर
Leo	सिंह राशि
Leo Minor	सिंहिका
Lepus	शशक

Libra	तुला राशि
Light year	प्रकाश वर्ष
Little bear	शिशुमार, लघु सप्तर्षि
Lougitude	देशान्तर, भोग
Lunar eclipse	चन्द्रग्रहण
Lunar month	चन्द्रमास
Luni solar year	चन्द्र वर्ष
Lynx	पुलोमा, विडाल
Lyrae	वीणा मण्डल

M

Magnitude	क्रान्तिमान, तेजस्विता
Markeb	मारकेब
Mars	मंगल, लोहितांग, अंगारक
Mass	द्रव्यमान
Matter	द्रव्य पदार्थ
Mercurry	बुध
Meridian	याम्योत्तर, मध्यान्ह रेखा
Meteor	उल्फा
Meteorite	उल्फा पिंड
Microscopium	सूक्ष्म दर्शक
Milky way	आकाश गंगा
Mira	मीरा, द तिथि
Month	मास
Moon	चन्द्रमा
Mu-Aritics	भरणी

N

Nebula	निहारिका

Neap tide	लघु ज्वार
Neptune	वरुण
New moon	नवचन्द्र, अमावस्या
Node	पात
Noon	मध्यान्ह
Nova	नव तारा

O

Ophiucus	सर्पमास मंडल, सूर्यधर
Opposition	युद्ध
Orbit	कक्षा मंडल, परिक्रमा पथ, कक्षा
Orion	मृग, काल पुरुष, अग्रहायण, हरिण, मृगाशिरा

P

Partial eclipse	खंड ग्रहण, खंड ग्रास
Pegasus	भाद्रपद वर्ग, हयशिरा, पौष्ठ पदा
Perigee	शीघ्रोच्च
Perseus	परशु, ययाति, वराह, पारसीय
Perihelion	दक्षिणायन
Penumbra	उपच्छाया
Pholnix	गृद्ध, काक भुशुण्डि
Phases of the moon	चन्द्र कलाएँ
Pisces	मीन राशि
Piscis Australis	दक्षिण मीन, याममत्स्य
Planet	ग्रह, ताराग्रह
Planetesimals	ग्रहाणु
Pleiades	कृतिका, किचापीचिया
Pluto	यम, कुबेर
Pointero	निर्देशक

Polaris	ध्रुप, क ऋक्षिका
Pole star	ध्रुव तारा
Pole of ecliptic	कदम्ब
Pole	ध्रुव
Pollux	पुरुष, ख मिथुनं
Procyon	प्रभास, प्रश्वा, क श्वानिका
Puppis	नौ पृष्ठ

Q

Quadrature	समकोणयियान्तर अवस्था
Quadrant	पद, पाद, चरण

R

Ram	मेष राशि
Refraction	परावर्तन
Regel	वाणरज, मृगपद, ख मृग
Regulus	मघा नक्षत्र, क सिंह
Retrograde motion	वक्री गति
Revolution	परिक्रमण, प्रदक्षिणा
Rigil Kentaurus	नराश्य पद, क नराश्य
Ring	वलय
Rising point of ecliptic	लग्न
Rotation	आवर्तन, घूर्णन

S

Sagittarius	धनु राशि
Satellite	उपग्रह
Saturn	शनि ग्रह
Scorpie	वृश्चिक राशि
Serpens	सर्प

Shaula	मूला
Shooting star	उल्फा, टूटने वाले तारे
Sicrereal angle	भ भोग
Sidereal day	नाक्षत्र दिवस, तारा दिवस
Sidereal month	नाक्षत्र मास
Sidereal day and night	नाक्षत्र अहोरात्र
Sidereal revolution	भगण
Sicrereal time	नाक्षत्र काल
Sirius	लुब्धक, क श्वान
Solar day	सौर दिवस, सौर दिन
Solar eclipse	सूर्य ग्रहण
Solar month	सूर्य मास
Solar system	सौर मंडल, सौर परिवार
Solar year	सौर वर्ष
Southern cross	स्वास्तिक, त्रिशंकु
Spheroid	पृथिव्याकार
Spica	चित्रा नक्षत्र, क कन्या
Spring Equinox	बसंत समरात्रि, बसंत विषुप
Spring tide	दीर्घ ज्वर
Star	तारा, सितारा, नक्षत्र
Summer solstices	ग्रीष्म संपात, कर्क संक्रान्ति, उत्तरायणान्त
Sun	सूर्य
Sun-dial	धूप घड़ी
Sun spots	सूर्य कलंक, सूर्य के धब्बे
Superior Conjunction	दूर संयुति
Superior planet	बहिर्ग्रह, बाहरी ग्रह
Synodical month	संयुति मास

T

Taurus	वृष राशि, वृषभ राशि
Telescope	दूरदर्शी (यंत्र)
Terrestrial	पार्थिय, भौमिक, स्थलीय
Terrestrial day and night	सायन दिवस
Tetrahedran	चतुष्फलक
Theta Leonis	पूर्वा फाल्गुनी
To sagittarius	उत्तराषाढ़ा
Total eclipse	पूर्ण ग्रहण, पूर्ण ग्रास
Triangular	त्रिकोण
Triangular Australis	दक्षिण त्रिकोण
Twilight	संधि प्रकाश, गोधूलि, संधि-आलोक
Twin	मिथुन राशि
Twin star	युगल तारा, जुड़वा तारा

U

Ultra violet rays	पराकाशनी किरणें
Umbra	प्रच्छाया
Universe	विश्व
Uranus	अरुण, इन्द्र, हर्सेल
Ursa Major	सप्तर्षि, वृहद्दक्ष मंडल
Ursa Minor	लघु सप्तर्षि, शिशुमार, लघुऋक्ष, ऋक्षिका, ध्रुव मत्स्य

V

Vega	अभिजित, क बीणा
Vela	नौ वस्त्र
Venus	शुक्र ग्रह

Virgo	कन्या राशि
Vernal equinox	बसंत संपात दिन, सायन मेष संक्रांति

W

Water bearer	कुंभ
Winter coustellation	शीतकालीन नक्षत्र
Winter solstice	शरद संपात

Y

Year	वर्ष

Z

Zenith	खमध्य, शिरोबिन्दु
Zenith distance	नतांश
Zochiac	राशि चक्र

◆:◆:◆

तीन उपनिषद

(ईशावास्य, मुण्डक, श्वेताश्वतर)

लेखक—नन्दलाल दशोरा

मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि वह क्षणिक को ही महत्त्व देकर शाश्वत की उपेक्षा करता रहता है। किन्तु क्षणिक सुख के पीछे कितना दुःख छिपा है इसका उसे ज्ञान नहीं है। जिस कारण इसके अवश्यम्भावी परिणामों से वह मुक्त नहीं हो सकता।

भारतीय अध्यात्म की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इसमें जीवन और अध्यात्म इन दोनों का ही इस प्रकार समन्वय किया गया है कि जिससे मनुष्य भौतिक जगत में रह कर भी उच्च जीवन हेतु अग्रसर हो सकता है। अध्यात्म की वेदी पर जीवन की बलि भी नहीं दी गई और जीवन के लिए अध्यात्म का तिरस्कार भी नहीं किया गया। उच्च जीवन् के लिए इन्हीं महान आदर्शों का समन्वय और सम्पूर्ण ज्ञान का निरूपण करने वाले ग्रन्थ ही उपनिषद हैं। जो सभी ग्रन्थों को नहीं पढ़ सकते अथवा उनके क्लिष्ट सिद्धान्तों को नहीं समझ सकते उनके लिए उपनिषद ही सर्वोपरि महत्त्व के हैं। जिनके अध्ययन से उन्हें भारतीय चिन्तन की पराकाष्ठा का ज्ञान हो सकेगा। इसी महत्त्वपूर्ण एवं शाश्वत ज्ञाननिधि का थोड़ा सा परिचय देने के लिए ही इन तीन उपनिषदों का चयन किया गया है।

लेखक की अन्य पुस्तकें

1. अष्टावक्रगीता
2. विवेक चूड़ामणि
3. ध्यानयोग चिकित्सा
4. पातंजलि योगसूत्र
5. अवधूत गीता
6. अध्यात्म साधना से आत्मबोध
7. कर्मफल और पुनर्जन्म
8. मृत्यु और परलोक यात्रा
9. आत्मज्ञान की साधना
10. ब्रह्मसूत्र (वेदान्त दर्शन)
11. अध्यात्म, धर्म और विज्ञान
12. धारणा, ध्यान और समाधि
13. योग वशिष्ठ (महारामायण)
14. योग वशिष्ठ के सिद्धान्त

प्रकाशक—रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार

शुद्धि-पत्र

पृ. सं.	पंक्ति सं.	अशुद्ध	शुद्ध
4	8	विज्ञान	विद्वान
10	20	सूर्य की	सर्प में
13	30	9 अंश	9 कला
14	4	पलाय	वलय
15	19	240	280
16	1	127 ई०	127 ई० से 151 ई०
17	8	पार्फिज	यार्फिज
17	8	लापेल	लावेल
21	4	नराश्व मण्डल	नराश्व मण्डल का
21	26	संख्या अरब	संख्या 1 अरब
22	18	1624	1625
24	13	भविष्य	भीषण
27	2	अधिकाधिक	अधिकाधिक जानकारी
27	6	अपन	अपना
29	20	गति सेकण्ड	गति एक सेकण्ड
30	21	निरस्त	निसृत
31	6	वाणराज	वाणरज
31	13	परिवर्तित	परिवर्तन
32		चार्ट-अन्त में दिया गया है–	
33	9	giants	giant
33	10	dwarb	dwarf
36	5	गुच्छे	गुच्छ
36	10	विफरिण	विकीरण
36	12	अपनी	अपना
38	21	साधुता	लघुता
40	22	राशि	रात्रि
42	2	3 लाख	3 खरब
43	8	अर्थमा	अर्यमा
43	18	वेपर	वेयर
47	7	जन्म के साथ	जन्म एक साथ
47	14	premosdial	premordial
47	27	Haplaceis	Laplace's
48	4	अल हुए	अलग हुए
48	13	planetesimae	planetesimal
48	20	Fidal	Tidal
49	1-2	वाइस्साफर	बाईस्साकर
49	4	धर्नायवन	धनीभवन
49	9	पूरे	पूर्व
50	23	केलपर	केपलर
50	24	नार्लीफर	नार्लीकर
53	3	फलांको	कलंको
55	25	10,000	16,000
56	23	13 लाख 30 हजार	13 करोड़ 30 लाख

पृ. सं.	पंक्ति सं.	अशुद्ध	शुद्ध
57	21	-300 डिग्री से०	-300 डिग्री फ०
58	11	7 करोड़	6 करोड़
58	24	टेस्पेरस	हेस्पेरस
58	28	क्रेटर	श्रेटर
60	16	1022 मन	10^{22} मन
60	29	द्वितीया चाँद	द्वितीया के चाँद
61	28	ठीक ठाक	ठीक ठीक
62	4	वक्ष	बक्ष
65	13	1009	1006
66	18	रात्रि में	रात्रि
68	4	लिए	×
68	21	velovity	velocity
68	28	2,562,710	2,522,710
70	4	एवेनाइन	एपेनाइन
70	8	दूरयक्षिण	दूरवीक्षण
70	8	असफंसो	अलफंसो
72	14	राशि	रात्रि
73	7	टानर	टरनर
73	12	डाराविन	डार्विन
73	29	वर्षों में मिनिट	वर्षों में एक मिनिट
74	14	1964	1968
76	19	लापेल	लावेल
76	28	आसफहाज	आसफहाल
79	1	सार	आकार
79	21	27 हजार	27 हजार 200
80	1	फेलिस्टो	केलिस्टो
81	1	गैस	×
81	4	29.5 दिन	29.5 वर्ष
82	1	मेक्षवेज	मेक्षवेल
82	22	येक्षिस	टेथिस
82	28	1894 ई०	1898 ई०
84	6	एडसन	एडम्स
84	6	गालो	गाले
84	21	359 दि)	359 दिन)
85	17	1969 ई० में	1969 ई० से
85	22	-2400 डिग्री	-240 डिग्री
85	25	किन्तु	किन्तु इसका
86	11	गिरती है	गिरती हुई ज्ञात होती है किन्तु ये पृथ्वी पर बहुत कम गिरती है।
87	26	Neteorites	Meteorites.
88	10	संभवतः प्रस्तर	संभवतः उल्का प्रस्तर
93	13	पिकच	विकच
93	25	1004	1008
95	30	12/12	19/12
96	13	quadature	quadrature
96	23	फलवित	फलित

पृ. सं.	पंक्ति सं.	अशुद्ध	शुद्ध
96	29	निष्योदयस्त	नित्योदयास्त
96	29	110 पहल	110 पल
97	13	44	88
97	15	116 दिन	116 दिन बाद होती है इसी प्रकार शुक्र का परिक्रमा काल 225 दिन है किन्तु
98	11	योग	भोग
98	13	योग	भोग
98	18	योग	भोग
98	21	योग	भोग
99	3	योग	भोग
101	16	वर्ष	वृष
105	13	एक ही राशि में	एक ही रात्रि में
112	11	चित्र संख्या 20	चित्र संख्या 18
112	14	बाँसपाड़ा	बाँसवाड़ा
112	19	संख्या 20 में	संख्या 18 में
112	26	20 तथा 21 में	18 तथा 19 में
113	6	संख्या 21 में	संख्या 19 में
113	17	21 में	19 में
113	28	चित्र 21 में	चित्र 19-20 में
114	4	चित्र संख्या 22	चित्र संख्या 20
114	11	चित्र संख्या 22	चित्र संख्या 20
114	27-28	संख्या 22 व 23	संख्या 20 व 21
114	31	प्रवेश सीमा	प्रदेश सीमा
115	4	23 से 300	21 से 300
115	10	चित्र संख्या 23	चित्र संख्या 21
115	17	13 फरवरी	12 फरवरी
115	18	संख्या 23 में	संख्या 21 में
115	28	घोल	घोष
116	4	वह	वहाँ
117	22	plliades	pleiades
117	26	Heouis	Leonis
118	2	Libra	Alpha Libra.
118	5	sagittarioes	sagittarius
118	6	dlphimi	Delphini
121	2	हारों का	तारों का
122	2	Alrilam	Alnilam
122	3	विषुण	विषुव
123	30	एक अंतिम	के अंतिम
124	23	223 अंश 19 कला	×
127	23	Androsueda	Andromeda
128	10	Aurigal	Aurigae
128	15	गालप	गालव
128	19	28 फरवरी	28 जनवरी
129	27	Dwarb	Dwarf
130	12	किया	दिया
130	26	देशान्तर तक	देशान्तर से 120 अंश देशान्तर तक

पृ. सं.	पंक्ति सं.	अशुद्ध	शुद्ध
131	10	जलासर्प	जलसर्प
131	27	proxinea	proxima
132	19	Dosanius	Dosanus
133	25	pixes	pises
133	29	Homalhant	Fomalhaut
137	20	225	255
138	30	17 जून	7 जून
139	10	Bassiopeia	cassiopeia
139	21	कार्यमण्डल	कपि मण्डल
141	14	190 अंश	170 अंश
141	16	crust	crux
146	13	और पृथ्वी	चन्द्रमा, सूर्य और पृथ्वी
146	14	अन्धकार नहीं देता	अन्धकार वाला भाग पृथ्वी की ओर रहता है जिससे वह दिखाई नहीं देता।
147	6	Furilight	Twilight
149	19	योजन है	योजन है और चन्द्रमा का 480 योजन है। पृथ्वी का व्यास 1600 योजन है।
150	21	अवरोही संपात-	अवरोही संपात कहते हैं भारतीय ज्योतिष में इस आरोही संपात को
157	24	आकार	आधार
158	28	सूक्ष्म ज्ञान हो सके	सूक्ष्म मान ज्ञात हो सके
167	27	देखकर राशि	देखकर रात्रि
175	16	कम नहीं है	सम नहीं है
175	20	27.05 दिन	27.5 दिन
175	21	27.4 दिन	27.3 दिन
175	25	29.53, 05588 दिन	29.530588 दिन
176	20	भारतीय पंचांगों	मुस्लिम पंचांगों
177	17	20 दिन माने जाये	29 दिन माने जाये
178	19	4208	42108
178	19	46399-1875	46399÷1875
178	20	1938-6(	1938÷60
180	29	प्रथमोऽहान	प्रथमोऽहनि
181	8	32,00,00,000	4,32,00,00,000
183	23	भारती	भारत
183	30	अग्र प्रकार से	निम्न प्रकार से
185	13	कंदर्भ	कंदर्प
185	16	पूर्ण	कूर्म

नोट – पृष्ठ 32 के चार्ट में ''पाश्चात्य वैज्ञानिक नाम'' के अन्तर्गत

1. श्वान मंडल– Alpha canis majoris है
2. नौका मण्डल – Argus है।

   इस प्रकार एक पंक्ति नीचे खिसक जाने से सभी का क्रम बदल गया है। इसके कारण ''भारतीय वैज्ञानिक नामों'' का क्रम भी बदल गया है। इसे ठीक कर दें।
3. 8 जय Rigil Kentaurus है। इसका पाश्चात्य नाम Alpha centavri है। भारतीय नाम- क-नराश्य है।

4- क-सिंह के स्थान पर भ-सिंह है।
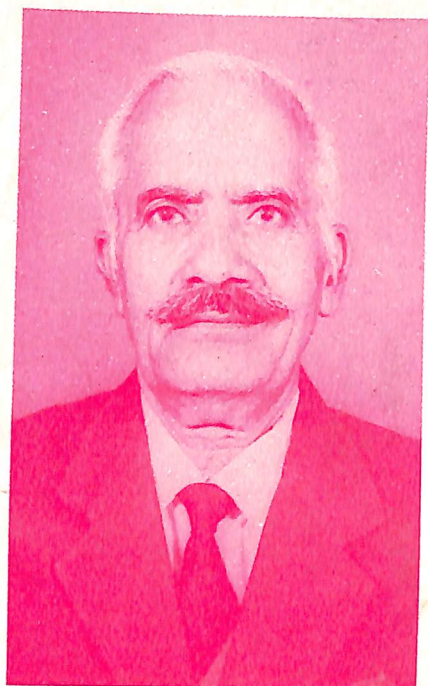
श्री नन्दलाल दशोरा

अध्यात्म साहित्य के आकाश में ध्रुवतारे सदृश चमकते महाविद्वान् **श्री नन्दलाल दशोरा** अब ज्योर्तिविज्ञान जैसे गूढ़ एवं विस्तृत विषय पर एक अनमोल ग्रन्थ प्रस्तुत कर रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक **ब्रह्माण्ड और ज्योतिष रहस्य** में राशियाँ, नक्षत्र, सितारे, हमारा सौर-मण्डल, आकाश-गंगा, निहारिकाएँ आदि के वर्णन के साथ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का परिचय भी दिया गया है तथा साथ ही इनकी मानव जीवन में उपयोगिता का वर्णन किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक आपको सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रहस्यमयी विचित्रता का दिग्दर्शन करायेगी।

रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार